ॐ

श्रीवीतरागाय नमः

जैनग्रन्थरत्नाकरका ५

स्वर्गीय भैया भगवतीदासजीकृत

ब्रह्मविलास.

कवि नाथूराम (प्रेमी) जैनद्वारा सशोधित

जिसको

जैनग्रन्थरत्नाकरकार्य्यालयके मालिकने

मुम्बयीके

निर्णयसागर छापखानेमें छपाकर

प्रसिद्ध किया

वीरसंवत् २४३०

प्रथमवार १००० प्रति] [मूल्य १॥) रु० मात्र

प्रस्तावना.

वर्त्तमान समयमें हिंदी भाषा काव्यके प्राचीन वा अर्वाचीन जितने ग्रन्थ देखनेमें आते हैं उनमेंसे शतांश भी ऐसे ग्रन्थ नहि निकलेंगे जिनमें कि वैराग्य वेदान्त नीति वा भक्तिरसका स्वाद मिलसके. ऐसे ग्रन्थ जिनमें कि अलङ्कार—नायकादि भेदोंकी भरमार है हजारों मिलते हैं तथा विलासितापूर्ण ससारमें दिन पर दिन नये ननते ही चलेजाते हैं. इन ग्रन्थोंसे सर्वसाधारणको कितना लाभ पहुचता है सो तो हम नहिं कह सक्ते परन्तु इस समय कविवर भूधरदासजीके दो सवैये याद आगये हैं, उन्हें पाठकोंको सुनाये देते है।

राग उदै जग अन्ध भयो, सहजें सव लोगन लाज गमाई।
सीख विना सव सीखत हैं, विषयानके सेवनकी सुघराई॥
तापर और रचैं रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझनकी अखियॉनमें, झोंकत हैं रज रामदुहाई॥ १॥

हे विधि? भूल भई तुमतें, समझे न कहाँ कसतूरि वनाई?
दीन कुरंगनके तनमें! तृण दंत धरे करुणा नहिं आई॥
क्यों न रची तिन जीभन-जे, रसकाव्य करें परको दुखदाई।
साधुअनुग्रह दुर्जनदण्ड, दुहू सधते विसरी चतुराई॥२॥

हर्षका विषय है कि ऐसे समयमें जव कि भाषा साहित्य केवल मात्र शृङ्गाररसके भरोसेपरही जी रहाथा, जैनकवियोंने उसमें वेदान्त, वैराग्य भक्तिरसका श्रेयस्कर संचार करनेकेलिये अतिशय प्रयत्न किया है क्योंकि जैनकवियोंके वनाये हुये जितने ग्रन्थ आजतक देखे व सुने गये हैं उनमेंसे किसीमें भी विषयान्ध करनेवाले रसोंका प्रवेश नहिं हुआ है वल्कि यो कहना चाहिये कि उनके इस वातकी दृढ प्रतिज्ञा ही थी जोकि उनके वनाये हुये नाटक समयसार, प्रवचनचार, वनारसीविलास, द्यानतविलास, ब्रह्मविलास भूधरविलास बुधजनशतसयी, वृंदावनशतसयी आदिग्रन्थोंके देखनेसे भली भांति ज्ञात हो सक्ती है।

पण्डित हेमराजजी वनारसीदासजी, भगवतीदासजी, द्यानतरायजी, भूधरदासजी, रामचन्द्रजी, सेवारामजी (जाट) जिनवख्श (मुसलमान) वृंदावनजी, दौलतरा-

(१-२) ये दोनोंकवि-तुलसीदासजीके समकालीन थे.

मजी, विहारीलालजी आदि बडे २ भाषाकवि जैनियोंमें हुए हैं जिनकी काव्यशक्ति प्रशसनीय थी इनमेंसे भैया भगवतीदासजीकृत यह ब्रह्मविलास ग्रन्थ (जिसको एक प्रकारका वेदात कहनाचाहिये) है इस ग्रन्थके विषयमें कुछ कहनेसे पहिले हम उक्त कविवरके विषयमें कुछ लिखकर पाठकोंको यथाशक्ति परिचय देना चाहते हैं।

कविवर भगवतीदासजीका जन्म आगरेमें ही हुआ था और वे अपने अन्तसमय तक प्राय वहींपर रहे हैं ऐसा उनके ग्रन्थसे जान पड़ता है इनके पिताका नाम लालजी था ये ओसवाल जातिके बणिक थे इन्होंने प्रशस्तिमें अपना गोत्र कटारिया लिखा है इनके समयमें औरगजेब बादशाह मौजूद थे इनकी जन्मतिथि व मृत्यु तिथिका अभीतक हमें पता नहीं लगा तौ भी उनकी कवितासे जो वि० सवत् १७३१ से १७५५ तकका क्रमश उल्लेख मिलता है उससे जान पड़ता है कि, उनका जन्म अठारहवीं शताब्दीके पहिले ही हुआ होगा इसके पहिले या आगेकी कोइ भी कविता अभीतक नहिं मिली हैं कवितामें इन्होंने अपना पद व भोग 'भैया' वा 'भविक' तथा एक जगह 'दासकिशोर' भी रक्खा है

एक दन्तकथासे प्रसिद्ध है कि कविवर केशवदासजी तथा दादूपथी बाबा सुदर दासजी और भैया भगवतीदासजी एकही गुरुके शिष्यथे अर्थात् काव्य विषय इन्होंने एकही गुरुसे सीखा था विद्याभ्यासके पश्चात् तीनों पृथक् २ होगये कविवर केशव दासजीने जब 'रसिकप्रिया' ग्रन्थ निर्माण किया तो उसकी एक २ प्रति सहपाठी वा मित्र होनेके कारण बाबा सुन्दरदासजी तथा भगवतीदासजीके पास समालोचनार्थ भेजी भगवतीदासजीने रसिकप्रियाको देखकर एक छद बनाया, और उस रसिकप्रियाके पृष्ठपर लिखकर वापिस भेज दिया था वह यह है

> बडी नीति लघु नीति करत है, वाय सरत बदबोय भरी।
> फोडा आदि फुनगुणी मडित, सकल देह मनु रोग दरी॥
> शोणित हाड मासमय मूरत, तापर रीझत घरी घरी।
> ऐसी नार निरखकर केशव, 'रसिकप्रिया' तुम कहा करी?॥१०॥
>
> (ब्रह्मविलास पृष्ठ १८४)

इसी प्रकार बाबा सुदरदासजी भी जो कि वैराग्य वेदान्त विषयक अच्छे कवि थे, रसिकप्रियाकी बहुत कुछ निंदा की है जो कि उनके बनाये हुए सुदरविलासमें प्रगट है।

इस दन्तकथाके कथनानुसार इन्हे केशवदासजीके समकालीन ही कहना चाहिये परन्तु इतिहास प्रकाशकोने केशवदासजीका शरीरपात विक्रमसवत् १६७० मे होना लिखा है इसकारण इस दन्तकथापर विश्वास नहिं किया जा सक्ता कदाचित् रसिकप्रिया इनके देखनेमें पीछेंसे आई हो और फिर यह छद वनाया हो तो भी सभव हो सक्ता है.

यह ब्रह्मविलास ग्रन्थ यथार्थमें उनकी विक्रम सवत् १७३१ से १७५५ तककी कविताका संग्रह है जो कि सासारिक कार्योंसे निराकुलित होनेपर समय समय पर वनाया गया है. किन्तु द्रव्यसग्रह आदिमें इनके मित्र मानसिंहजीकी कविताका भी प्रवेश है. यद्यपि वह कविता इतनी उत्तम नहीं है जो इनकी कविताके शामिल की जाय तौ भी कविवरने अपने मित्रके उत्साहवर्द्धनार्थ इस ग्रन्थमें स्थानप्रदानकरकें यथार्थ मित्रता वा सज्जनताका परिचय दिया है।

भगवतीदासजी सस्कृत और हिंदीके ज्ञाता होनेके अतिरिक्त फारसी, गुजराती मारवाड़ी वगला आदि भाषाका भी ज्ञान रखते थे, ऐसा अनुमान उनकी कवितामें प्रयोजित शब्दोंसे तथा कोई २ कविता खास गुजराती फारसीमें करनेसे स्पष्टतया हो सक्ता है. तथा ओसवाल जातिकी उत्पत्ति मारवाड़ देशसे होनेके कारण कविवर भगवतीदासजीकी मातृभाषा मारवाड़ी होनाभी सभव है. क्योंकि इनकी कवितामें यत्र तत्र मारवाड़ी भाषाके (जो कि प्राय. प्राकृत भाषाके शब्दोंसे सुशोभित है) शब्दोंका प्रयोग अधिक पाया जाता है.

इस ग्रन्थके शोधनेका भार ग्रन्थप्रकाशक प० पन्नालालजीने मुझ अल्पज्ञपर डाला था यद्यपि मैं काव्य विषयका इतना जानकार नही हूं जो ऐसे २ अपूर्वभावविशिष्ट ग्रन्थोंका सशोधन कर सकू परन्तु उक्त प्रकाशकजीकी आज्ञाका उल्लघन करनेको असमर्थ होकर मुझसे जहातक वना है परिश्रम करनेमें त्रुटि नही की है. फिर भी सभव है कि प्रमादवशत अनेक अशुद्धिया रहगई होंगी. आशा है कि उन्हें पाठक महाशय सुधारके पढ़नेकी कृपा करेंगे.

इस ग्रन्थमे परमात्मशतक और कुछ चित्रबद्धकविता जो पूर्वार्द्धमेंथी और जिसे सार्थ प्रकाशित करनेकी आवश्यकता समझ अनवकाशवशात रख छोडी थी वह हमने कठिन २ दोहोके अर्थसे यथाशक्ति विभूपितकर अन्तमे लगाई है आशा है कि पाठक महाशय इस क्रमभग करनेके अपराधको क्षमा करेंगे. इसके अतिरिक्त इस ग्रथमें व, व, श, ष, स, ख, क्ष, च्छ अनुसार और सानुनासिक सवंधी रदवदलकी त्रुटिया भी विशेप रही होगी सो पाठक महाशय मुझे अल्पज्ञ वालक जान क्षमा करेंगे.

इस ग्रन्थके संशोधनार्थ ४ प्रतियोंकी सहायता ली गई है जिनमेंसे एक तो वि० संवत् १७८० की, दूसरी सं० १८०४ की, तीसरी सं० १९२० की और चौथी सं० १९६० की लिखीहुई है इनमेंसे सं० १७८० की प्रतिसे हमें बहुत कुछ सहायता मिली है क्योंकि यह प्रति ग्रन्थनिर्माण होनेके थोड़े ही दिन पीछेकी लिखीहुई होनेसे बहुत कुछ शुद्ध है अन्य प्रतियोंमें अनभिज्ञ लेखकोंकी असावधानीकी परम्परासे बहुत कुछ पाठान्तर पाया गया है

अन्तमें ग्रन्थकर्त्ता व प्रकाशकमहाशयके परिश्रमपर विचार करके पाठकगण इस ग्रन्थसे अपना और अपनी सन्ततिका हितसाधन करेंगे ऐसी आशा करके इस प्रस्तावनाको पूर्ण करता हूं।

मुम्बयी
१७-१२-१९०३ ई०

सर्वसज्जनोंका हितैषी दास—

नाथूराम, प्रेमी जैन

सूचीपत्र

श्रीवीतरागाय नमः

स्वर्गीय कविवर भैया भगोतीदासकृत

ब्रह्मविलास.

अथ पुण्यपचीसिका.

मङ्गलाचरण छप्पय

प्रथम प्रणमि अरहंत, वहुरि श्रीसिद्ध नमिज्जै ।
आचारज उवझाय, तासु पद वंदन किज्जै ॥
साधु सकल गुणवंत, शान्तमुद्रा लखि वंदौं ।
श्रावक प्रतिमा धरन, चरन नमि पापनिकंदौं ॥
सम्यकवंत स्वभाव धर, जीवजगतमहिं होंहि जित ।
तित तित त्रिकाल वंदित 'भविक' भावसहित शिरनाय नित॥१॥

श्रीजिनेन्द्रस्तुति छप्पय

मोहकर्म जिहँ हन्यो, कन्यो रागादिक नष्टित ।
द्वेष सर्व परिहन्यो, जागि क्रोधहिं किय भिष्टित ॥
मानमूढता हरिय, दरिय माया दुखदायिन ।
लोभ लहरगति गरिय, सरिय प्रगटी जु रसायिन ॥
केवल पद अवलंबि हुव, भवसमुद्रतारनतरन ।
त्रयकाल चरन वंदत 'भविक' जयजिनंद तुवं पयंशरन ॥२॥

---

१ तुम्हारे २ पद

श्रीसिद्धस्तुति छप्पय छन्दः

अचल धाम विश्राम, नाम निहचै पद मंडित ।
यथाजात परकाश, वास जहँ सदा अखंडित ॥
भासहि लोकालोक, थोक सुखसहज विराजहिं ।
प्रणमहि आपु सहाय, सर्वगुणमंदिर छाजहिं ॥
इहविधि अनंत जिय सिद्धमहिं, ज्ञानप्रान विलसंत नित ।
तिन तिन त्रिकाल वंदत 'भविक' भावसहित नित एकचित॥३॥

श्रीआचार्यजीकी स्तुति छप्पय छन्द.

पंच परम आचार, ताहि धारहिं आचारज ।
ज्ञान चार संयुक्त, करत उत्तम सब कारज ॥
देत धर्म उपदेश, हेत भविजीय विचारत ।
जिनवानी जो खिरत, सु तौ निज हिरदै धारत ॥
कहत अर्थ परकाशकें, केवलपद महिमा लखत ।
जुगसाधुमध्यपरधानपद, आचारज अमृत चखत ॥ ४ ॥

श्रीउपाध्यायस्तुति कवित्त.

द्वादशांगवानी सुखखानी वीतराग देव, जानी भव्यजीवन अनादिकी कहानी है । ताके पाठ करिवेको भेद हृदै धरिवेको, अर्थके उचरिवेको पंडित प्रमानी है ॥ पर समुझायवेको ज्ञान उपजायवेको, रूपके रिझायवेको निपुण निदानी हैं । याहीतें प्रमाण मानी सत्य उवझायवानी, 'भैया' यों वखानी जाकी मोक्षवधू रानी है ॥ ५ ॥

श्रीमुनिराजकी स्तुति.

दहिकैं करम अघ लहिकैं परमरूग, गहिकें धरमध्यान ज्ञानकी लगन है । शुद्ध निजरूप धरै परसों न प्रीति करै, वसत शरीरपैं

अलिप्त ज्यों गगन है ॥ निश्चै परिणामसाधि अपने गुणें अराधि, अपनी समाधिमध्य अपनी जगन है । शुद्ध उपयोगी मुनि राग-द्वेष भये शून्य, परसों लगन नाहि आपमें मगन है ॥ ६ ॥

श्रावकप्रशंसा

मिथ्यामतरीत टारी भयो अणुव्रतधारी, एकादश भेद भारी हिरदै वहतु है । सेवा जिनराजकी है यहै शिरताजकी है, भक्ति मुनिराजकी है चित्तमें चहतु है । वीसद्वै निवारी रीति भोजन न अक्षप्रीति, इन्द्रिनिको जीत चित्त थिरता गहतु है । दयाभाव सदा धरै, मित्रता प्रगट करै, पापमलपक हरै मुनि यों कहतु है ॥ ७ ॥

सम्यक्तकी महिमा

भौथिति निकंद होय कर्मवंद मंद होय, प्रगटे प्रकाश निज आनंदके कंदको । हितको दृढाव होय विनैको वढाव होय, उपजै अंकूर ज्ञान द्वितियाके चंदको ॥ सुगति निवास होय दुर्गतिको नाश होय, अपने उछाह दाह करै मोहफंदको । सुख भरपूर होय दोष दुख दूर होय, यातैं गुणवृंद कहै सम्यक सुछंदको ॥ ८ ॥

श्रीजिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाको नमस्कार छप्पय

प्रथम प्रणमि सुरलोक जहां जिनचैत्य अकृत्रिम ।
चैत्य चैत्य प्रतिविंव, एकसौ आठ अनूपम ॥
वहुरि प्रणमि मृतलोक, विम्व जिनके जिह थानक ।
कृत्य अकृत्तिम दुविधि, लसै प्रतिमा मनमानक ॥
पाताल लोक रचना प्रवल, तिहँ थानक जिनविंवै विदित ।
तहँ तहँ त्रिकाल वंदित 'भविक' भावसहित शिरनायनित॥९॥

सम्यग्दृष्टिकी महिमा कवित्त.

स्वरूप रिझवारेसे सुगुण मतवारेसे, सुधाके सुधारेसे सुप्राण दयावंत हैं। सुबुद्धिके अथाहसे सुरिद्धपातशाहसे, सुमनके सनाहसे महावडे महंत हैं। सुध्यानके धरैयासे सुज्ञानके करैयासे, सुप्राण परखैयासे शकती अनंत हैं। सवै संघनायकसे सवै बोलला यकसे सवै सुखदायकसे सम्यकके संत हैं॥ १० ॥

(सवैया)

काहेको कूर तू क्रोध करै अति, तोहि रहैं दुख संकट घेरें।
काहेको मान महाशठ राखत, आवत काल छिनै छिन नेरे॥
काहेको अंध तु वंधत मायासों, ये नरकादिकमें तुहे गेरें।
लोभ महादुख मूल है भैया, तु चेतत क्यों नहिं चेत सवेरे॥११॥

कवित्त.

जेते जग पाप होंहि अध्रमके व्याप होंहि, तेते सव कारजको मूल लोभकूप है। जेते दुखपुंज होहिं कर्मनके कुंज होहिं, तेते सव वंधनको मूल नेह रूप है॥ जेते वहु रोग होंहिं व्याधिके संयोग होंहिं, तेते सब मूलको अजीरन अनूप हैं। जेते जगमर्ण होंहिं काहूकी न शर्ण होंहिं, तेते सब रूपको शरीरनाम भूप है॥१२॥

ज्ञानमें है ध्यानमें है वचन प्रमाणमें है, अपने सुथानमें है ताहि पहचानुरे। उपजै न उपजत मूए न मरत जोई, उपजन मरन व्योहार ताहि मानुरे॥ रावसो न रंकसो है पानीसो न पंकसो है, अति ही अटंकसो है ताहि नीके जानुरे। आपनो प्रकाश करै अष्टकर्म नाश करै, ऐसी जाकी रीति 'भैया' ताहि उर आनुरे॥१३॥

सेर आध नाज[1]काज अपनों करै अकाज, खोवत समाज सव

(१) अन्न

राजनितें अधिके। इद्र होतो चद्र होतो नरनागइन्द्र होतो करत तपस्या जोपें पठि साधुमधिकें॥ इन्द्रिनको दम होतो 'यम ओ नियम होतो,' जमको न गम होतो ज्ञान होतो अधिकें। लोकालोक भास होतो अष्टकर्म नाश होतो, मोखमें सुवास होतो चलतो जो सधिकें ॥ १४ ॥

सवैया

काहेको कूर तू भूरि सहै दुख,पचनके परपच भखाये।
ये अपने अपने रसको नित पोखतु है, तोहि लोभ लगाये॥
तू कछु भेद न बूझतु रचक, तोहि दगा करि देत बँधाये॥
है अबके यह दाव भलो नर! जीत ले पच जिनद बताये॥ १५॥
हे नर अध तू वधत क्यों निज, सूझत नाहि कै भग खई है।
जे अघ सचतु है नित आपको, ते तोहि सौज करैंगे गई है॥
ये नरकादिकमें तोहि डारिकें, देह सजा बहु ऐसी भई है।
मानत नाहि कहू समुझाय, सु तोकों दई मति ऐसी दई है॥१६॥

कवित्त

धूमनके धौरहर देख कहा गर्व करै, ये तो छिनमाहि जाहि पौन परसत ही। सध्याके समान रग देखत ही होय भग, दीपकपतग जैसें काल गरसत ही॥ सुपनेमें भूप जैसें इद्रधनुरूप जैसें, ओसबूद धूप जैसें दुरै दरसत ही। ऐसोई भरम सब कर्म-जालवर्गणाको, तामे मूढ मग्न होय मरै तरसत ही॥ १७॥

मात्रिक कवित्त

देख तू दृष्टि विचार अभ्यतर, या जगमहि कछु साचो आह।
मात तात सुत बन्धन वनिता, इनसो प्रीति करै कित चाह।

(१) दर सब तम हो ता' ऐसा भी पाठ है (२) बहकाये (३) 'तोही' ऐसा भी पाठ है (४) 'ठाट' ऐसा भी पाठ है

तन यौवन कंचन औ मंदिर, राजरिद्ध प्रभुता पद काह ।
ये उपजै विनशै अपनी थिति, तूं कित नाथ होंहि शठ! ताह ॥१८॥

कवित्त.

संसारी जीवनके करमनको बंध होय, मोहको निमित्त पाय रागद्वेषरंगसों । वीतराग देवपैं न रागद्वेष मोह कहूं, ताहीतें अवंध कहे कर्मके प्रसंगसों ॥ पुग्गलकी क्रिया रही पुग्गलके खेतबीचि, आपहीतें चलै धुनि अपनी उमंगसों । जैसें मेघ परै विनु आपनिज काज करै, गर्जि वर्षि झूम आवे शकति सु छंगसों ॥ १९ ॥

मात्रिक कवित्त.

आतमसूवा भरममहिं भूल्यो, कर्म नलिनपैं वैठो आय ।
विषयस्वादविरम्यों इह थानक, लटक्यो तरैं ऊर्द्ध्वभये पाँय ॥
पकैर मोहमगन चुंगलसों, कहै कर्मसों नाहिं वसाय ।
देखहु किन? सुविचार भविक जन, जगत जीव यह धरै स्वभाय२०
तोलों प्रगट पूज्यपद थिर है, तोलों सुजस लहै परकास ।
तोलौं उज्जल गुणमणि स्वच्छित, तोलों तपनिर्मलता पास ॥
तोलों धर्मवचनमुख शोभत, मुनिपद ऐसे गुनहिं निवास ।
जोलों रागसहित नहिं देखत, भामनिको मुखचंदविलास ॥ २१ ॥

कवित्त.

जोपैं चारों वेद पढे रचिपचि रीझ रीझ, पंडितकी कलामें प्रवीन तू कहायो है । धरम व्योहार ग्रन्थ ताहूके अनेक भेद, ताके पढे निपुण प्रसिद्ध तोहि गायो है ॥ आतमके तत्त्वको निमित्त कहूं रंच पायो, तोलों तोहि ग्रन्थनिमें ऐसे के बतायो है ।

जैसें रसव्यञ्जनिमें करछी फिरै सदीव, मूढतासुभावसों न स्वाद कछु पायो है ॥ २२ ॥

सवैया

चेतन ऐसेमें चेतत क्यो नहि, आय बनी सबही विधि नीकी ।
है नरदेह यो आरज खेत, जिनदकी वानी सु वूद अमीकी ॥
तामे जु आप गहो थिरता तुम, तौ प्रगटै महिमा सब जीकी ।
जामें निवास महासुखवाससु, आय मिलै पतिया शिवतीकी॥२३

कवित्त

ग्रीषममें धूप परै तामें भूमि भारी जरै, फूलत है आक पुनि अतिही उमहिकै । वर्षाऋतुमेघ झरै तामें वृक्ष केई फरै, जरत जवामा अघ आपुहीतै डहिकै ॥ ऋतुको न दोष कोऊ पुण्यपाप फलै दोऊ, जैसें जैसे किये पूर्व तैसें रहै सहिकै । केई जीव सुखी होहि केई जीव दुखी होंहि, देखहु तमासो 'भैया' न्यारे नैकु रहिकै ॥ २४ ॥

दोहा

पुण्य ऊर्द्ध गतिको करै, निश्चै भेद न कोय ।
तातै पुण्यपचीसिका, पढे धर्म फल होय ॥ २५ ॥

सत्रहसे तेतीसके, उत्तम फागुन मास ।
आदिपक्ष नमि भावसो, कहै भगोतीदास ॥ २५ ॥

इति पुण्यपचीसिका समाप्ता ॥ १ ॥

अथ शतअष्टोत्तरी कवित्तबन्ध लिख्यते ।

दोहा.

ओंकार गुण अति अगम, पँचपरमेष्टि निवास ।
प्रथम तासु वंदन किये, लँहिये ब्रह्मविलास ॥ १ ॥

छप्पय.

द्रव्य एक आकाश, जासुमहिं पंच विराजत ।
द्रव्य एक चिद्रूप, सहज चेतनता राजत ॥
द्रव्य एक पुनि धर्म, चलन सबको सहकारी ।
द्रव्य सुएक अधर्म, रहनथिरता अधिकारी ॥
द्रव्य एक पुद्गल प्रगट, अरु अंतक षट मानिये ।
निज निज सुभावमें सब मगन, यह सुबोध उर आनिये ॥ २ ॥
जीव ज्ञानगुण धरै, धरै मूरतिगुण पुद्गल ।
जीव स्वपर करि भेद, भेद नहि लहै कर्ममल ॥
जीव सदा शिवरूप, रूपमें दर्वसु ओरें ।
जीव रमै निजधर्म, धर्मपर लहैं न ठौरें ।
जीव दर्व चेतन सहित, तिहूं काल जगमें लसै ।
तसु ध्यान करत ही भव्य जन, पंचमिगति पलमें वसै ॥ ३ ॥
रसनाके रस मीन, प्राण पलमाहिं गमावै ।
अलि नासा परसंग, रैन वहु संकट पावै ॥
मृग करि श्रवण सनेह, देह दुरजनको दीनी ।
दीपक देख पतंग, दृष्टि हित कैसी कीनी ॥
फरसइंद्रिवस करि पस्यो, कौन कौन संकट सहै ।
एक एक विषवेलिसम, पंचन सेय तु सुख चहै ॥ ४ ॥

---

(१) 'होयत'–ऐसा भी पाठ है. (२) काल.

चेतु चेतु चित चेतु, विचक्षण वेर यह।
हेतु हेतु तुव हेतु, कहित हौं रूप गह॥
मानि मानि पुनि मानि, जनम यहु वहुर न पावै।
ज्ञान ज्ञान गुण जान, मूढ क्यों जन्म गमावै॥
वहु पुण्य अरे नरभौ मिल्यो, सो तू खोवत वावरे।
अज हू सभारि कछु गयो नहि 'भैया' कहत यह दानरे॥५॥

कवित्त

जैसो वीतराग देव कह्यो हैं स्वरूपसिद्ध, तसो ही स्वरूप मेरो यामें फेर नाहीं है। अष्टकर्म भावकी उपाधि मोमें कहू नाहिं, अष्ट गुण मेरे सो तौ सदा मोहि पाहीं है॥ ज्ञायक स्वभाव मेरो तिहू काल मेरे पास, गुण जे अनन्त तेऊ सदा मोहिमाहीं हैं। ऐसो है स्वरूप मेरो तिहू काल सुद्धरूप, ज्ञानदृष्टि देखत न दूजी परछाही है॥ ६॥

विकट भौसिधु ताहि तरिवेको तारू कौन, ताकी तुम तीर आये देखो दृष्टि धरिकै। अवके सभारेते पार भले पहुँचत हौ, अवके सभारे निन वूडत हो तरिकै॥ वहुरयो फिर मिलनो नाहिं ऐसो है सयोग, देव गुरु ग्रथ करि आये हिय धरि कै। ताहि तू विचारि निज आतमनिहारि 'भैया' धारि परमातमाहिं शुद्ध ध्यान करिकै॥७॥

जोपै तोहि तरिवेकी इच्छा कछु भई भैया, तो तौ वीतरागजूके वच उर धारिये। भौमसुद्रजलमें अनादिही ते वूडत हो, जिननाम नौका मिली चित्तते न टारिये॥ खेवट विचारि शुद्ध थिरतासों ध्यान काज, सुखके समूहको सुदृष्टिसो निहारिये। चलिये जो इह पथ मिलिये त्यों मारगमें, जन्मजरामरनके भयको निवारिये॥ ८॥

ज्ञानप्रान तेरे ताहि नेरे तौ न जानत हो, आनप्रान मानि आनरूप मानि रहे हो । आतमके वंशको न अंश कहूं खुल्यो कीजै, पुग्गलके वंशसेती लागि लहलहे हो ॥ पुग्गलके हारे हार पुग्गलके जीते जीत, पुग्गलकी प्रीतसंग कैसें वहवहे हो । लागत हो धायधाय लागै न उपाय कछू, सुनो चिदानंदराय ! कौन पंथ गहे हो ? ॥ ९ ॥

छंद द्रुमिला ।

इक बात कहूं शिवनायकजी, तुम लायक ठौर कहां अटके ? ।
यह कौन विचक्षन रीति गही, विनुदेखहि अक्षनसों भटके ॥
अजहूं गुणमानो तो शीख कहूं, तुम खोलत क्यों न पटै घटके ? ।
चिनमूरति आपु विराजतु है, तिन सूरत देखे सुधा गटके ॥१०॥

सवैया

शुद्धितें मीन पियें पय बालक, रासभ अंगविभूति लगाये ।
राम कहे शुक ध्यान गहे वक, भेड़ तिरै पुनि मूंड़ मुड़ाये ॥
वस्त्र विना पशु व्योम चलै खग, व्याल तिरें नित पौनके खाये ।
एतो सबै जड़ रीत विचक्षन ! मोक्ष नहीं विनतत्वके पाये॥११॥
कर्म स्वभावसों तौंतोसो तोरिकें, आतम लक्षन जानि लये हैं ।
ध्यान करै निहचै पदको जिहँ, थानक और न कोऊ ठये हैं ॥
ज्ञान अनंत तहां प्रतिभासत, आपु ही आपु स्वरूप छये हैं ।
और उपाधि पखारिकें चेतन, शुद्ध भये तेउ सिद्ध भये हैं॥१२॥
देखत रूप अनूप अनूपम, सुंदरता छवि रीझिकैं मोहै ।
देखत इन्द्र नरेन्द्र महामुनि, लच्छिविभूषण कोटिक सोहै ॥

---

(१) जलशुद्धि (२) राख (३)' नातोसो तोरिके ' ऐसा भी पाठ है.

देखत देव कुदेव सबै जग, राग विरोध धरै उर दो है।
ताहि विचारि विचक्षन रे मन! द्वैपल देखु तो देखत को है॥१३॥

कवित्त

सुनो राय चिदानद कहोजु सुबुद्धि रानी, कहैं कहा वेर वेर नैकु तोहि लाज है। कैसी लाज कहो कहा हम कछु जानत न, हमें इहा इद्रनिको विषै सुख राज है॥ अरे मूढ विषै सुख सेयें तू अनन्ती वेर, अज हू अघायो नाहि कामी शिरताज है। मानुष जनम पाय आरज सुखेत आय, जो न चेतै हसराय तेरो ही अकाज है॥१४॥

सुनो मेरे हस एक बात हम साची कहैं, कहो क्यों न नीके कोउ मुखहू गहतु है। तुम जो कहत देह मेरी अरु नीकें राखों, कहो कैसें देह तेरी राखी ये रहतु है?॥ जाति नाहि पाति नाहि रूपरग भाति नाहि, ऐसें झूठ मूठ कोउ झूटोहू कहतु है। चेतन प्रवीनताई देखी हम यह तेरी, जानिहो जु तब ही ये दुख को सहतु है॥ १५॥

सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा लाहु, कौन विनसाहु, जाहि ऐसें लीजियतु है। दश द्यौस[1] विषैसुख ताको कहो केतो दुख, परिकें नरकमुख कोलों सीजियतु है॥ केतो काल बीत गयो अजहू न छोर लयो, कहू तोहि कहा भयो ऐसे रीझयतु है। आपु ही विचार देखो कहिवेको कौन लेखो, आवत परेखो[2] तातें कह्यो कीजियतु है॥ १६॥

मानत न मेरो कह्यो मान बहुतेरो कह्यो, मानत न तेरो गयो कहो कहा कहिये?। कौन रीझि रीझि रह्यो कौन बूझ बूझ रह्यो, ऐसी बातें तुमे यासों कहा कही चहिये?। एरी मेरी रानी तोसों कौन है सयानी सखी, एतो बापुरी विरानी तू न रोस गहिये।

(१) दिन (२) विचारी

इनसो न नेह मोहि तोहीसों सनेह वन्यों, रामकी दुहाई कहूं तेरे गेह रहिये ॥ १७ ॥

जीवन कितेक तापै सामा तू इतेकु करै, लक्ष कोटि जोर जोर नैकु न अघातु है। चाहतु धराको धन आन सब भरों गेह, यों न जानैं जनम सिरानो मोहि जात है॥ कालसम क्रूर जहां निशदिन घेरो करै, ताके बीच शशा जीव कोलों ठहरातु है। देखतु है नैन-निसों जगसब चल्यो जात, तऊमूढ चेतै नाहिं लोभै ललचातुहै॥१८॥

कहां हैं वे वीतराग जीते जिन रागद्वेष, कहां है वे चक्रवर्ति छहों खंडके धनी। कहां हैं वे वासुदेव युद्धके करैया वीर, कहां हैं वे कामदेव कामकीसी जे अनी ॥ कहां है वे राजा राम रावनसे जीते जिनि, कहां हैं वे शालिभद्र लच्छि जाके थी घनी। ऐसे तो कईक कोटि ह्वै गये अनंती वेर, डेढ दिन तेरी वारी काहेको करै मनी ॥ १९ ॥

सुनिरे सयाने नर कहा करै घरघर, तेरो जु शरीरघर घरीज्यों तरतु है। छिन २ छीजे आय जल जैसें घरी जाय, ताहूको इलाज कछु उरहू धरतु है ॥ आदि जे सहे हैं ते तौ यादि कछु नाहि तोहि, आगें कहो कहा गति काहे उछरतु है। घरी एक देखो ख्याल घरीकी कहां है चाल, घरी घरी घरियाल शोर यों करतु है ॥२०॥

पाय नर देह कहो कीनों कहा काम तुम, रामा रामा धनधन करत विहातु है। कैक दिन कैक छिन रहि है शरीर यह, याके संग ऐसें काज करतु सुहातु है॥ जानत है यह घर मरवेको नाहिं डर, देख भ्रम भूलि मूढ फूलि मुसकात है। चेतरे अचेत पुनि चेतवेको नाहि ठौर, आज कालि पींजरेसों पंछी उड जातु है ॥ २१ ॥

कर्मको करैया सो तो जानै नाहिं कैसे कर्म, भरममें अनादिही-

को करमै करतु है। कर्मको जनैया(भैया)सोतो कर्म करै नाहि, धर्म माहि तिहूकाल धरम धरतु है॥दुहनकी जाति पाति लच्छन स्व भाव भिन्न, कबहू न एकमेक होइ विचरतु है। जा दिनातें ऐसी दृष्टि अन्तर दिखाई दई, तादिनातें आपु लखि आपुही तरतु है ॥२२॥

सवैया

जीव अकर्ता कह्यो परको, परको करता पर ही परवान्यो।
ज्ञान निधान सदा यह चेतन, ज्ञान करै न करै कछु आन्यो॥
ज्यों जग दूध दही घृत तक्रकी, शक्ति धरै तिहु काल बखान्यो।
कोऊ प्रवीन लखै दृगसेती सु, भिन्न रहै वपुसों लपटान्यो॥२३॥

मात्रिक कवित्त

चेतन चिह्न ज्ञान गुण राजत, पुद्गलके वरणादिक रूप।
चेतन आपरु आन विलोकत, पुग्गल छाँह धरै अरु धूप॥
चेतनकै थिरता गुण राजत, पुग्गलकै जडता जु अनूप।
चेतन शुद्ध सिधालय राजत, ध्यावत है शिवगामी भूप॥ २४॥

कवित्त

जीवहू अनादिको है कर्मंहू अनादिको है, भेदहू अनादिको है सर्व दोऊदलमें। रीझवेको है स्वभाव रीझनाहीं है स्वभाव, रीझवे को भावसो स्वभाव है अमलमें॥ साँचेही सो करे प्रीति साचेसों न करी प्रीति, साची विधि रीतिसो बहाय दई पलमें। ज्ञान गुन काम कीने काम के न काम कीने, ध्यानमें मुकाम कीने वसे आप थलमें॥ २५॥

दासीनके सग खेल खेलत अनादि वीते, अजहू लों वहै बुद्धि कौन चतुरई है। कैसी है कुरूपकारी निशि जैसें अँधियारी, औ-

(१) 'न रहै' ऐसा भी पाठ है

गुन गहनहारी कहा जान लई है ॥ इनहीकी संगतसों संकट अनेक सहे, जानि बूझ भूल जाहु ऐसी सुधि गई है । आवत परेखो हंस! मोहि इन बातनको, चेतनाके नाथको अचेतना क्यों भई है ॥ २६ ॥

कहाँ कहाँ कौनसंग लागेही फिरत लाल! आवो क्यों न आज तुम ज्ञानके महलमें । नैकहू विलोकि देखो अन्तरसुदृष्टिसेती, कैसी कैसी नीकी नारि ठाड़ी हैं टहलमें ॥ एकनतें एक वनी सुंदर सुरूप घनी, उपमा न जाय गनी वामकी चहलमें । ऐसी विधिपाय कहूं भूलि और काज कीजे, एतो कह्यो मानलीजे वीनती सहलमें ॥ २७ ॥

सवैया.

लाई होंलालन बाल अमोलक, देखहु तो तुम कैसी बनी हैं ? ऐसी कहूं तिहुं लोकमें सुन्दर, और न नारि अनेक घनी हैं ॥ याहीतैं तोहि कहूं नित चेतन ! याहूकी प्रीति जु तोसों सनी है । तेरी औ राधेकी रीझि अनंत, सु मोपें कहूं यह जात गनी है॥२८॥

कायासी जु नगरीमें चिदानंद राज करै, मायासी जु रानी पैं मगन बहु भयो है । मोहसो है फोजदार क्रोधसो है कोतवार, लोभसो वजीर जहां लूटिवेको रह्यो है ॥ उदैको जु काजी मानै मानको अदल जानै, कामसेवा कानवीस आइ वाको कह्यो है । ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूल गयो, सुधि जब आई तबै ज्ञान आय गह्यो है ॥ २९ ॥

कवित्त.

कौन तुम कहां आये कौनें बौराये तुमहिं, काके रस रसे कछु सुधहू धरतु हो ?। कौन हैं ये कर्म जिन्हे एकमेक मानिरहे, अजहूं न लागे हाथ भाँवरि भरतु हो वे दिन चितारो जहां वीते हैं

अनादिकाल, कैसे कैसे सकट सहेहु विसरतु हो । तुम तो सयाने पै सयान यह कौन कीन्हो, तीनलोकनाथ हैके दीनसे फिरतु हो ॥ ३० ॥

देख कहा भूलि पर्‍यो देख कहा भूलि परचो, देख भूलि कहा करचो हरचो सुख सब ही। ज्ञान है अनत ताहि अक्षर अनन्त भाग, वल है अनत ताहि देखो क्या न अब ही ॥ कामवशपरे तातें नरकमें वशपरे, ऐसे दुख परे सो कहे न जाहिं कब ही । बात जो निगोदकी है तेह तैंन गोदकी है, ऐसे अनुमोदकी है जानिह जो तब ही ॥ ३१ ॥

सवैया

वे दिन क्यो न चितारत चेतन, मातकी कूखमें आय वसे हो।
ऊरध पाव नगे निशिवासर, रच उसासनिको तरसे हो ॥
आवसयोग वचे कहु जीवत, लोगनिकी तब दृष्टि लसे हो ।
आजु भये तुम यौवनके रस, भूल गये कितंत निकसे हो॥३२॥

कवित्त

सहे हैं नरकदुख फेर भयो तेही रुख, वेरवेर कहे सुख मैं ही सुख लहा है । जोवनकी जेव भरे जुगति लगावे गरे, करे काम खोटे खरे काम आगि दहा है ॥ दिन दश वीति जाय हाथपीट पछताय, यौवन न ठहराय कीजे अब कहा है। जरा आइ लागी कान भूलिगये अवसान, देखे जमके निमान परचो शोच महा है॥३३॥

जाही दिन जाही छिन अतर सुबुद्धि लसी, ताही पल ताही समैं जोतिसी जगति है । होत है उद्योत तहा तिमिर विलाइजातु, आपापर भेद लखि ऊरधन गति है ॥ निर्मल अतीन्द्री ज्ञान

(१) 'कुमातनको'-ऐसा भी पाठ है

देखि राय चिदानंद, सुखको निधान याकै माया न जगति है। जैसो शिवखेत तैसो देहमें विराजमान, ऐसो लखि सुमति स्वभावमें पगति है ॥ २४ ॥

मात्रिक कवित्त.

जबते अपनो जी आपु लख्यो, तबतें जु मिटी दुविधा मनकी ।
यों शीतल चित्त भयो तबही सब, छांडदई ममता तनकी ॥
चिंतामणि जब प्रगट्यो घरमें, तब कौन जु चाहि करै धनकी ।
जो सिद्धमें आपुमें फेर न जानै सो, क्यों परवाह करै जनकी ॥ २५॥

सवैया.

केवल रूप महा अति सुंदर, आपु चिदानंद शुद्ध विराजै ।
अंतरदृष्टि खुलै जब ही तब, आपुहीमें अपनो पद छाजै ॥
सेवक साहिब कोऊ नही जग, काहेको खेद करै किहँ काजै ।
अन्य सहाय न कोऊ तिहारै जुं, अंत चल्यो अपनो पद साजै ॥२६॥

दोहा.

जा छिन अपने सहज ही, चेतन करत किलोल ॥
ता छिन आन न भास ही, आपुहि आपु अडोल ॥ २७ ॥

कवित्त.

पियो है अनादिको महा अज्ञान मोहमद, ताहीतैं न शुधि याहि और पंथ लियो है। ज्ञानविना व्याकुल है जहां तहां गिस्यो परै, नीच ऊंच ठौरको विचार नाहिं कियो है ॥ वकिबो विराने वश तनहूकी सुधि नाहिं, बूडै सब कूपमाहिं सुन्नसान हियो है। ऐसे मोहमदमें अज्ञानी जीव भूलि रह्यो ज्ञानदृष्टि देखो 'भैया' कहा ताको जियो है ॥ २८ ॥

देखत हो कहां कहां केलि करै चिदानंद, आतम स्वभाव भूलि

(१) 'सहाय नही नर कोउ तिहारै' ऐसा पाठ भी है

और रम राच्यो है। इन्द्रिनके सुखमें मगन रहै आठों जाम इन्द्रिनके दुख देख जाने दुख साच्यो है ॥ कहूं क्रोध कहूं मान कहूं माया कहूं लोभ, अहंभाव मानिमानि ठौरठौर माच्यो है ॥ देव तिरजच नरनारकी गतिन फिर, कौन कौन स्वाग धरे यह ब्रह्म नाच्यो है ॥ ३९ ॥

करखाछंद गुर्जरभाषाया

उहिल्या जीवडा हूं तने शूं कहूं, वळी वळी आज तु विषयनिप सेवै।
विषयना फल अछे विषय थकी पाडुवा ज्ञाननी दृष्टि तू का न वेवै ॥
हजी शु सीख लागी नथी का तने नरकना दुःख कहिवेको न रेवै।
आव्यो एकलो जायपण एक तू, एटलामाटे का एटलू खेवै ॥

कवित्त

कोउ तो करै किलोल भामिनीसों रीझिरीझि, वाहीसों सनेह करै कामराग अगमें। कोउतो लहै अनंद लक्ष कोटि जोरि जोरि, लक्ष लक्ष मानकरै लच्छिकी तरंगमें। कोउ महाशूरवीर कोटिक गुमान करै, मो समान दूसरो न देखो कोऊ जगमें। कहै कहा 'भैया, कछु कहिवेकी वात नाहि, सब जग देखियतु रागरस रंगमें ॥ ४१ ॥

जोलों तुम और रूप ह्वै रहे हो चिदानंद, तोलों कहू सुख नाहि रावरे विचारिये। इन्द्रिनिके सुखको जो मान रहे साचो सुख, सो तो सब दुःख ज्ञान दृष्टिमों निहारिये॥ एतो विनाशीक रूप छिनमें और स्वरूप, तुम अविनाशी भूप कैसें एकु धारिये। ऐसो नरजन्म पाय नेकु तो विवेक कीजे, आप रूप गहि लीजे कर्मरोग टारिये ॥४२॥

अरे मूढ चेतन! अचेतन तू काहे होत, जेई छिन जाहिं फिर तेई तोहि आयनी ? । ऐसो नरजन्म पाय श्रावकके कुल आय,

रह्यो है विषै लुभाय आंधीमति छाइवी ॥ आगें हू अनादिकाल वीते विपरीत हाल, अजहूं सम्हारि लाल! वेर भली पाइवी । पीछें पछतायें कछु आइ है न हाथ तेरे, तातें अव चेत लेहु भली परजायवी ॥ ४३ ॥

जीवैं जग जिते जन तिन्हैं सदा रैनदिन, सोचतही छिन छिन काल छीजियतु है । धन होय धान होय, पुत्र परिवार होय, वडो विसतार होय जस लीजियतु है ॥ देहहू निरोग होय सुखको संयोग होइ मनबांछे भोग होय जौलौं जी जियितु है । चहै वांछा पूरी होइ पैन वांछे पूरी होय, आयु थिति पूरी होय तोलों कीजियतु है॥४४॥

मात्रिक कवित्त.

जबलों रागद्वेष नहिं जीतय तवलों मुकति न पावै कोइ ।
जवलों क्रोध मान मनधारत, तवलों, सुगति कहांतें होइ ॥
जबलों माया लोभ वसे उर, तवलों, सुख सुपनै नहिं जोइ ।
एअरि जीत भयो जो निर्मल, शिवसंपति विलसत है सोइ ॥४५॥

कवित्त.

सात धातु मिलन है महादुर्गन्ध भरी, तासों तुम प्रीति करी लहत अनंद हौ । नरक निगोदके सहाई जे करन पंच, तिनहीकी सीख संचि चलत सुछंद हौ ॥ आठों जाम गहै काम रागरसरंगराचि, करत किलोल मानों माते ज्यों गयंद हौ । कछू तो विचार करो कहां कहां भूले फिरो, भलेजू भलेजू 'भैया' भले चिदानंद हौ ॥ ४६ ॥

सवैया.

ए मन मूढ! कहा तुम भूले हो, हंसविसार लगे परछाया ।
यामें स्वरूप नहीं कछु तेरो जु, व्याधिकी पोट बनाई है काया॥

सम्यक रूप सदा गुण तेरोसु, और वनी सवही भ्रम माया ।
देखत रूप अनूप विराजत सिद्धसमान जिनद बताया ॥ ४७॥
चेतन जीव! निहारहु अतर, ए सव है परकी जड काया ॥
इन्द्रकमान ज्यो मेघघटामहिं, शोभत है पै रहै नहि छाया ॥
रैन सम सुपनो जिम देखे तु प्रात वहै सव झूट बताया ।
त्यों नदिनाव सँयोगमिल्यो तुम, चेतहु चित्तमें चेतन राया ॥४८॥
देहके नेह लग्यो कहा चेतन, न्यारी ये क्यों अपनी करमानी ।
याहीसो रीझि अज्ञानमें मानिकें, याहीमें आपु न ह्वैरह्यो थानी ॥
देखतु है परतच्छ विनाशी तऊ, नहि चेतत अध अज्ञानी ।
होहु सुखी अपनो वल फोरिकै, मान कह्यो सर्वज्ञकी वानी ॥४९॥

समस्यापूर्ति—'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' सवैया ।

केवलरूप विराजत चेतन, ताहि निलोकि अरे मतवारे ।
काल अनादि वितीत भयो, अजहू तोहि चेत न होत कहा रे?[1] ॥
भूलिगयो गतिको फिरवो अव तो दिन च्यारि भये ठकुरारे ।
लागि कहा रह्यो अक्षनिके सग, 'चेतत क्यों नहि चेतनहारे'॥५०॥
वालक है तव वालकसी बुधि, जोवन काम हुतासन जारे ।
वृद्ध भयो तव अग रहे थकि, आये है सेत गये सव कारे ॥
पाँय पसारि पर्यो धरतीमहि, रोवै रटै दुख होत महारे ।
बीती यों वात गयो सव भूलि तू, चेतत क्यो नहि चेतनहारे॥५१॥
वालपनै नित वालनके सँग, खेल्यो है ताकी अनेक कथारे ।
जोवन आप रस्यो रमनीरस, सोउ तो वात विदीत यथारे ॥
वृद्ध भयो तन कपत डोलत, लार परै मुख होत विथारे ।
देखि शरीरके लच्छन भैया तु, 'चेतत क्यों नहि चेतनहारे'॥५२॥

(१) इन्द्रधनुष (२) इन्द्रियोंके

तू ही जु आय वस्यो जननी उर, तूही रम्यो नित बालकतारे ।
जोबनताजु भई पुनि तोहिको, ताहीके जोर अनेक तैं मारे ॥
वृद्ध भयो तुंही अंग रहै सब, बोलत वैन कहै तुतरारे ।
देखि शरीरके लक्षण भैया तु 'चेतत क्यों नहिं चेतन हारे' ॥५३॥

औरसों जाइ लग्यो हितमानिके, वाहीके संग सुज्ञान विडारे ।
काल अनादि वस्यो जिनके ढिग, जान्यो न लक्षण ये अरि सारे ॥
भूलिगयो निजरूप अनूपम, मोह महा मदके मतवारे ।
तेरो हू दाव वन्यो अवके तुम, चेतत क्यों नहिं चेतन हारे ॥५४॥

कवित्त.

पंचनसों भिन्न रहै कंचन ज्यों काई तजै, रंच न मलीन होय जाकी गति न्यारी है । कंजनके कुल ज्यों स्वभाव कीच छुवै नाहि, बसै जलमाहि पै न उर्द्धता विसारी है ॥ अंजनके अंश जाके वंशमै न कहूं दीखै, शुद्धता स्वभाव सिद्धरूप सुखकारी है । ज्ञानको समूह ज्ञान ध्यानमें विराजि रह्यो, ज्ञानदृष्टि देखो 'भैया' ऐसो ब्रह्मचारी है ॥ ५५ ॥

चिदानंद भैया विराजत है घटमाहिं, ताके रूप लखिवेको उपाय कछू करिये । अष्ट कर्म जालकी प्रकृति एक चार आठ, तामें कछू तेरी नाहि आपनी न धरिये ॥ पूरबके बंध तेरे तेई आइ उदै होंहि, निजगुणशकतिसों तिन्है त्याग तरिये । सिद्धसम चेतन स्वभावमें विराजत है, वाको ध्यान धरु और काहुसों न डरिये ॥ ५६ ॥

एक शीख मेरी मान आप ही तू पहिचान, ज्ञान द्रगचर्ण आन वास वाके थरको । अनंत वलधारी है जु हलको न

भारी है, महाब्रह्मचारी है कुमारी नाहिं जरको ॥ आप महा तेजवंत गुणको न और अंत, जाकी महिमा अनंत दूजो नाहिं वरको। चेतनाके रस भरे चेतन प्रदेश धरे, चेतनाके चिह्न करे सिद्ध पटतरको ॥ ५७ ॥

कर्मको करैया यह भरमको भरैया यह, धर्मको धरैया यहै शिवपुर राव है। सुख समझैया यह दुख भुगतैया यहै, भूलको भुलैया यहै चेतना स्वभाव है॥ चिरको फिरैया यहै भिन्नको रहैया यहै, सबको लखैया यहै याको भलो चाव है। राग द्वेषको हरैया महामोहको करैया, यहै शुद्ध 'भैया' एक आतम स्वभाव है ॥ ५८ ॥

उर्दूभाषामें कवित्त

मान यार[1] मेरा कहा दिलकी चशम खोल, साहिब नजदीक है तिसको पहचानिये। नाहक फिरहु नाहिं गाफिल जहान बीचि शुकन गोस जिनका भलीभाति जानिये ॥ पावक ज्यों बसता है अरनी पखानमाहिं, तीसरोस चिदानंद इसहीमें मानिये। पंजसे गनीम तेरी उमरसाथ लगे हैं खिलाफ तिसे जानि तू आप सच्चा जानिये ॥ ५० ॥

अबे भरमके ख्वोरमों देख क्या भूलता, देखि तु आपमें जिन आपने बताया है। अंतरकी दृष्टि खोलि चिदानंद पाइयेगा, बाहिरकी दृष्टिसों पौद्गलीक छाया है ॥ गनीमनके भाव सब जुदे करि देखि तू, आगे जिन ढूंढा तिन इसीभाति पाया है। जे एव माशिब शिताबता है दिलबीच, सच्चा जिसका दिल है तिसीके दिल आया है ॥ ६० ॥

१ प्यारा

र पढ्यो चाहै पारसी। मिथ्यामती देव जहा शीस नावे जाय तहा, एते पर कहै हमे येही पूरो पारसी॥ निशदिन विषै मानै सुकृतको नहि जानै, ऐसी करतूत करै पढ्यो चाहै पारसी॥ नरकमाहि परेगो मुतीसतीन भरेगो, करेगो पुकार एको न विपति पारसी॥६५॥

सवैया

देव अदेवमें फेर न मान, कहै सब एक गवार कहू को।
साधु कुसाधु समान गन चित, रच न जानत भेद कहूको॥
धर्म कुधर्मको एक विचारत, ज्ञान बिना नर वासी चहूको।
ताहि विलोकि कहा करिये मन ! भूलो फिरै शठ कालतिहूको॥६६॥

दोहा

नैननितै देखै सकल, नैना देखै नाहि।
ताहि देखु को देख तो, नैनझरोखे माहि॥ ६७॥

कवित्त

देखै ताहि देखा जोपै देखिवेकी चाह वैर, देखे विन आप तोहि पाप बडो लागै है। मोह निद शैनमें अनादिकाल सोय रह्यो, देखि तू विचार ताहि सोवै है कि जागै है॥ रागद्वेषसगसों मिथ्यातरग राचि रह्यो, अष्ट कर्म जालकी प्रतीति मानि पागै है। विषैकी कलोल हम! देखि देखि भूलि गयो, रूपरस गध ताहि कैसें अनुरागै है॥ ६८॥

देव एक देहरेमें सुदर सुरूप बन्यो, ज्ञानको निवास जाको सिद्ध सम देखिये। सिद्धकीसी रीति लिये काहू सो न प्रीति किये, पुग्दलके वध तेई आइ उदै परिखिये॥ वर्ण गन्ध रस फास जामे कछु नाहि भैया, सदाको अवन्ध याहि ऐसो करि लेखिये। अजरा अमर ऐसो चिदानन्द जीव नाव, अरो मन मूढ ताहि मर्ण क्यो विसेखिये॥ ६९॥

काके दोऊ राग द्वेष? जाके ये करम आठ, काके ये करम आठ? जाके रागद्वेख हैं। ताको नाव क्यों न लेहु? भले जानो तुम लेहु, लिखिहु बताबो लिखिवेको कहा लेख है?॥ ताको कछू लच्छन है? देखि तूं विचक्षन है, कछू उन्मान कहो? मान कह्यो भेख है। ए न कहो सुधि सुधि तो परंगी आगें आगें, जोपें कहू इनसों मिलाप कों विशेख है॥ ७०॥

कुंडलिया

भैया, भरम न भूलिये पुद्गलके परसंग।
अपनो काज सवांरिये, आय ज्ञानके अंग॥
आय ज्ञानके अंग, आप दर्शन गहि लीजे।
कीजे थिरताभाव, शुद्ध अनुभौ रस पीजे॥
दीजे चउविधि[1] दान, अहो शिव खेत वसैया।
तुम त्रिभुवनके राय, भरम जिन भूलहु भैया॥ ७१॥
हंसा हँस हँस आप तुझ, पूर्व संवारे फंद।
तिहिं कुदावमें बंधि रहे. कैसें होहु सुछंद॥
कैसें होहु सुछंद, चंद जिम राहु गरासै।
तिमर होय बल जोर, किरणकी प्रभुता नासै॥
स्वपरभेद भासै न देह जड़ लखि तजि संसा।
तुम गुण पूरन परम सहज अवलोकहु हंसा॥ ७२॥
भैया पुत्रकलत्र पुनि, मात तात परिवार।
ए सब स्वारथके सगे, तू मनमांहि विचार॥
तू मनमाहि विचार, धार निजरूप निरंजन।
पर परणति सो भिन्न, सहज चेतनता रंजन॥

(१) दशविधि—ऐसा भी पाठ है।

कर्म भर्म मिलि रच्यो, देह जड मूर्ति धरैया ।
तासों कहत कुटब मोह मद माते भैया ॥ ७३ ॥
सूवा सयानप सब गई सेयो सेमर वृच्छ ।
आये धोखे आमके, यापैं पूरण इच्छ ॥
यापैं पूरण इच्छ वृच्छको भेद न जान्यो ।
रहे विषय लपटाय, मुग्ध मति भरम भुलान्यो ॥
फलमहि निकसे तूल स्वाद पुन कछु न हूवा ।
यहै जगतकी रीति देखि, सेमर सम सूवा ॥ ७४ ॥

मात्रिक—कवित्त

आठनकी करतूत विचारहु, कौन कौन यह करते ख्याल ।
कबहू सिरपर छत्र धरावहिं, कबहू रूप करैं बेहाल ॥
देवलोक कबहू सुख भुगतहिं, कबहू नेकु नाजको काल ।
ये करतूति कर कर्मादिक चेतन रूप तु आप सभाल ॥ ७५ ॥
चेतन रूप विचारि विचक्षन, ए सब है परके परपच ।
आठों कर्म लगे निशिवासर, तिन्हैं निवारि लेहु किन सच ॥
जिय समुझावत हैं। फिर तोको, इनमे मग्न होउ जिन रच ॥
ये अज्ञान तुम ज्ञान विराजत, तात करहु न इनसो सच ॥ ७६ ॥
चेतन जीव विचारहु तो तुम निहचे ठौर रहनकी कौन ।
देव लोक सुरइद्र कहावत, तेहु करहिं अत पुनि गौन ॥
तीन लोकपति नाथ जिनेश्वर, चक्रीधर पुनि भर है जौन ।
यह ससार सदा सुपनेसम, निहचै वास इहा नहि हौन ॥ ७७॥
चितके अतर चेत विचक्षन यह नरभव तेरो जो जाय ।
पूरव पुण्य किये कहु अतिही तातैं यह उत्तम कुल पाय ॥
अब कछु सुकृत ऐसो कर तू, जातैं मरण जरा नहि थाय ।
चार अनती मरकें उपजे, अब चेतहु चित चतन राय ॥ ७८ ॥

कवित्त.

अरे नर मूरख तू भामनीसों कहा भूल्यो, विषकीसी वेल काहू दगाको बनाई है। सेवत ही याहि नैकु पावत अनेक दुःख, सुखहूकी वात कहूं सुपनै न आई है ॥ रसके कियेसों रसरोगको रसंस होइ, प्रीतिके कियेसों प्रीति नरककी पाई है। यह शुभ्र सागरमें डूबिवेकी ठौर 'भैया', यामें कछु धोखा खाय रामकी-दुहाई है ॥ ७९ ॥

मात्रिक कवित्त.

चंद्रमुखी मन धारत है जिय, अंतसमें तोकों दुखदाई।
चारहु गतिमें यही फिरावत, तासों तुम फिर प्रीति लगाई ॥
बार अनंती नरकहिं डारिकै, छेदन भेदन दुःख सहाई।
सुबुधि कहै सुनि चेतन प्रानी, सम्यक शुद्ध गहौ अधिकाई ॥८०॥

सवैया.

रे मन मूढ विचारि करो, तियके संग वात सवै विगरैगी।
ए मन ज्ञान सुध्यान धरो, जिनके संग वात सबै सुधरैगी ॥
ध्रू गुण आपु विलक्ष गहो पुनि, आपुहितै परतीति टरैगी।
सिद्ध भये ते यही करनी कर, ऐसें किये शिव नारि वरैगी ॥८१॥

सोरठा.

एहो चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी।
जे नरकहिं ले जाहिं, तिनहीसों राचे सदा ॥ ८२ ॥

मात्रिक कवित.

चेतन नींद वडी तुम लीनी, ऐसी नींद लेय नहिं कोय।
काल अनादि भये तोहि सेवत, विनजागे समकित क्यों होय ॥

निश्चै शुद्ध गयो अपनो गुण, परके भाव भिन्न करि खोय ।
हस अश उज्वल ह्वै जब ही, तब ही जीव सिद्धसम सोय ॥८३॥
काल अनादि भये तोहि सोवत, अब तो जागहु चेतन जीव ।
अमृत रस जिनवरकी वानी, एकचित्त निशचेकर पीव ॥
पूरव कर्म लगे तेरे सग, तिनकी मूर उखारहु नींव ।
ये जड प्रगट गुप्त तुम चेतन, जैसे भिन्न दूध अर घीव ॥ ८४॥

समान सवैया

काल अनादि तैं फिरत फिरत जिय,अब यह नरभव उत्तम पायो।
समुझि समुझि पडित नर प्रानी, तेरे कर चितामणि आयो ॥
घटकी ऑखै खोल जोहरी, रतन जीव जिनदेव बतायो ।
तिलमें तैल वास फूलनिमें, यो घटमें घटनायक गायो ॥ ८५ ॥

सवैया

हसको वश लख्यो जबतें, तबतें जु मिट्यो भ्रम घोर अधेरो ।
जीव अजीव सबै लख लीने, सु तत्त्व यहै जिनआगमकेरो ॥
तार्क्ष्यके आवत ही अहि भागे, सु छूटि गयो भवबधन घेरो ।
सम्यक शुद्ध गहो अपनो गुन,ज्ञानके भानु कियो है सबेरो॥८६॥

कवित्त

उदै करै जोपैं भानु पच्छिमकी दिशा आय, उडिके अकाश मध्य जाय कहू धरती । अचल सुमेरु सोऊ चल्यो जायअवनी पै, सीतता स्वभाव गहै आगि महा जरती ॥ फूलै जोपै काल कहू पर्वतकी शिलानपै, पाथरकी नाव चलै पानीमाहि तरती । च लिकै ब्रह्मड जोपै तालमधि जाहि कहू, तऊ विधनाकी लेखि- लिखी नाहि टरती ॥ ८७ ॥

सवैया.

काहेको शोच करै चित चेतन, तेरी जु वात सु आगें वनी है।
देखी है ज्ञानीतैं ज्ञान अनंतमें, हानि ओ वृद्धिकी रीति घनी है॥
ताहि उलंघि सकै कहि कौउजु, नाहक भ्रामिक बुद्धि ठनी है।
याहि निवारिकें आपु निहारिकें, होहु सुखी जिम सिद्ध धनी है ८८
कोउजु शोच करो जिन रंचक, देह धरी तिंहु काल हरैगो।
जो उपज्यो जगमें दिन चारके, देखत ही पुनि सोई मरैगो॥
मोह भुलावत मानत सांच सो, जानत याहीसों काज सरैगो।
पंडित सोई विचारत अंतर, ज्ञान सँभारिकें आपु तरैगो॥ ८९॥
काहेको देहसों नेह करै तुव, अंतको राखी रहैगी न तेरी।
मेरी है मेरी कहा करै लच्छिसों, काहुकी ह्वैके कहूं रही नेरी?॥
मान कहा रह्यो मोह कुटुंबसों, स्वारथके रस लागे सगेरी।
तातैं तू चेति विचक्षन चेतन, झूंटी है रीति सबै जगकेरी॥९०॥

कवित्त.

केवल प्रकाश होय अंधकार नाश होय, ज्ञानको विलास होय ओरलों निवाहवी। सिद्धमें सुवास होय, लोकालोक भास होय, आपुरिद्ध पास होय औरकी न चाहवी॥ इन्द्र आय दास होय अरिनको त्रास होय, दर्वको उजास होय इष्टनिधि गाहिवी। सत्व-सुखराश होय सत्यको निवास होय, सम्यक भयेतैं होय ऐसी सत्य साहिवी॥ ९१॥

मात्रिक कवित्त.

जाके घट समकित उपजत है, सो तौ करत हंसकी रीत।
क्षीर गहत छांड़त जलको सँग, वाके कुलकी यहै प्रतीत॥

कोटि उपाय करो कोउ भेदसों, क्षीर गहै जल नेकु न पीतें ।
तैसें सम्यकवत गहै गुण, घट घट मध्य एक नयनीत ॥ ९२ ॥
सिद्ध समान चिदानद जानिके, थापत है घटके उरवीच ।
वाके गुण सव वाहि लगावत, और गुणहि सव जानत कीच ॥
ज्ञान अनत विचारत अतर, राखत है जियके उर सीच ।
ऐसें समकित शुद्ध करत ह, तिनतें होवत मोक्ष नगीच ॥ ९३ ॥

कवित्त

निशदिन ध्यान करो निशचै सुज्ञान करो,कर्मको निदान करो आवै नाहि फेरिकैं । मिथ्यामति नाश करो सम्यक उजास करो, धर्मको प्रकाश करो शुद्धदृष्टि हेरिकै ॥ ब्रह्मको विलास करो, आतमनिवास करो, देव सव दास करो महामोह जेरिकैं। अनुभौ अभ्यास करो थिरतामें वास करो, मोक्षसुख रासकरो कह तोहि टेरिकै ॥ ९४ ॥

जिनके सुदृष्टि जागी परगुणके भे त्यागी, चेतनसो लवलागी भागी भ्राति भारी है । पचमहाव्रतधारी जिन आज्ञाके विहारी, नग्नमुद्राके अकारी धर्महितकारी है ॥ प्राशुक अहारी अठ्ठाईस मूल गुणधारी,परीसह सहैं भारी परउपकारी है।पर्मधर्म धनधारी सत्य शब्दके उचारी, ऐसे मुनिराज ताहि वदना हमारी है ९५॥

शुभ ओ अशुभ कर्म दोऊ मम जानत है, चेतनकी धारामें अखड गुण साजे है ।जीवद्रव्य न्यारो लखै न्यारे लख आठों कर्म पूरवीक वधतें मलीन केई ताजे है॥ स्वसवेग ज्ञानके प्रमानतें अ-वाधिवेदि ध्यानकी विशुद्धतासों चढै केई वाजे है। अतरकी दृष्टि

(१) पीता है ( ) भय

सों अरिष्ट सब जीत राखे, ऐसी बातें करें ऐसे महा मुनिराजे हैं ॥ ९६ ॥

श्रीवीर जिनस्वामीको केवल प्रकाश भयो, इंद्र सब आय तहां क्रिया निज कीनी है। सोचत सो इन्द्र तब वानी क्यों न खिरं आज यह तो अनादि थिति भई क्यों नवीनी है ॥ पूछत सीमंधरपैं जायके विदेहक्षेत्र, इन्द्रभूति योग छिनमें वताय दीनी है। आय एक काव्य पढी जाय इंद्रभूति पास, सुनत ही चौंक चल्यो आय दीक्षा लीनी है ॥ ९७ ॥

छंद प्लवङ्गम.

राग द्वेष अरु मोह, मिथ्यात्व निवारिये ।
पर संगति सब त्याग, सत्य उर धारिये ॥
केवल रूप अनूप, हंस निज मानिये ।
ताके अनुभव शुद्ध सदा उर आनिये ॥ ९८ ॥

सवैया.

जो षट स्वाद विवेकी विचारत, रागनके रस भेदनपो है ।
पंच सुवर्णके लच्छन वेदत, वूझै सुवास कुवासहिं जो है ॥
आठ सपर्श लखै निज देहसों, ज्ञान अनंत कहैंगे कितो है ।
ताहि विलोकि विचक्षन रे मन,! द्वैपल देखतो देखत को है॥९९॥

कवित्त.

वुद्धि भये कहा भयो जोपैं शुद्ध चीन्हीं नाहिं,बुद्धिको तो फल यह तत्त्वको विचारिये। देह पाये कौन काज पूजे जो न जिनराज, देहकी बडाई ये जप तप चितारिये ॥ लच्छि आये कौन सिद्धि रहि है न थिर रिद्धि, लच्छिको तो लाहु जो सुपात्र मुख

डारिये। वचनकी चातुरी बनाय बोले कहा होहि, वचन तौ वह सत्य शबद उचारिये ॥ १०० ॥

सवया

जो परलीन रहै निशिवासर, सो अपनी निधि क्यों न गमावै ।
जो जगमाहि रसे न अध्यातम, सो जिय क्यो निहचै पद पावै ॥
जो अपने गुन भेद न जानत, सो भवसागरमें फिर आवै । जो
विष खाय सो प्राण तजै, गुड खाय जो काहे न कान बिधावै ॥१०१॥

दुर्मिल सवैया ८ सगण

भगवत भजो सु तजो परमाद, समाधिके सगमें रग रहो ।
अहो चेतन त्याग पराइ सु बुद्धि, गहो निज शुद्धि ज्यो सुक्ख लहो॥
विषया रसके हित बूडत हो, भवसागरमें कछु शुद्धि गहो ।
तुम ज्ञायक हो षट् द्रव्यनके, तिनसों हित जानके आपु कहो॥१०१॥

कवित्त

देखी देह खेतक्यारी ताकी ऐसी रीति न्यारी, बोये कछु आन उपजत कछु आन है । पचामृत रस सेती पोखिये शरीर नित, उपजै रुधिर मास हाडनको ठान है ॥ १०२ ॥ एतेपर रहै नाहिं कीजिये उपाय कोटि, छिनमें विनश जाय नाम न निशान है । एते देखि मूरख उछाह मनमाहि धरै, ऐसी झूठ बातनिको साच कर मान है ॥ १०३ ॥

कुण्डलिया

सुखमें मग्न सदा रहै, दुखमें करै विलाप ।
ते अजान जानै नहीं, यह पुन्य अरु पाप ॥
यह पुण्य अरु पाप, आप गुन इनतें न्यारो ।
चिद्विलास चिद्रूप, सहज जाको उजियारो ॥

गुण अनंत जामे प्रगट, कबहू होहिं न और रुख ।
तिहिं पद परसे विनु रहै, मूढ मगन संसार सुख॥१०४॥

कवित्त.

जीव जे अभव्य राशि कहे हैं अनंत तेऊ, ताहू तें अनंत गुणे सिद्धके विशेखिये। ताहूतैं अनंत जीव जगमें जिनेश कहे,तिनहूतें कर्म ये अनंत गुणे लेखिये ॥ तिनहूतें पुद्गल प्रमाणु हैं अनंत गुणे, ताहूतैं अनंत यों अकाशको जु पेखिये। ताहूतें अनन्त ज्ञान जामें सब विद्यमान, तिहूं काल परमाण एकसमै देखिये ॥ १०५ ॥

कवित्त.

जे तो जल लोकमध्य सागर असंख्य कोटि, ते तौ जल पीयो पै न प्यास याकी गयी है। जे ते नाज दीपमध्य भरे हैं अवार ढेर,तेतौ नाज खायो तोऊ भूख याकी नयी है॥तातें ध्यान ताको कर जातें यह जॉय हर, अष्टादश दोप आदि येही जीत लयी है। वहै पंथ तूहीं साजि अष्टादशजाहिं भाजि होय वैठि महाराज तोहि सीख दयी है ॥ १०६ ॥

कविकी लघुता, छंद कवित्त.

एहो वुद्धिवंत नर हँसो जिन मोह कोऊ, वाल ख्याल कीनो तुम लीजियो सुधारिके। मैं न पढ्यो पिंगल न देख्यो छंद कोश कोऊ, नाममाला नावको पढी नहीं विचारिके ॥ संस्कृत प्राकृत व्याकरणहू न पढ्यो कहूं, तातैं मोको दोष नाहि शोधियो निहारिके। कहत भगोतीदास ब्रह्मको लह्यो विलास, तातैं ब्रह्म रचना करी है विसतारिके ॥ १०७ ॥

दोहा.

इति श्री शत अष्टोत्तरी, कीन्हीं निजहित काज ।
जे नर पढहिं विवेकसों, ते पावहिं शिवराज ॥ १०८ ॥

इति शतअष्टोत्तरी कवित्तबध समाप्ता ।

अथ द्रव्यसंग्रह मूलसहित कवित्तबन्ध लिख्यते।

मंगलाचरण आर्याछंद

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा॥ १॥

छप्पयछंद

सकल कर्मक्षय करन, तरन तारन शिव नायक।
ज्ञान दिवाकर प्रगट, सर्व जीवंहि सुखदायक॥
परम पूज्य गणधरहु, ताहि पूजित–जिनराजे।
देवनिके पति इन्द्र वृंद, वंदित छवि छाजे॥
इह विधि अनेक गुणनिधिसहित, वृषभनाथ मिथ्यात हर।
तसु चरण कमल वंदित भविक, भावसहित नित जोर कर॥१॥

दोहा

तिहँ जिन जीव अजीवके, लखे सगुण परजाय।
कहे प्रगट सब ग्रथमें, भेदभाव समुझाय॥ १॥

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भुत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥ २॥

कवित्त

जीव है सुज्ञानमयी चेतना स्वभाव धरै, जानिवो औ देखिवो अनादिनिधि पास है। अमूर्त्तिक सदा रहै और सो न रूप गहै, निश्चैनै प्रवान जाके आतम विलास है॥ व्योहारनय कर्त्ता है देहके प्रमान मान, भुक्ता सुख दु:खनिको जगमें निवास है। शुद्ध नै विलोके सिद्ध करम कलंक विना, ऊर्द्धको स्वभाव जाको लोक अग्रवास है॥ २॥

(१) 'भोत्ता' ऐसा भी पाठ है।

तिक्काले चदुपाणा, इंदिय वलमाउ आणपाणा य।
ववहारा सो जीवो, णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स॥३॥

तिहुंकाल चार प्राण धरै जगवासी जीव, इन्द्रीवल आयु ओ उस्वास स्वास जानिये। एई चार प्राण धरै सातामान जीवो करै, तातैं जीव नांव कह्यो व्योहार मानिये॥ निश्चैनय चेतना विराज रही शुद्ध जाके, चेतना विरुद सदा याहीतैं प्रमानिये। अतीत अनागत सुवर्तमान 'भैया' निज, ज्ञानप्रान शास्वतो स्वभाव यों वखानिये॥ ३॥

उवओगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमथ केवलं णेयं॥ ४॥

जीवके चेतना परिणाम शुद्ध राजत हैं, ताके भेद दोय जिन ग्रन्थनिमें गाइये। एक है सु चेतना कहावै शुद्ध दर्शन, दूजी ज्ञान चेतना लखेतैं ब्रह्म पाइये॥ देखिवेके भेद चारि लीजिये हृदै विचारि, चक्षु ओ अचक्षु औधि केवल सुध्याइये। येही चार भेद कहे दर्शनके देखनेके, जाके परकाश लोकालोक हू लखाइये॥ ४॥

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदिओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि, पच्चक्खपरोक्खभेयं च॥ ५॥
मइ सुइ परोक्ख णाणं, ओही मण होइ वियल पंचक्खं।
केवलणाणं च तहा, अणोवमं होइ सयलपच्चक्खम्॥५॥

ज्ञानके जु भेद आठ ताके नाम भिन्न सुनो, कुमति कुश्रुति अवधि लों विशेखिये। सुमति सुश्रुति सु औधि मनपर्जय और, के-

(१) चेयणा ऐसा भी पाठ है। (२) परोह ऐसा भी पाठ है।

वल प्रकाशज्ञान वसुभेद लेखिये ॥ मति श्रुति ज्ञान दोऊ है परोक्षवान औधि, मनपर्जय प्रत्यक्ष एक देश पेखिये । केवल प्र त्यक्ष भास लोकालोकको निकास, यहै ज्ञान शास्वतो अनतकाल देखिये ॥ ७ ॥

अट्ठचदुणाणदसण, सामण्ण जीवलक्खण भणिय ।
ववहारा सुद्धणया, सुद्ध पुण दसण णाण ॥ ६ ॥

मात्रिक कवित्त

अष्ट प्रकार ज्ञान चतु दरसन, नय व्यवहार जीवके लच्छन ।
निहचै शुद्ध ज्ञान ओ दरसन, सिद्ध समान सुछद विचक्षन ॥
केवल ज्ञान दरस पुनि केवल, राजै शुद्ध तजै प्रतिपच्छन ।
यह निहचै व्योहार कथनकी, कथा अनत कही शिव गच्छन ॥६॥

वण्ण रस पच गधा, दो फासा अट्ठ णिचया जीवे ।
णो सति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बधादो ॥ ७ ॥

कवित्त

वर्ण पच स्वेत पीत हरित अरण श्याम, तिनहूके भेद नाना भातिके विदीत हैं । रस तीखो खारो मधुरो कडुओ कपायलो, इनहूके मिले भेद गणती अतीत हैं ॥ तातो सीरो चीकनो रूखो नरम कठोर, हरवो भारी सुगध दुगधमयी रीत है । मूरति सुपुद्गलकी जीव है अमूरतीक नैव्योहार मूरतीक बधत कहीत है॥७॥ बध्यो है अनादिहीको कर्मके प्रबध सेती, तातै मूरतीक कह्यो परके मिलापमो । बधहीमें सदा रहै समप्रतिसमै गहै, पुग्गलसों एकमेक ह्वै रह्यो है आपमो ॥ जैसे रूपो सोनो मिले एक नाव

(१) चदु एसाभी पाठ है ।

पाय रह्यो, तैसैं जीवमूरतीक पुग्गल प्रतापसों । यहै बात सिद्ध भई जीव मूरतीकमई,वंधकी अपेक्षा लई नैव्योहार छापसों॥७॥

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिचयदो ।
चेदणकम्मा णादा, सुद्धणया सुद्ध भावाणं ॥ ८ ॥

पुदगल करमको करैया है चिदानंद, व्योहार प्रवान इहां फेर कछु नाहीं है । ज्ञानावर्णी आदि अष्ट कर्मको करता है, रागादिक भाव धरै आप उहि पांही है ॥ शुद्ध नै विचारिये तो राग है कलंक याकै, यह तो अटंक सदा चेतना सुधाही है । अनंत ज्ञान परिणाम तिनको करैया जीव, सास्वतो सदीव चिरकाल आपमाही हैं ॥ ८ ॥

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्चयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

व्योहार नै देखिये तो पुग्गलके कर्मफल, नाना भांति सुखदुःख ताको भुगतैया है । उपजाये आपुतैं ही शुभ ओ अशुभ कर्म, ताके फल साता ओ असाताको सहैया है ॥ निश्चैनय देखिये तो यह जीव ज्ञानमई, अपुने चेतन परिणामको करैया है। तातैं भोक्ता पुनि सुचेतन परिणामनिको, शुद्धनै विलोकिये तो सबको लखैया है ॥ ९ ॥

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

देहके प्रमान राजै चेतन विराजमान, लघु और दीरघ शरीरके उदैसों है । ताहीके समान परदेश याके पूरि रहे, सूक्ष्म औ बादर तन धरै तहां तैसो है ॥ व्यवहारनय ऐसो कह्यो समुद्घात

विना, देहको प्रमान नाहि लोकाकाश जैसो है। शुद्ध निश्चयनयसों असख्यात परदेशी, आतम स्वभाव धरै विद्यमान ऐसो है ॥ १० ॥

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइदी।
विगतिगचदुपचक्खा, तसजीवा होंति सखादी ॥११॥

पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय वायुकाय, वनस्पतिकाय पाचो थावर कहीजिये। वे इद्री ते इद्री चौ इद्री पचेंद्रिय है चारों, जामे सदा चलिवेकी शकति लहीजिये ॥ तन जीभ नाक आख कान येही पचइंद्री, जाके जे ते होय ताहि तैसो सरदहीजिये। सख द्वै पिपीलि तीन भौंर चार नर पच, इन्हें आदि नाना भेद समुझि गहीजिये ॥ ११ ॥

समणा अमणा णेया, पचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
वायरसुहमेइदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य॥ १२॥

पच इद्री जीव जिते ताके भेद दोय कहे, एकनिके मन एक मनविना पाइये। और जगवासी जतु तिनके न मन कह्, एकेंद्री वेइद्री तेंद्री चौइद्री वताइये ॥ एकेंद्रीके भेद दोय सूक्षम वादर होय, पर्यापत अपर्यापत सवे जीव गाइये। ताके वहु विस्तार कहे है जु ग्रथनिमें, थोरेमें समुझि ज्ञान हिरदै अनाइये ॥ १२ ॥

मग्गण गुणठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया ससारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया॥ १३ ॥

चउदह मारगणा चउदह गुणस्थान, होंहि ये अशुद्ध नय

---

१ 'वादर' ऐसाभी पाठ है। २ पर्याप्त। ३ अपर्याप्त।

कहे जिनराजने। येही भाव जोलों तोलों संसारी कहावै जीव, इनको उलंघिकरि मिलै शिव साजने॥ शुद्धनै विलोकियेतौ शुद्ध है सकलजीव, द्रव्यकी उपेक्षासो अनंत छवि छाजने। सिद्धके समान ये विराजमान सवै हंस, चेतना सुभाव धरै करै निज काजनै॥ १३॥

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता॥ १४॥

अष्टकर्महीन अष्ट गुणयुत चरमसु, देह तातें कछु ऊनो सुखको निवास है। लोकको जु अग्र तहाँ स्थित है अनंत सिद्ध, उत्पादव्यय संयुक्त सदा जाको वास है॥ अनंतकाल पर्यन्त थिति है अडोल जाकी, लोकालोकप्रतिभासी ज्ञानको प्रकाश है। निश्चै सुखराज करै वहुरि न जन्म धरै, ऐसो सिद्ध राशिनिको आतम विलास है॥ १४॥

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसवंधेहि सव्वदो मुक्को॥
उड्ढं गच्छदि सेसा, विदिसावज्जं गदिं जंति॥१॥

प्रकृति ओ थितिबंध अनुभागवंध परदेशवंध एई चार वंध भेद कहिये। इन्ही चहुं वंधतैं अवंध ह्वैके चिदानंद, अग्निशिखासम ऊर्द्धको सुभावी लहिये॥ और सव जगजीव तजै निज देह जव, परभोको गौन करै तवै सर्ल गहिये। ऐसें ही अनादिथिति नई कछू भई नाहिं, कही ग्रंथमांहि जिन तैसी सरदहिये॥ १॥

(इति जीवस्य नवाधिकारा)

---

(१) 'अपेक्षासों' ऐसा भी पाठ है परन्तु ऐसा पाठ रखनेपर 'अनंत' शब्दका अर्थ 'नित्य' ऐसा लेना चाहिये। (२) 'सिद्धराजनिको' ऐसा भी पाठ है।

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयास ॥
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु ॥१५॥

अजीवदरव पंच ताके नाव भिन्न सुनो, पुद्गल ओ धर्मद्रव्यको सुभाव जानिये। अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य काल दर्व एई, पाचो द्रव्य जगमें अचेतन वखानिये ॥ तामे पुग्गल है मूरतीक रूप रस गंध, पर्शमई गुणपरजाय लिये जानिये। और पंच जीव जुत कहे है अमूरतीक, निज निज भाव धरै भेदी है पिछानिये ॥ १५ ॥

सद्दोबंधो सुहमो, थूलो संठाण भेद तमछाया ॥
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥

शवद बंध सूक्षम थूल ओ अकार रूप, ह्वैवो मिलिवो ओ बिछुरिवो धूप छाय है। अंधारो उजारो ओ उद्योत चंदकांतिसम, आतप सु भानु जिम नानाभेद ठाय है ॥ पुद्गल अनन्त ताकी परजाय हू अनंत, लेखो जो लगाइये तोऽनंतानंत थाय है। एकही समेमें आय सव प्रतिभास रही, देखी ज्ञानवंत ऐसी पुद्गल प्रजाय है ॥ १६ ॥

गइपरणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ॥
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥ १७ ॥

जब जीव पुद्गल चलै उठि लोकमध्य, तब धर्मास्तिकाय सहाय आय होत है । जैसें मच्छ पानीमाहि आपुहीत गौन करे, नीरकी सहायसेती अल्पसता खोत है ॥ पुनि यों नही जो पानी मीनको चलावे पथ, आपुहीतें चलै तो सहाय कोउ नोत है । तैसें जीव पुद्गल्को और न चलाय सके, सहजै ही चलै तो सहायका उदोत है ॥ १७ ॥

ठाणजुयाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ॥
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥ १८ ॥

जीव अरु पुग्गलको थितिसहकारी होय, ऐसो है अधर्मद्रव्य लोकताईं हद है। जैसें कोऊ पथिक सुपंथमध्य गौन करे, छायाके समीप आय वैठे नेकु तद है॥ पं यों नहीं जु पंथीको राखतु वैठाय छाया, आपुने सहज वैठे वाको आश्रेपद है। तैसें जीव पुद्गलको अधर्मास्तिकाय सदा, होत है सहाय 'भैया' थितिसमैं जद है॥ १८॥

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं ॥
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ १९ ॥

जीव आदि पंच पदार्थनिको सदाही यह, देत अवकाश तातैं आकाश नाम पायो है। ताके भेद दोय कहे एक है अलोकाकाश, दूजो लोकाकाश जिन ग्रंथनिमें गायो है॥ जैसें कहूं घर होय तामें सव वसें लोय, तातैं पंच द्रव्यहूको सदन वतायो है। याहीमें सवै रहै पै निजनिज सत्ता गहै, यातैं परें और सो अलोक ही कहायो है॥ १९॥

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये ॥
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ २० ॥

जितने आकाशमाहिं रहैं ये दरवपंच, तितने अकाशको जु लोकाकाश कहिये। धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालद्रव्य पुद्गल,-द्रव्य जीव द्रव्य एई पांचों जहाँ लहिये॥ इनतैं अधिक कछु और जो विराज रह्यो, नाम सो अलोकाकाश ऐसो सरदहिये। देख्यो ज्ञान-

(१) 'अलोगागास' ऐसा भी पाठ है।

वतन अनतज्ञान चक्षुकरि, गुणपरजाय सो सुभाव शुद्ध ग-
हिये ॥ २० ॥

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो ॥
परिणामादिलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥ २१ ॥

जोई सर्वद्रव्यको प्रवर्त्तावन समरथ, सोई कालद्रव्य वहुभेद-
भाव राजई । निज निज परजाय विषै परणवै यह, कालकी सहाय
पाय करै निज काजई ॥ ताही कालद्रव्यके विराजरहे भेद दोय,
एक व्यवहार परिणाम आदि छाजई।दूजो परमार्थकाल निश्चयव-
र्त्तना चाल, कायतैं रहित लोकाकाशलौं सुगाजई ॥ २१ ॥

लोयायास पदेसे, इक्केक्के जेट्ठिया हु इक्केक्का ।
रयणाण रासीमिव, ते कालाणू असखदव्वाणि ॥२२॥

लोकाकाशके जु एक एक परदेश विषै, एक एक काल
अणु मुनिराज रहे हैं । तातैं काल अणुके असख्य द्रव्य कहिय
तु, रतनकी राशि जैसें एक पुज लहे हे ॥ काहुसों न मिलै कोई
रत्नजोत दृष्टि जोई, तैसें काल अणु होय भिन्नभाव गहे हे ।
आदि अत मिलैं नाहिं वर्त्तना सुभावमाहिं, समै पल महर्त्त प-
रजाय भेद कहे हैं ॥ २२ ॥

एव छब्भेयमिद, जीवाजीवप्पभेददो दव्व ।
उत्त कालविजुत्त, णायव्वा पच अत्थिकाया दु॥ २३॥

दोहा

जीव अजीवहि द्रव्यके, भेद सुषट्विध जान ।
तामें पच सु काय धर, कालद्रव्य विन मान ॥ २३ ॥

---

(१) 'जमराजके' ऐसा भी पाठ है ।

संति जदो तेणेदे, अत्थीति भणंति जिणवरा जह्मा ।
काया इव वहुदेसा, तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

कवित्त.

ऐसे कह्यो जिनवर देख निज ज्ञान माहिं, इतने पदार्थनिको कायधर मानिये । जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य औ अकाश द्रव्य एई नाम जानिये ॥ कायके समान सदा वहुते प्रदेश धरे, तातैं काय संज्ञा इन्हैं प्रत्यक्ष प्रवानिये । निज निज सत्तामें विराज रहे सवै द्रव्य, ऐसें भेद भाव ज्ञान दृष्टिसों पिछानिये ॥ २४ ॥

हुंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा[1], कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

जीवद्रव्य धर्मद्रव्य अधरमद्रव्य इन, तीनोंको असंख्य परदेशी कहियतु है । अनंत प्रदेशी नभ पुद्गलके भेद तीन, संख्याऽसंख्याऽनंत परदेशको वहतु है ॥ कालके प्रदेश एक अन्य पांचके अनेक, तातैं पंच अस्ति काय ऐसो नाम हतु है । काल विन काय जिनराजजूनें यातैं कह्यो, एक परदेशी कैसें कायको धरतु है ॥ २५ ॥

एयपदेसोवि अणू, णाणाखंध प्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥२६॥

पुग्गल प्रमाणु जोपैं एक परदेश धरै, तोपैं वहु प्रमाणु मिलै वहु प्रदेश हैं । नानाकार खंधसों जु कितने प्रदेश होंहि, अनँत असंख्यसंख्य भेदको धरेश हैं ॥ तातैं सर्वज्ञजूने पुग्गल प्रमाणु

(१) 'पयेसा' ऐसा भी पाठ है ।

प्रति, कह्यो कायधर सदा जाके सब भेश है। देखिये जु नैननिसों पुग्गलके पुंज सबे, यहै लोक माहिं एक सासुतो नरेश है ॥२६॥

जावदिय आयास, अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्ध ।
त खु पदेस जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिह ॥२७॥

जितनो आकाश पुग्गलाणु एक रोकि रह्यो, तितने अकाश को प्रदेश एक कहिये । शुद्ध अविभागी जाके एकके न होय दोय, ऐसे परमाणुके अनेक भेद लहिये ॥ अनंत परमाणूको योग्य ठौर देवेको जु, ऐसोही अकाशको प्रदेश एक गहिये । जामें और द्रव्य सब प्रगट विराज रहे, कोऊ काहू मिलै नाहिं ऐसो सरदहिये ॥ २७ ॥

इति श्रीषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादनामा प्रथमोऽधिकारः ॥ १ ॥

आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे ॥
जीवाजीवविसेसा, तेवि समासेण पभणामो ॥ २८ ॥

चौपाई १५ मात्रा

आस्रव संवर बंधको खंध, निर्जर मोक्ष पुण्यको बंध।
पाप२ जीव अजीव सु भेव, इते पदार्थ कहो सखेव॥ २८ ॥

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ॥
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥ २९ ॥

दुर्मिल छंद (सवैया) ३२ मात्रा

जिँह आतमके परिणामनिसों, निजकर्महि आस्रव मान लये ।
तिँह भावनको यह नाम लियो, भावास्रव चेतनके जु भये ॥
दरवाश्रव पुद्गलको अयवो, करमादि अनेकन भांति ठये ।
इम भावनिको करता भयो चेतन, दवित आस्रव ताहित ये ॥२९॥

(१) मक्षपणे ।

मिच्छत्ताविरदिपमाद, जोगकोहादओ सविण्णेया ॥
पणपणपणदहतियचदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

मात्रिक कवित्त.

पांच मिथ्यात पांच है अव्रत, अरु पंद्रह परमादहिं जान ।
मनवचकाय योग ये तीनो, चतु कषाय सोरहविधि मान ॥
इन्हैं आदि परिणाम जाति बहु, भावास्रव सब कहे बखान ।
तातैं भावकर्मको करता, चिन्मूरत 'भैया' पहिचान ॥ ३० ॥

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ॥
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ[1] जिणक्खादो ॥ ३१ ॥

कवित्त.

ज्ञानावर्णी आदि अष्ट करमनको आयवो, पुग्गलप्रमाणु मिलि नानाभांति थिते हैं । जीवके प्रदेशनिको आयके आछादतु है, कोऊ न प्रकाश लहै, असंख्यात जिते हैं ॥ ऐसो द्रव्य आस्रव अनेकभांति राजत है, ताहीके जु वसि जग बसैं जीव किते हैं। कहे सर्वज्ञजूने भेद ये प्रत्यक्ष जाके, वेदै ज्ञानवंत जाके मिथ्यामत विते[2] हैं ॥ ३१ ॥

वज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो ॥
कम्मादपदेसाणं, अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥ ३२ ॥

चेतन परिणामसो कर्म जिते बांधियत, ताको नाव भावबंध ऐसो भेद कहिये । कर्मके प्रदेशनिको आतमप्रदेशनिसों परस्परमिलिबो एकत्व जहां लहिये ॥ ताको नाव द्रव्यबंध कह्यो जिनग्रंथनमें, ऐसो उभै भेद बंध पद्धतिको गहिये । अनादिहीको जीव यह बंधसेती बँध्यो है, इनहीके मिटत अनंत सुख पँहिये[3] ॥ ३२ ॥

(१) 'अणेय भेओ' ऐसा भी पाठ है । (२) वीता है । (३) 'वहिये' पाठभी है ।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो ॥
जोगा पयडिपदेसा, ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

द्रव्यबंध भेद चारि प्रकृति औ स्थितिबंध, अनुभागबंध परदेश बंध मानिये। प्रकृति प्रदेशबंध दोऊ मनवचकाय, के संयोगसेती हो हि ऐसे उर आनिये॥ थिति बंध अनुभाग होय ये कषायसेती, स-मुच्चै समस्या एती समुझि प्रमानिये। ऐसे बंधविधि कही ग्रंथनके अनुसार सर्वगविचार सरवज्ञ भये जानिये ॥ ३३ ॥

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ ॥
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणो अण्णो ॥ ३४ ॥

कर्मनिके आस्रव निरोधिवेके भाव भये, तेई परिणाम भाव संवर कहीजिये। द्रव्यास्रव रोकिवेको कारण सु जे जे होय, ते ते सर्व भेदद्रव्य संवर लहीजिये॥ याहीविधि भेद दोय कहे जिन देव सोय, द्रव्यभाव उभै होय 'भैया' यों गहीजिये। संवरके आवत ही आस्रव न आवै कहू, ऐसे भेद पाय परभाव त्याग दीजिये ॥ ३४ ॥

वदसमिदी गुत्तीओ, धम्माणुपेहापरीसहजओ य ॥
चारित्तं बहु भेया, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥ ३५ ॥

अहिंसादि पंच महाव्रत पंचसमितिसु, मनवचकाय तीन गुपति प्रमानिये। धरम प्रकार दश बारह सुभावनाजु, बाईस परीसह को जीतिवो सुजानिये॥ बहुभेद चारितके कहत न आवै पार, अति ही अपार गुण लच्छन पिछानिये। एते सब भेद भाव संवरके जानियेजु, समुच्चैहि नाम कहे 'भैया' उर आनिये ॥३५॥

जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ॥
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

मात्रिक कवित्त.

जे परिणाम होंहि आतमके, पुग्गल करम खिरनके हेत ।
अपनों काल पाय परमाणू, तप निमित्ततें तजत सुखेत ॥
तिहँ खिरिवेके भाव होंहि बहु, ते सब निर्ज्जरभाव सुचेत ।
पुग्गल खिरै सुद्रव्य निर्जरा, उभयभेद जिनवर कहिदेत ॥३६॥

सव्वस्स कम्मणो जो, खय हेदू अप्पणो क्खु परिणामो ॥
णेवो सभावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ३७

छप्पय छंद.

सकल कर्म छय करन, भाव अंतरगत राजै ।
तिन भावनिसों कहत, भाव यह मोक्ष सु छाजै ॥
दर्वमोक्ष तहाँ लहत, कर्म जहां सर्व विनासैं ।
आतमके परदेश, भिन्न पुद्गलतैं भासैं ॥
इहविधि सुभेद द्वै मोक्षके, कहे सु जिनपथ धारिकैं ।
यह द्रव्य भावविधि सरदहत, सम्यकवंत विचारिकैं ॥३७॥

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा ॥
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥ ३८ ॥

कवित्त.

शुभभाव तहां जहां शुभ परिणाम होहिं, जीवनिकी रक्षा अरु व्रतनिकों करिवो । तातें होय पुण्य ताको फल सातावेद-नीय, शुभ आयु शुभगोत बहु सुख वरिवो ॥ अशुभ प्रणामनितें जीव हिंसा आदि बहु, पापके समूह होंय सुकृतको हरिवो । वे-दनी असाता होय छिनकी न साता होय, आयु नाम गोत सब अशुभको भरिवो ॥ ३८ ॥

इतिश्रीसप्ततत्वनवपदार्थ प्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारः ॥ २ ॥

(१) 'पुह' ऐसा भी पाठ है. ।

सम्मद्दसण णाण, चरण मोक्खस्स कारण जाणे ।
ववहारा णिच्चयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

छप्पय

सम्यकदरशप्रमाण, ज्ञान पुनि सम्यक सोहै ।
अरु सम्यक चारित्र, त्रिविध कारण शिव जो है ॥
नय व्यवहार वखानि, कह्यो जिन आगम जैसे ।
निहचै नय अब सुनहु, कहहु कछु लच्छन तैसे ॥
दर्शन सुज्ञान चारित्रमय, यह है परम स्वरूप मम ।
कारणसु मोक्षको आपु ते, चिद्विलास चिद्रूप क्रम ॥ ३९ ॥

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाण मुयत्तु अण्णदवियम्हि ॥
तम्हा तत्तिय मइओ, होदि हु मोक्खस्स कारण आदा॥४०॥

कवित्त

जीव व्यतिरेक ये रतनत्रय आदि गुण, अन्य जडद्रव्यनिमें नेकुहू न पाइये । तातें दृगज्ञानचर्ण आतमको रूपवर्ण, त्रिगुणको मूलधर्ण चिदानद ध्याइये ॥ निश्चैनय मोक्षको जु कारण है आप सदा, आपनो सुभाव मोक्ष आपुमें लखाइये । जैमें जैनवैनम वखाने भेदभाव ऐन, नैनमो निहार 'भैया' भेद यों वताइये ॥ ४० ॥

जीवादीसद्दहण, सम्मत्त रूवमप्पणे त तु ॥
दुरभिणिवेसविमुक्क,णाण सम्म खु होदि सदि जम्हि॥४१॥

जीवादि पदार्थनिकी जोन सरधानरूप, रचि परतीति होय निजपरभास है । ताको नाम सम्यक कहा है शुद्ध दरशन, जाके सरधाने विपरीत वुद्धि नाश है ॥ आतम स्वरूपको सुध्यान

ऐसे कहियतु, जाके होत होत वहु गुणको निवास है। सम्यक दरस भये ज्ञानहू सम्यक होय, इन्हैं आदि और सब सम्यक विलास है ॥ ४१ ॥

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ॥
गहणं सम्मं णाणं सायारमणेयभेयं तु ॥ ४२ ॥

छप्पय.

निजपरवस्तु स्वरूप, ताहि वेदै अरु धारै ।
गुन लच्छन पहिचानि, यथावत अंगीकारै ॥
संशय विभ्रम मोह, ताहि वर्जित निज कहिये ।
ऐसो सम्यक ज्ञान, भेद जाके वहु लहिये ॥
तसपद महिमा अगम अति, वुधिवलको वरनन करै ।
यह मतिज्ञानादिक बहुत, भेद जासु जिन उच्चरै ॥ ४२ ॥

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं ॥
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णये समये ४३

मात्रिककवित्त.

जासु स्वरूप सवै प्रतिभासत, दर्शन ताहि कहै सब कोय ।
भावऽरु भेद विचार विना जहँ, एकहि वेर विलोकन होय ॥
जानि जु द्रव्य यथावत वेदत, भेद अभेद करै नहिं जोय ॥
गुण देखै विकल्प विनु 'भैया', दरसन भेद कहावे सोय॥४३॥

दंसणपुव्वं णाणं, छद्मत्थाणं ण दुण्णि उवयोगा ॥
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दोवि ॥ ४४ ॥

(१) 'च' ऐसा भी पाठ है ।

कुंडलिया

सब संसारी जीवको, पहिले दरशन होय।
ताके पीछें ज्ञान है, उपजें संग न दोय॥
उपजें संग न दोय, कोउ गुण किसि न सहाई।
अपनी अपनी ठौर, सबै गुण लहै बडाई॥
पैश्रीकेवल ज्ञानको, होय परमपद जब्ब।
तब कहु समें न अंतरो, होंहि इकट्ठे सब्ब॥ ४४॥

असुहादो विणिवित्ती,सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं॥
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं॥४५॥

कवित्त

पापपरिणाम त्याग हिंसातें निकसि भाग, धरमके पथ लाग दयादान करै। श्रावकके व्रत पाल श्रमनके भेद भाल, लगै दोष ताहि टाल अघनिको हरै॥ पंच महाव्रतधरि पंच हू समिति करि, तीनहू गुपति वरि तेरह भेद धरै। कहैं सर्वज्ञ देव चारित्र व्योहारभेव, लहि ऐसा शीघ्रमेव वेग क्यों न तरै॥ ४५॥

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं॥ ४६॥

अभ्यंतर बाह्य दोऊ क्रियाको निरोध तहां, परम सम्यक्त गुण चारित उदोत है। वैन अर काय दोऊ बाहिरके योग कहे, मन अभ्यंतर योग तीनो रोध होत है॥ ताहीतें निपट जल जात है संसाररूप, रागादिक मलिनको याही श्रम खोत है। कषाय आदि कर्मके समूहको विनाश करै, ताको नाव सम्यक चारित्र-दधिपोत है॥ ४६॥

(१) इस पुस्तकमें पुष्ठ [illegible] है।

दुविहंपि मोक्खहेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तह्मा पयत्तचित्ता, जूयं ज्झाणं समभ्भसह ॥४७॥

मात्रिक कवित्त.

द्वै परकार मोखको कारण, नितप्रति तस कीजे अभ्यास।
रत्नत्रयतैं ध्यानप्राप्त पुन, सुख अनंत प्रगटै निजरास ॥
ध्यान होय तो लहै रतनत्रय, छिनमें करै कर्मको नास।
तातैं चिंता त्याग भविकजन, ध्यान करो धर मन उल्लास॥४७॥

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु ॥
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए॥४८॥

छप्पय.

मोह कर्म जिन करहु, करहु जिन रागऽरु द्वेषहिं।
इष्ट संयोगहि देख, करहु जिन राग विशेषहिं ॥
मिलहिं अनिष्टसँयोग, द्वेष जिन करहु ताहि पर।
जो थिरता चित चहहु, लहहु यह सीख मंत्र वर ॥
ध्रुवध्यान करहु बहु विधिसहित, निर्विकल्पविधि धारिकें।
जिमि लहहु परमपद पलकमें, त्रिविध करम अघ टारिकें॥४८॥

पणतीस सोल छ प्पण, चदु दुगमेगं च जवह झाएह ॥
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥

चौपई १६ मात्रा.

पंच परम पद कीजे ध्यान। तस अक्षरका सुनहु विधान।
तीस पंच अक्षर गणलीजे। नमस्कार नितप्रति तिहँ कीजे ॥
'णमो अरहंताणं' सात। 'णमो सिद्धाणं' पंच विख्यात।
'णमो आयरियाणं' पंच दोय। 'णमो उवज्झायाणं' रिषि[3] होय

(१) मत। (२) 'विनान' ऐसाभी पाठ है। (३) सात।

'णमोलोए सव्वसाहूण' । नवमिलि पैंतिस अक्षर गुण ।
शोलह अक्षरको विस्तार । सुनहु भविक परमागमसार ॥
'अरहंत सिद्ध आचारज'नाम।'उपाध्याय'नित'साधु'प्रणाम।
'अरहंत सिद्ध' छै अक्षर जान।'अ सि आ उ सा' पंच प्रधान।
चतु अक्षर 'अरहंत' चितारि। द्वै अक्षर श्री 'सिद्ध' निहारि ॥
इक अक्षर 'ओं' सब ही धरै । इनको सुमरन भविजन करै ।
ये सबही परमेष्टि लखेय । अन्य सकलगुरुमुख सुनलेय ॥

दोहा

इह विधि पंच परमपदहि, भविजन नितप्रति ध्याय ॥
इनके गुणहि चितारतें प्रगट इन्ही सम थाय ॥ ८९ ॥

णट्ठ चदुघायकम्मो, दंसण सुहणाणवीरियमइओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

कवित्त

ऐसें निज आतम अर्हतको विचारियतु, चारकर्म नष्ट गये ताहीतें अफंद हैं। ज्ञानदर्शनावरणीय मोहिनी सु अंतराय, येही चारि कर्म गये चेतन सुछंद हैं ॥ दृष्टिज्ञान सुख वीर्य अनंत चतुष्ट युक्त, आतमा विराजमान मानों पूर्णचंद हैं । परमोदारीक देह बसें राग तजें जेह, दोषनितें रह्यो सुद्ध ज्ञानको दिनंद है ॥ ७० ॥

णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणवो दट्ठा ॥
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो ज्झायेह लोयसिहरत्थो ॥५१॥

ऐसें यह आतमाको सिद्ध कह ध्याइयतु, आठोंकर्म देहादिक दोष जाके नसे हैं। लोक औ अलोकको जु ज्ञानवन्त दृष्टिमाहि, जाकी स्वच्छताईमें सुभाव सब लसे हैं॥अनंतगुण प्रगट अनंतका रूपरजत, थिति है अडोल जाकी पुरुषाकार वसे है।ऐसो है स्व-

रूप सिद्धखेतमें विराजमान, तैसो ही निहारि निज आपुरस रसे हैं ॥ ५१ ॥

दंसण णाणपहाणे, वीरिय चारित्त वरतवायारे ॥
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी ज्झेओ॥५२॥

पंच जु आचारजके जानत विचार भले, ताही आचारजजूको नाम गुणधारी है । आपहू प्रवर्त्तै इह मारग दयाल रूप, औरें प्रवर्तावनको परउपकारी है ॥ दरसनाचार ज्ञानाचारवीर्याचार चर्णाचार तपाचारमें विशेष वुद्धि भारी है । इन्हैं आदि और गुण केतेई विराज रहे, ऐसे आचारज प्रति वंदना हमारी है ॥५२॥

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो ॥
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥ ५३ ॥

मात्रिक कवित्त.

सम्यक दरश ज्ञान पुनि सम्यक,अरु सम्यक चारित कहिये ।
ये रतनत्रय गुण करि राजत, द्वादश अँग भेदी लहिये ॥
सदा देत उपदेश धरमको, उपाध्याय इह गुण गहिये ।
मुनि गणमाहिं प्रधान पुरुष है, ता प्रति वंदन सरदहिये ॥५३

दंसण णाणसमग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्च सुद्धं, साहू स मुणी णमो तस्स ॥ ५४ ॥

दोहा.

सम्यक दर्शन संजुगत, अरु सम्यक जहँ ज्ञान ।
तिहँ करि पूरण जो भर्यो, सो चारित परमान ।
चारित मारग मोक्षको, सर्वकाल सुध होय ।
तिहँ साधत जो साधु मुनि, तिनप्रति वंदत लोय ॥ ५४ ॥

जंकिंचि विचिंततो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ॥
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्चय ज्झाणं ॥ ५५ ॥

छप्पय

जब कहु साधु मुनीन्द्र, एक निज रूप विचारैं।
तब तहँ साधु मुनीन्द्र, अघनिके पुंज विदारैं॥
जब कहु साधु मुनीन्द्र, शुद्ध थिरतामहिं आवै।
तब तहँ साधु मुनीन्द्र, त्रिविधिके कर्म बहावैं॥
इम ध्यान करत मुनिराज जब, रागादिक त्रिक टारिकै।
तिन प्रति निश्चै कहत जिन, वँदहु सुरति सँभारिकै ॥ ५५ ॥

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो॥
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥ ५६ ॥

कवित्त

मनवचकाय तिहु जोगनिसों राचि कहु, करो मति चेष्टा तुम इन की कदाचिकै। बोलो जिन वैन कहु इनसों मगन ह्वैके, चिंतो जिन आन कछु कहू तोहि साचिकै॥ पर वस्तु छांडि निज रूप माहिं लीन होय, थिरताको ध्यान करि आतमसों राचिकै। देख्यो जिन जिनवान यहै उतकृष्ट ध्यान, जामे थिर होय पर्म कर्म नाच नाचिकै ॥ ५६ ॥

तवसुदवदवं चेदा, ज्झाणरहधुरंधरो हवे जह्मा ॥
तह्मा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥ ५७ ॥

मात्रिक कवित्त

जब यह आतम करै तपस्या, दाहै सकल कर्मवन पुंज ॥
श्रुतसिद्धांत भेद वहु वेदत, जपै पंच पदके गुणपुंज ॥

(१) मन। (२) मत।

व्रतपच्चखान करै बहु भेदै, इन संयुक्त महा सुख भुंज ।
तब तिहँ ध्यान धुरंधर कहिये, परमानंद प्राप्तिमें मुंज ॥५७॥
दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ॥
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं॥५८॥

कवित्त.

सकलगुण निधान पंडितप्रधान बहु, दूषणरहित गुणभूषण-सहित हैं। तिनप्रति विनवत नेमिचंद मुनिनाथ, सोधियो जु याको तुम अर्थ जे अहित हैं॥ ग्रंथ द्रव्य संग्रह सु कीनो मैं बहुतथोरो, मेरी कछु बुद्धि अल्पशास्त्र जो महित हैं। तातें जु यह ग्रंथ रचना-करी है कछु, गुण गहि लीज्यो एती, विनती कहित हैं ॥५९ ॥

इति श्रीद्रव्यसंग्रहग्रथे मोक्षमार्गकथनं तृतीयोऽधिकारः ।

दोहा—

नेमचंद मुनिनाथने, इहविध रचना कीन ॥
गाथा थोरी अर्थ बहु, निपट सुगम करदीन ॥ १॥

छप्पय.

ज्ञानवंत गुण लहै, गहै आतमरस अम्रत ।
परसंगत सब त्याग, शांतरस वरें सु निज कृत॥
वेदै निजपर भेद, खेद सब तजें कर्मतन ।
छेदै भवथिति वास, दास सब करहिं अरिनगन ॥
इहविधि अनेक गुण प्रगट करि, लहै सुशिवपुर पलकमें ।
चिद्विलास जयवंत लखि, लेहु'भविक ' निज झलकमें ॥ २ ॥

दोहा.

द्रव्यसंग्रह गुण उदधिसम, किहँविधि लहिये पार ।
यथाशक्ति कछु वरणिये, निजमतिके अनुसार ॥ ३ ॥

---

(१) प्रत्याख्यान=त्याग ।

चौपाई १५ मात्रा

गाथा मूल नेमिचंद करी । महा अर्थनिधि पूरण भरी ॥
वहुश्रुत धारी, जे गुणवत।ते सव अर्थ लखहिं निरतत॥४ ॥
हमसे मूरख समझें नाहिं। गाथा पढ़ै न अर्थ लखाहिं ॥
काहू अर्थ लखे बुधि ऐन। वाचत उपज्यो अति चितचैन ॥५॥
जो यह ग्रथ कवितमें होय।तौ जगमाहि पढ़ै सव कोय ॥
इहिविधि ग्रथ रच्यो सुविकास, मानसिह व भगोतीदास ॥ ६ ॥
सवत सत्रहसे इकतीस, माघसुदी दशमी शुभदीस ॥
मगल करण परमसुखधाम, द्रव्यसग्रहप्रति करहु प्रणाम ॥ ७ ॥

इति श्रीद्रव्यसग्रहमूलसहित कवित्तबध समाप्त ।

अथ चेतनकर्मचरित्र लिख्यते

दोहा

श्रीजिन चरण प्रणाम कर, भाव भक्ति उर आन ॥
चेतन अरु कछु कर्म को, कहहु चरित्र बखान ॥ १ ॥
सोवत महत मिथ्यात में, चहु गति शय्या पाय ॥
वीत्यो काल अनादि तहँ, जग्यो न चेतन राय ॥ २ ॥
जवही भवथिति घट गई, काल लब्धि भइ आय ॥
बीती मिथ्या नीद तहँ, सुरुचि रही ठहराय ॥ ३ ॥
किये कर्ण प्रथमहि तहा, जाग्यो परम दयाल ॥
लह्यो शुद्ध सम्यक दरस, तोरि महा अघ जाल ॥ ४ ॥
देखहि दृष्टि पसारिकें, निज पर सवको आदि ॥
यह मेरे सँग कौन हैं, जडसें लगे अनादि ॥ ५ ॥
तव सुबुद्धि बोली चतुर, सुन हो ' कत सुजान ॥
यह तेरे सँग अरि लगे, महासुभट बलवान ॥ ६ ॥

कहो सुबुद्धि किम जीतिये, ये दुश्मन सब घेर ॥
ऐसी कला बताव जिमि, कबहुं न आवें फेर ॥ ७ ॥
कह सुबुद्धि इक सीख सुन, जो तू मानें कंत ॥
कै तो ध्याय स्वरूप निज, कै भज श्रीभगवंत ॥ ८ ॥
सुनिके सीख सुबुद्धिकी, चेतन पकरी मौन ॥
उठी कुबुद्धि रिसायके, इह कुलक्षयनी कौन ? ॥ ९ ॥
मै बेटी हूं मोह की, व्याही चेतनराय ॥
कहौ नारि यह कौन है, राखी कहां लुकाय ॥ १० ॥
तब चेतन हँस यों कहै, अब तोसों नहिं नेह ॥
मन लाग्यो या नारिसों, अति सुबुद्धि गुण गेह ॥११॥
तबहिं कुबुद्धि रिसायके, गई पिताके पास ॥
आज पीय हमें परिहरी, तातें भई उदास ॥ १२ ॥

चौपाई (मात्रा १५)

तबहिं मोह नृप बोलै बैन । सुन पुत्री शिक्षा इक ऐन ॥
तू मन में मत ह्वै दलगीर । बांध मँगावत हों तुमतीर ॥ १३ ॥
तब भेजो इक काम कुमार । जो सब दूतनमें सरदार ॥
कहो वचन मेरो तुम जाय । क्योंरे अंध अधरमी राय ॥ १४ ॥
व्याही तिय छांड़हि क्यों कूर। कहां गयो तेरो बल शूर ॥
कै तो पांय परहु तुम आय । कै लरिवे को रहहु सजाय ॥ १५ ॥
ऐसे वचन दूत अवधार । आयहु चेतन पास विचार ॥
नृपके बैन ऐन सब कहे । सुनके चेतन रिस गह रहे ॥ १६ ॥
अब याको हम परसें नाहिं । निजबल राज करें जगमाहिं ॥
जाय कहो अपने नृप पास । छिनमें करूं तुम्हारो नास ॥ १७ ॥

तुम मन में मत करहु गुमान। हम बहु हैं यह एक सुजान ॥
कर आवहु असवारी बेग। मैं भी बाधी तुम पर तेग ॥ १८ ॥
ऐसे वचन सुनत विकराल। दूत लखें यह कोप्यो काल ॥
उन से तो जब ह्वै है रारि। तबलों मोह न डारै मारि ॥ १९ ॥
तब मन में यह कियो विचार। अबके जो राखै करतार ॥
तो फिर नाम न इनको लेउ। चेतनको पुर सब तज देउ ॥ २० ॥
तब बोले चेतन राजान। जाहु दूत तुम अपने थान ॥
फिर जिन आवहु इहिपुर माहि। देखेसों बचिहो पुनि नाहिं ॥ २१ ॥

सोरठा

दूत लह्यो प्रस्ताव, मन में तो ऐसी हुती ॥
भलो बन्यो यह दाव, आयो राजा मोह पै ॥ २२ ॥
कही सबै समुझाय, बातें चेतन राय की ॥
नवहि न तुमको आय, लरिबे की हामी भरै ॥ २३ ॥
सुनके राजा मोह, कीन्हीं कटकी जीव पै ॥
अहो सुभट सज होय, घेरो जाय गँवार को ॥ २४ ॥
सज सज सबही शूर, अपनी अपनी फौज ले ॥
आये मोह हजूर, अब महल्लौं लीजिये ॥ २५ ॥

चौपाई

राग द्वेष दोउ बडे वजीर। महा सुभट दल थभन वीर ॥
फौज माहिं दोऊँ सरदार। इनके पीछें सब परवार ॥ २६ ॥
ज्ञानावरण बोलैं यों बैन। मो पै पच जाति की सैन ॥
जिन जग जीव किये सब जेर। राखे भवसागर में घेर ॥ २७ ॥

---

(१) आक्रमण। (२) हाजरी। (३) कद।

सोरठा.

सुनके चेतन राय, चित चमक्यो कीजे कहा ॥
लीन्हों ज्ञान बुलाय, कहो मित्र कहा कीजिये ॥४५॥
तब बोलै यों ज्ञान, इनसों तो लरिये सही ॥
हरिये इनको मान, अपनी फौजें साजिये ॥ ४६ ॥

चौपाई (१५ मात्रा)

तब चेतन बोले मुख वीर । तुमसे मेरे बड़ वजीर ॥
तो मो कहँ चिंता कछु नाहिं। निर्भय राज करूं जगमाहिं ॥ ४७ ॥
इनपै फौज करहु तय्यार । लेहु संग सब सूर जुझार ॥
तबै ज्ञान सब सूर बुलाय । हुकम सुनायो चेतनराय ॥ ४८ ॥
ह्वै तैयार गहहु हथियार । कर्मनसों अब करनी मार ॥
सुनिकर सूर खुशी अतिभये । अंतमुहूरतमें सज गये ॥ ४९ ॥
लेहु हाजिरी ज्ञान वजीर । कैसे सुभट बने सब वीर ॥
तबै ज्ञान देखै सब सैन । कौन कौन सूरा तुम ऐन ॥ ५० ॥
प्रथम स्वभाव कहै मैं वीर । मोहि न लागें अरिके तीर ॥
और सुनहु मेरी अरदास । छिनमें करूं अरिनको नास ॥ ५१ ॥
तब सुध्यान बोलै मुख बैन । हुकम तुम्हारे जीतों सैन ॥
मो आगें सब अरि नसि जाय। सूर[1] देख जिम तिमर पलाय ॥ ५२ ॥
पुनि बोलो चारित बलवंत । छिनमें करहुं अरिन को अंत ॥
अरु विवेक बोलै बलसूर । देखत मोह नसहिं अरिकूर ॥ ५३ ॥
तब संवेग कहै कर मान । अरि कुल अबहिं करूं घमसान ॥
तब उत्तम बोले समभाव । मैं जीते बांके गढ़राव ॥ ५४ ॥

---

(१) सूर्यको ।

तौ अरि वपुरे हैं किह मात। तम सम चूर करो परभात॥
बोले वच सतोष रसाल। मो आगें वे कहा कँगाल॥ ५५॥
धीरज कहें मोसन को सूर। पलमें करहुँ अरिन चकचूर॥
सत्य कहे मोमें बहु जोर। जीतो वैरी कठिन करोर॥ ५६॥
उपशम कहत अनेक प्रकार। मैं जीते वैरी सरदार॥
दर्शन कहत एकही बेर। जीतो सकल अरिनको घेर॥ ५७॥
आये दान शील तप भाव। निश्चय विधि जानें जिनराव॥
पार न पावहुँ नाम अपार। इहि विधि सकल सजे सरदार॥ ५८॥
तबहिं ज्ञान चेतनसों कही। फौज तुम्हारी सब बन रही॥
चेतन देखें नयन उघार। यह तौ फौज भई तय्यार॥ ५९॥
अबहीं मेरे सूर अनंत। ल्यावहु ज्ञान हमारे मंत॥
शक्ति अनन्त लसे निज नैन। देखो प्रभू तुम्हारी सैन॥ ६०॥
अनंत चतुष्टय आदि अपार। सेना भई सबै तयार॥
जुरे सुभट सब अति बलवंत। गिनती करत न आवे अन्त॥ ६१॥

दोहा

कहें ज्ञान चेतन सुनहु, रोष करहु जिन रंच॥
एक बात मुहि ऊपजी, कहू विना परपंच॥ ६२॥
कहें जीव कहि ज्ञान तू, कैसी उपजी बात॥
तुम तो महा सुबुद्धि हो, कहते क्यों सकुचात? ॥ ६३॥
तबहि ज्ञान नि शक ह्वै, बोले प्रभु सन बैन॥
चाकर एकहि भेजिये, गहि लावे सब सैन॥ ६४॥

सोरठा

कहा विचारो मोह, जिहँ ऊपर तुम चढत हो॥
भेजहु सेवक सोह, जीतित लावे पकरके॥ ६५॥

(१) मदा।

चौपाई.

कहै ज्ञान सुन जीव नरेश । तुम सम और न कोउ राजेस ॥
सुख समाधि पुर देश विशाल ।अभय नाम गढ़ अतिहि रसाल८७
तामें सदा वसहु तुम नाथ । निशि दिन राज करो हित साथ॥
सुमति आदि पटरानी सात । सुवुधि क्षमा करुणा विख्यात८८॥
निर्जर दोय धारणा एक । सात आदि अरु सखी अनेक ॥
वांधव जहां धरमसे धीर । अध्यातम से सुत वरवीर ॥८९॥
मित्र शांति रस वसै सुपास । निजगुण महल सदा सुख वास॥
ऐसे राज करहु तुम ईश । सुख अनंत विलसहु जगदीश९०
तुम पै सूर सैनको जोर । तिनको पार नहीं कहुं ओर ॥
तुम अपनें पुर थिर ह्वै रहौ । वचन हमारो सत सरदहौ॥९१॥
आज्ञा करहु एक जन कोय । सज सेना वह आगें होय ॥
कहै जीव तुम सुनहु सुज्ञान । तुम्हरे वचन हमें परवान॥९२॥
हम आज्ञा यह तुमको करी । लेहु महूरत अति शुभ घरी ॥
चढहु कर्म पै सज हथियार । सूर वडे सव तुम्हरी लार॥९३॥
हमतुममें कछु अन्तर नाहिं । तुम हममें हम हैं तुम माहिं ॥
जैसे सूर तेज दुति धरै । तेज सकल सूरज दुति करै॥९४॥
इहि विधि हम तुम परमसनेह । कहत न लहिये गुणको छेह ॥
ज्ञान कहै प्रभु सुन इक वैन । शिक्षा मोहि दीजियो ऐन ॥९५॥
तुम तो सव विधि हौ गुन भरे । पै अरि सों कवहूं नहिं लरे ॥
तातें तुम रहियो हुशियार । युद्ध वड़े अरिसों निरधार ॥९६॥

वेशरी छंद. (१६ मात्रा)

ज्ञान कहै विनती सुन स्वामी । तुम तौ सवके अन्तर जामी ॥
कहा भयो न करी मै रारी । अव देखो मेरी तरवारी ॥ ९७ ॥

वे सब दुष्ट महा अपराधी । किहँ विधि सैन जाय सब साधी ॥
मेरे मन अचरज यह ज्ञाना । पै मै जानों तुम बलवाना ॥ ९८ ॥

दोहा

ज्ञान कहै चेतन सुनो, तुमसे मेरे नाथ ॥
कहा विचारो क्रूर वह, गहि डारों इक हाथ ॥ ९९ ॥
तब चेतन ऐसें कहै, जीत तुम्हारी होय ॥
मारि भगावो मोहको, रागद्वेष अरि दोय ॥ १०० ॥

करिखा छद ।

ज्ञान गभीर दलबीर सग ले चढ्यो, एक तें एक सब सरम सूरा । कोट अरु सखिन न पार कोऊ गने, ज्ञानके भेद दल सबल पूरा ॥१०१॥ सिपहँसालार[1] सरदार भयो भेद नृप, अरि न दलचूर यह बिरद लीनो । हाथ हथियार गुणधार विस्तार बहु, पहिर दृढभाव यह सिलह कीनो ॥ १०२ ॥ चढत सब वीर मन वीर असवार ह्वै, देख अरिदलनको मान भजै । पेख जयवत जिनचद सबही कहै, आज पर दलनिको सही गजै ॥१०३॥ अतिहि आनदभर वीर उमगत सब, आज हम भिडनको दाव पायो ॥ युद्ध ऐसो विकट देख अरि थर हरें, होय हम नाम दिन दिन सवायो ॥ १०४ ॥

मरहठा छद

बजहि रण तूरे, दल बहु पूरे, चेतन गुण गावत ॥
सूरा तन जग्गो, कोऊ न भग्गो, अरिदल पै धावत॥
ऐसे सब सूरे, ज्ञान अँकूरे, आये सन्मुख जेह ॥
आपावल मडे, अरिदल खडे, पुरपट्टनके गेह ॥ १०५ ॥

(१) फौजी अफसर ।

दोहा.

नाम विवेक सु दूतको, लीन्हों ज्ञान वुलाय ॥
जाय कहहु वा मोहको, भलो चहै तो जाय ॥ १०६ ॥
जो कबहूँ टेढ़ो बकै, तो तुम दीज्यो सोंस[1] ॥
धिक धिक तेरे जनमको, जो कछु राखै हौंस ॥ १०७ ॥
तेरो बल जेतो चलै, तेतो कर तू जोर ॥
वे चाकर सव जीवके, छिनमें करि हैं भोर[2] ॥ १०८ ॥
ज्ञान भलाई जानकें, मैं पठयो तोहि पास ॥
चेतनको पुर छांडदे, जो जीवनकी आस ॥ १०९ ॥

सोरठा.

चल्यो विवेक कुमार, आयो राजा मोह पै ॥
कह्यो वचन विस्तार, भलो चहै तो भाजिये ॥ ११० ॥
सुनके वचन हुताश, कोप्यो मोह महा बली ॥
छिनमें करिहों नाश, मो आगें तुम हो कहा? ॥ १११ ॥

दोहा.

एकहि ज्ञानावर्णीने, तुम सब कीने जेर ॥
इतनी लाज न आवही, मुखहिं दिखावहु फेर ॥ ११२ ॥
काल अनंतहिं कित रहे, सो तुम करहु विचार ॥
अव तुम में कूवत भई, लरिवेको तय्यार ॥ ११३ ॥
चौरासी लख स्वांगमें, को नाचत हो नाच ॥
वा दिन पौरुष कित गयो, मोहि कहो तुम सांच ॥ ११४ ॥
इतने दिनलों पालिकें, मैं तुम कीने पुष्ट ॥
तातें लरिवेको भये, गुण लोपी महा दुष्ट ॥ ११५ ॥

---

(१) कसम । (२) नष्ट ।

जाहु जाहु पापी सबै, चेतनके गुण जेह ॥
मोको मुख न दिखावहु, छिनमें करिहों खेह ॥ ११६ ॥
मोहवचन ऐसे सुये, सुनिके चल्यो विवेक ॥
आयो राजा ज्ञान पै, कही वात सब एक ॥ ११७ ॥
वह क्योंही भाजै नहीं, गहि वैठ्यो यह टेक ॥
लरिहों फोजें जोरिके, बोलै दूत विवेक ॥ ११८ ॥
दूत वचन सुनिकें हँसो, ज्ञान वली उर माहि ॥
देखो थित पूरी भई, क्योंह मानें नाहि ॥ ११९ ॥
लेहु सुभट ! तुम वेगही, अव्रतपुर अभिराम ॥
रह्यो क्रूर वह घेरिकें, मेंटहु वाको नाम ॥ १२० ॥
चढी सैन सब ज्ञानकी, सूर वीर बलवन्त ॥
आगे सेनानी भयो, महा विवेक महंत ॥ १२१ ॥

करिखा छंद

आय सन्मुख भये मोहकी फोजसों, भिडनके मतै सव सूर गाढे । देख तब मोह अति कोह, मनमें कियो, सुभट हलकारि रहे आप ठाढे ॥१२२॥ सूर वलवत मदमंत्त महा मोहके, निकसि सब सैन आगे जु आये ॥ मारि घमसान महा जुद्ध वहु रुद्र करि, एक ते एक सातों सवाये ॥ १२३ ॥
वीर सुविवेकने धनुप ले ध्यानका, मारिकें सुभट सातो गिराये ।
कुमक जो ज्ञानकी सैन सब सग धसी, मोहके सुभट मूर्छा समाये १२४
देख तब युद्ध यह मोह भाग्यो तहा, आय अव्रतहि सव सूर जोरे,
वाधकर मोरचे वहुरि सन्मुखभयो, लरनकी होसतें करे निहोरे १२५

---

(१) चौथा गुण स्थान । (२) सेनापति । (३) क्रोध । (४) मदोन्मत्त । ( ) मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व और अनतानुबधी क्रोध मान माया लोभ ये ७ प्रकृतियें । (६) उपशमित कियीं । (७) चौथ गुणस्थानमे ।

चौपाई १५ मात्रा.

इहविधि मोह जोरि सब सैन। देशव्रत[1] पुर बैठो ऐन ॥
करै उपाय अनेक प्रकार। किहिविधि ल्यों अव्रतपुर सार॥ १२६॥
सुभट सात तिनको दुखकरै[2]। तिन विन आज निकसि को लरै ॥
जो होते वे सूर प्रधान। तो लेते अव्रतपुर थान॥ १२७ ॥
ऐसे वचन मोह नृप कहे। रागद्वेष तव अति उर दहे॥
हा हा! प्रभु ऐसें क्यों कहो। एक हमारी शिक्षा लहो ॥ १२८ ॥
सुभट तुम्हारे हैं वहु वीर। तिनमें जानहु साहस धीर ॥
तिनको आज्ञा प्रभुजी देहु। इहविधि अव्रतपुर तुम लेहु ॥१२९॥
तवै मोहनृप बीड़ा धरै। कौन सुभट आगे ह्वै लरै ॥
तव बोले अप्रत्याख्यान[3]। मैं जीतूं अवके दलज्ञान ॥ १३० ॥
कहै मोहनृप किंहिविधि वीर। मोहि वतावहु साहस धीर ॥
वोले अप्रत्याख्यान प्रकास। सुनहु प्रभू मेरी अरदास ॥१३१॥
मैं अव्रतपुरमें छिप जाउं। चेतन ज्ञान वसै जिह ठाउं ॥
संग लेय अपने सब लोग। नानाविधि परकासों भोग ॥१३२॥
उनके[4] उपसम वेदकभाव। क्षयउपसम वसुभेद लखाव ॥
इनकैथिरतावहुकछुनाहिं। छिनसम्यकछिनमिथ्यामाहिं॥१३३॥
क्षायक एक महा जे जोर। पहिले प्रगटै ना उहि ओर ॥
तोलों देखहु मैं क्या करों। व्रतके[5] भाव सर्वथा हरों ॥ १३४॥
अव्रतमें उपशम हट जाय। जिहँकर पापपुण्य मन लाय ॥
जव वह मगन होय इहि संग। जीत लेहु तवही सरवंग ॥१३५॥

(१) पचमगुणस्थानमें। (२) चिंता। (३) अप्रत्याख्यानावर्णी क्रोध मान माया लोभ। (४) चेतनके,। (५) श्रावकके व्रत।

इहिविधि जीतो परदल जाय। जो मोहि आज्ञा दीजे राय ॥
तबै मोहनृप चिंतै सही। यह तौ बात भली इन कही ॥ १३६ ॥
सिद्धि करहु अप्रत्याख्यान। लेहु सूर सँग जे बलवान ॥
इहिविधिआयो पुरके माहि। ज्ञानीविन जानै कोउ नाहि॥१३७॥
निजविद्या परकाशे सही। नानाविध क्रोधादिक लही ॥
ताके भेद अनेक अपार। कौलों कहिये बहु विस्तार ॥१३८॥

दोहा

इहिविधि सब ही सैन लै, आयो अप्रत्याख्यान ॥
अव्रतपुरमें पैठिके, करै व्रतनिकी हान ॥ १३९ ॥
ताके पीछें मोहनृप, आयो सब दल जोरि ॥
महासुभट सँग सूर लै, चढ्यो सुमूछ मरोरि ॥ १४० ॥
कुमन जसूस बुलायकें, मोह कहै यह बात ॥
तुम सुधि लावहु वेगही, कहा सुभट वे सात ॥१४१॥
कुमन खबर पहिले दई, वे मूछित उन पास ॥
कछु विद्या कीजे यहा, ज्यों वे लहैं प्रकास ॥ १४२ ॥
मोह करै विद्या विविध, रागद्वेष लै सग ॥
उनमें कछु चेतन भये, कछु रहे मूछित अग ॥ १४३ ॥
सुमन दूत सब ज्ञानपै, कही मोहकी बात ॥
कहाँ रहे तुम बैठि वह, सुभट जिवावत सात ॥ १४४ ॥
जो वे सात जिये कहू, तौ तुम सुनहो बात ॥
चेतनके सब सुभट को, करि है पलमें घात ॥ १४५ ॥
मोह जु फौजें जोरिके, आयो कर अभिमान ॥
तुमहू अपने नाथको, खबरि पठावहु ज्ञान ॥ १४६ ॥

(१) पाचव गुणस्थानमें (२) गुप्तदूत (३) उपगामरूप

तवै ज्ञान निजनाथपै, भेज्यो सम्यक वेग ॥
कहो बधाई जीतकी, अरु पुनि यह उद्वेग ॥ १४७ ॥
वहुरि मिले वे दुष्ट सव, आये पुरके माहिं ॥
लरिवेकी मनसा करैं, भागनकी बुधि नाहिं ॥ १४८ ॥
इहि विधि सम्यकभाव सव, कही जीवपै जाय ॥
सुनिकें प्रवलप्रचंड अति, चढ्यो सुचेतनराय ॥ १४९ ॥
महा सुभट वलवंत अति, चढ्यो कटक दल जोर ॥
गुण अनंत सव संग है, कर्म दहनकी ओर ॥ १५० ॥
आय मिले सव ज्ञानसे, कीन्हों एक विचार ॥
अवकें युध ऐसो करहु, बहुरि न बचै गँवार ॥ १५१ ॥
चढे सुभट सव युद्धको, सूरवीर वलवंत ॥
आये अंतर भूमि महिं, चेतन दल सुअनंत ॥ १५२ ॥

सोरठा.

रोपि महारण थंभ, चेतन धर्म सुध्यानको ।
देखत लगहि अचंभ, मनहिं मोहकी फौजको ॥ १५३ ॥

दोहा.

दोऊ दल सन्मुख भये, मच्यो महा संग्राम ॥
इत चेतन योधा वली, उतै मोह नृप नाम ॥ १५४ ॥

करखा छंद.

मोहकी फौजसों नाल गोले चलें, आय चैतन्यके दलहि लागें ॥
आठ मल दोष सम्यक्त्व के जे कहे, तेहि अव्रत्तमें मोह दागें॥१५५॥
जीवकी फौजसों प्रवल गोले चलें, मोहके दलनिको आय मारें ॥
अंतर विरागके भाव वहु भावता, ताहि प्रतिभास ऐसो विचारें १५६

---

(१) शंकादि । (२) आतंरिक वैराग्य ।

वहुरि पुनि जोर कर अतिहि घन घोर कर, मोहनृपचद्र बातें चलावें।
दोष पट आय तन अतिहि उपजाय घन, जीवकी फौज सन्मुख वगावै
हसकी फौजतें वान घमसानके, गाजते बाजते चले गाढे ॥
मोहकी फौजको मारि हलकारकरि, हेयोपादेयके भाव काढे॥१५८॥
अष्टमद गजनिके हलकै हकारि दै, मोहके सुभट सब धसत सूरे ॥
एकतें एक जोधा महा भिडत हैं, अतिहि बलवत मदमत पूरे॥१५९
जीवकी फौजमें सत्य परतीतके, गजनिके पुज बहु धसत माते ॥
मारिकें मोहकी फौजको पलकमें, करत घमसान मदमत्त आते १६०
मार गाढी मचै, सुभट कोउ ना बचे, घाव विन खाये, दुहुन्दलनमाहीं॥
एक तें एकयोधा दुहू दलनमें, कहते कछु ऊपमाबनत नाहीं॥१६१॥
सात जे सुभट मूर्छित पडते भये, मोहने मत्रकरि सब जिवाये॥
आय इहि जुद्धमहिं तिनहुको रुद्ध करि, जीवको जीत पीछें हटाये ॥
मिश्रें सासदेंनहि परेंसमिथ्यातमहि, उमगिकैंवहुरि अव्रतेंहि आयो॥
मारि घमसान अवसान खोये त्वरित, सातमें एक ढूक्यो न पायो १६३

सोरठा

इहविधि चेतन राय, युद्ध करत है मोहसों ॥
और सुनहु अधिकाय, अबहि परस्पर भिडत हैं ॥ १६४ ॥

मरहठा छंद

रणसिंगे वज्जहि, कोऊन भज्जहिं, करहि महादोउ जुद्ध ॥
इत जीव हकारहिं, निजपरवारहिं, करहु अरिनको रुद्ध ॥
उत मोह चलावे, तब दल धावे, चेतन पकरो आज।
इहविध दोऊ दल, में कल नहि पल, करहिं अनेक इलाज॥१६५॥

---

(१) ललकारकर। (२) तीसरे गुणस्थानमें। (३) दूसरे सासादनगुणस्थानमें। (४) पहिले मिथ्यात्वगुणस्थानको भी स्पर्शकरके। (५) चौथे गुणस्थानमें।

चौपाई १५ मात्रा.

मोह सराग भावके बान । मारहिं खैंच जीवको तान ॥
जीव वीतरागहिं निजध्याय । मारहिं धनुषबाण इहि न्याय १६६
तबहिं मोहनृप खड्ग प्रहार । मारै पाप पुण्य दुइ धार ॥
हंस शुद्ध वेदै निज रूप । यही खरग मारें अरि भूप १६७
मोह चक्र ले आरत ध्यान । मारहि चेतनको पहिचान ॥
जीव सुध्यान[1] धर्मकी ओट । आप बचाय करै परचोट ॥१६८॥
मोह रुद्र बरछी[2] गहि लेय । चेतन सन्मुख घाव जु देय ॥
हंस दयालुभावकी ढाल । निजहिं बचाय करहि परकाल१६९
मोह अविवेक गहै जमदाढि । घाव करै चेतन पर काढि ॥
चेतन ले यमधर सुविवेक । मारि हरै वैरिनकी टेक ॥ १७० ॥
चेतन क्षायक चक्र प्रधान । वैरिन मारि करहि घमसान ॥
अप्रत्याख्यान मूरछित भये । मोह मारि पीछें हट गये ॥१७१॥
जीत्यो चेतन भयो अनंद । बाजहिं शुभ बाजे सुखकंद ॥
आयमिले अव्रतके भोग । दर्शनप्रतिमा आदि संयोग १७२
व्रतप्रतिज्ञा दूजो भाव । तीजो मिल्यो सामायिक राव ॥
प्रोषधव्रत चौथो बलवंत । त्यागसचित व्रत पंच महंत॥१७३
षष्टम ब्रह्मचर्य दिन राय । सप्तम निशदिन शील कहाय॥
अष्टम पापारंभ निवार । नवमों दशपरिगह परिहार ॥१७४
किंचित ग्राही परम प्रधान । महासुबुधि गुणरत्न निधान ॥
दशमों पापरहित उपदेश । एकादशम भवनतजवेश ॥१७५॥
प्राशुक लेय अहार सुजैन । कहिये उदंड विहारी ऐन ॥
ये एकादश भूप अनूप । आय मिले श्रावकके रूप ॥१७६॥

(१) धर्मध्यान । (२) रौद्रध्यानकी बरछी ।

चेतन सबसो करै जुहार। परम धरम धन धारन हार ॥
निज बल हस करहिं आनद। परम दयाल महा सुखकद १७७

दोहा

इहि विधि चेतन जीतकें, आयो व्रतपुरमाहिं ॥
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, नेकु विराधै नाहि ॥ १७८ ॥
जिहँ जिहँ थानक काजके, कीन्हें सब निधि आय ॥
अब भावै वैराग्यतहँ, सुनहु 'भविक' मन लाय ॥१७९॥

ाल—पचमहाव्रत मन धरो सुनि प्रानीरे, छाडि
गृहस्थावास आज सुनि प्रानीरे ॥ टेक ॥

तैं मिथ्यात्त्वदशा विषै सुन प्रानीरे, कीन्हें पाप अनेक आज, सुनि प्रानीरे ॥ भव अनत जे तैं किये सुनि प्रानीरे, रागद्वेष पर सग, आज सुनि प्रानीरे ॥१८०॥ ज्ञान नेकु तोको नही सुनि० तब कीने बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे॥ ते दुख तोको देय हैं सुनि० जो चूको अब दाव, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८१ ॥ तैं अव्रतमें जे किये सुनि० व्रत्त बिना बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे ॥ देश विरतमें पाच जे सुनि० थावरहिंसा लागि आज सुनि प्रानीरे॥१८२॥ किये कर्म तैं अतिघने सुनि०क्यो भुगते बिनजाय,आजसुनप्रानीरे ॥ मोह महाहितु तैं कियो,सुनि०वह तोको दुख देय आज सुनि प्रानीरे॥ ॥१८३॥ जिहँ जिय मोह निवारियो सुनि० तिहँ पायो आनद, आज सुनि प्रा० ॥ मनवच काया योगसां सुनि० तैं कीने बहु कर्म, आज सुनि प्रानीरे ॥१८४॥ वे भुगते बिन क्यों मिटैं सुनि० जे बाधे तैं आप, आज सुनि प्रानीरे॥ जो तू सयम आदरै सुनि०करै तपस्या घोर, आजसुनि प्रानीरे १८५ तौ सबकर्म खपायकें सुनि०

(१) पाचवें गुणस्थानमें। ( ) मिश्र।

पावे परम अनंद आज सुनि प्राणीरे॥ पूरव वांधे कर्म जो सुनि० सव छिनमें खप जांहिं, आज सुनि प्रानी रे॥ १८६ ॥ इहिविधि भावन भावतै सुनि०आयो अति वैराग, आज सुनि प्रा० ॥जिय चाहे संयम गहों सुनि० अवै कोन विधि होय, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८७ ॥

दोहा.

जिय चाहै संयम गहों, मोह लेन नहिं देय ॥
वैठ्यो आगें रोकिकें, अव प्रमत्तपुर जेय ॥ १८८ ॥
सुभट जु प्रत्याख्यान को, करिकें आगें वान ॥
वैठ्यो घाटी रोकिकें, मोह महा अज्ञान ॥ १८९ ॥
केतक चाकर जोर जे, भेजे व्रतहिं छिपाय ॥
ते चेतनके दलनमें, निशदिन रहैं लुकाय ॥ १९० ॥
कवहूं परगट होंय कछु, कवहू वे छिप जाहिं ॥
इहविधि सेना मोहकी, रहै सुइहि दल माहिं ॥१९१॥

चौपाई.

मोह सकल दलसों पुरद्वार। आय अर्यो संग ले परवार ॥
चेतन देश विरतपुर मांहि। आगें पांव धरे कहुं नाहिं॥१९२॥
मोह किये परपंच अनेक। गहिवेको गहि वैठ्यो टेक ॥
जो चेतन आवै पुरं मांहि। तौ राखों गहिकें निज पांहिं ॥१९३॥
वहुर न निकसन छिन इक देहुं। डारि मिथ्यात्व वैर निज लेहुं ॥
यह चेतन मोसों युध करै। जो आवै अवके कर तरैं॥१९४॥
तौ फिर याको ऐसे करों। सुधि वुधि शक्ति सवहि परिहरों
इहविधि मोह दगाकी वात। रचना करहि अनेक विख्यात॥१९५॥

(१) मुनिव्रत। (२) छट्ठे गुणस्थानमें। (३) पाचवें गुणस्थानमें। (४) छट्ठे गुणस्थानमें।

सुमन खवर सव जियको दई । एक वात सुन हो[1] प्रभु नई ॥
मोह रचें फदा वहु जाल । तुम जिन भूलहु दीन दयाल॥१९६॥
अवके जो पकरंगो तोहि । तौ फिर दोप न दीजो मोहि ॥
मे सव खवर नाथ तुम दई । जैसी कछु हकीकत भई ॥ १९७ ॥
तजै हस इहपुरको पथ । चल्यो उलघि महा निर्ग्रंथ ॥
अप्रमत्तपुरकी लइ राह । जिहँ मारग पथी वहु साह ॥ १९८ ॥
रोके आय जु प्रत्याख्यान । जुद्ध करे विन देहु न जान ॥
चेतन कहै जाहु शठ दूर । छिनमें मारि करू चकचूर ॥१९९॥
तवहि जोर नाना विधिकरै । चेतन सन्मुख ह्वैकें लरै ॥
चेतन ध्यानधनुप कर लेय । मूँछित कर आगें पग देय ॥ २००॥
गिरयो जु प्रत्याख्यान कुमार । चेतन पहुँच्यो सप्तम द्वार ॥
मोह कहै देखहु रे जोर । यह तो किये जातु है भोर ॥ २०१ ॥
पकरहु सुभट दौरि इह जाहिं । ल्यावहु पकरि वेग मोहि पाहि॥
चल्यो धर्मराग वलवीर । विकथा वचन दूसरो धीर ॥ २०२ ॥
निद्रा विपय कपाय सुपच । पकरि हस ले आये पर्च ॥
चेतन देखै यह कहा भई । मोहि पकरि ले आये दई ॥ २०३ ॥
यह परमत्त देश है सही । मोकों सुमन अगाउ कही ॥
अव कछु ऐसो कीजे काज । जासों होय अप्रमत राज ॥ २०४॥
अट्ठाईस मूलगुण धरै । वारह भेद तपस्या करै ॥
सहै परीसह वीसरु दोय । उभय दया पालै मुनि सोय ॥२०५॥
इहिविधि लहे अप्रमत आय । तवै मोह निज दास पठाय ॥

---

(१) छट्ठे गुणस्थानको छोडकर । (२) सातवें गुणस्थानकी राह पकडी । (३) प्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ ये चार कषायें । (४) उपसमरूप करके । (५) प्रत्याख्यानावर्णी उपशम होगया । (६) सातवें गुणस्थानमें । (७) गला ।

पकरि भगावै करि बहु मान। तबै हंस चिंतै निज ज्ञान॥२०६॥
यह तौ मोह करै बहु जोर। मोको रहन न दे उहि ओर॥
अब याको मैं भिष्टित करों। अप्रमत्तमें तब पग धरों॥ २०७॥
तबहि हंस थिरता अभ्यास। कीन्हीं ध्यान अगनिपरकाश॥
जारीं शक्ति मोह की कई। महा जोरतैं निर्बल भई॥ २०८॥
हंस लयो निज बल परकास। कीन्हों अप्रमत्त पुर वास॥
सुभट तीन[१] मोहके दरे[२]। अरु परमाद सबै अप हरे॥ २०९॥
तज्यो अहार विहार विलास। प्रथम करण कीनो अभ्यास॥
सप्तम पुरके अंत अनूप। करै कर्ण चारित्र स्वरूप॥ २१०॥
आवै संग मोह दल लेय। पै कछु जोर चलै नहिं जेय॥
अब जिय अष्टम पुर पग धरै। मोह जु संग गुप्त अनुसरै॥२११॥
करहि करण चेतन इह ठांव। दूजो कह्यो अपूरब नाव॥
जे कबहूँ न भये परिणाम। ते इहि प्रगटे अष्टम ठाम॥२१२॥
अब चेतन नवमें पुर[३] आय। जामें थिरता बहुत कहाय॥
पूरब भाव चलहि जे कहीं। ते इह थानक हालै नहीं॥२१३॥
इहिविधि करण तीसरो करै। तबै मोह मन चिंता धरै॥
यह तो जीते सब पुर जाय। मेरो जोर कछू न बसाय॥२१४॥

दोहा.

मोह सेन सब जोरिकें, कीन्हों एक विचार॥
परगट भये बनै नहीं, यह मारै निरधार॥ २१५॥
तातैं सुभट लुकाय तुम, रहो पुरनके मांहि॥
जो कहुँ आवै दावमें, तो तुम तजियो नाहिं॥ २१६॥

(१) नरक तिर्यंच और देव आयुको। (२) उपशमित किये। (३) अनिवृत्त करन नामके नवमें गुण स्थानमे।

हम हू शकति छिपायकें, रहें दूरलों जाय ॥
जो जीवत बचि हैं कहू, तो तुम मिलि हैं आय॥२१७॥
नगर ग्राम उपशात पुर, तहा लों मेरो जोर ॥
जो ऐहैं मो दावमें, तो मैं करिहों भोर ॥ २१८ ॥
तुम हू सब जन दौरिकें, आय मिलहुगे धाय ॥
तब या हसहि पकरिके, देहैं भली सजाय ॥ २१९ ॥
इह विचार सब सैनसों, कीन्हों मोह नरेश ॥
रहे गुप्त दबि दबि सबै, कर कर उपसम भेश ॥२२०॥

चौपाई

चेतन चर चलाय चहु ओर। पकरहि मूढ मोहके चोर ॥
जन छत्तीस गहे ततकाल। मूछित करके चले दयाल ॥ २२१ ॥
सूक्षम सापरांयके देश। आय कियो चेतन परवेश ॥
तिहँ थानक इक लोभ कुमार।जीत कियो मूछित तिहँ वार॥२२२॥
आगे पाव निशकित धरै। अब वैरी मोसों को लरै ॥
मैं जीते सब कर्म कठोर। इहि विधि धस्यो निशकित जोर॥२२३॥
जब उपशात मोहके देश। हद माहिं कीन्हो परवेश ॥
तबै मोह जोर निज किया। चेतन पकरि उलटि इत दिया॥२२४॥
आये सुभट मोहके दौर। मूछित छिपे रहे जिहँ ठौर ॥
पकरि हस मिथ्यापुर माहिं। ल्याये क्रूर सबहि गहि बाँह ॥२२५॥
इहा न कछु निहचै यह बात। उत्कृष्ट कहिये विख्यात ॥
औरहू थानक है चहु जहा। चेतन आय बसत है तहा ॥ २२६ ॥
उपशम समकित जाको होय। मिथ्यापुर लों आवे सोय ॥
क्षायक सम्यकवत कदाच। उपसम श्रेणि चढै जो राच ॥२२७॥

---

(१) सूक्ष्मसापराय दशवां गुणस्थान।

तौ वह चौथे पुरलों आय। गिरकर रहै इहां ठहराय ॥
औरों थानक उपसम गहै। दोऊ सम्यकवंत जु रहै ॥२२८॥
अव मिथ्या पुरमें दुख देय। मोह वली चेतनको जेय ॥
नाना विध संकट अज्ञान। सहै परीपह यह गुणवान ॥२२९॥
पंच मिथ्यात्व भेद विस्तार। कहत न सुरगुरु पावे पार ॥
सादि मिथ्यात्व नाश जिय लहै। ताके उदै कौन दुख सहै२३०
सो दुख जानहिं चेतनराम। कै जाने केवल गुणधाम ॥
कहत न लहिये पारावार। दुख समुद्र अति अगम अपार२३१
इहि विधि सहै करमकी मार। अव चेतन निज करै सम्हार॥
द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव। पंचहु मिले वन्यो सव दाव २३२

दोहा.

ध्यान सुथिरता राखि के, मनसों कहै विचार ॥
संगति इनकी त्यागिके, अव तू थिर हो यार ॥ २३३ ॥

ढाल—चेत मन भाईरे ॥ एदेशी—

माया मिथ्या अग्र शौच, **मन भाईरे**, तीनों सल्य निवार, **चेत मन भाईरे** ॥ क्रोधमान माया तजो, **मन०** लोभ सवै परित्याग, **चेत मन भाईरे** ॥ २३४ ॥ झूंठी यह सव संपदा, **मन०** झूठो सव परिवार, **चेत मन भाईरे** ॥ झूंठी काया कारिमी, **मन०** झूठो इनसों नेह, **चेत मन भाईरे**॥२३५॥ यह छिनमें उपजै मिटै, **मन०** तू अविनाशी ब्रह्म, **चेत मन भाईरे** ॥ काल अनंतहि दुख दियो, **मन०** इसही मोह अज्ञान, **चेत मन भाईरे**॥२३६॥ जो तोको सुमरण कहूँ, **मन०** आवे रंचक मात्र, **चेतमनभाई रे** ॥ तो कवहूँ संसारमें, **मन०**तू न विषयसुख सेव, **चेतमनभाई रे**॥२८॥

---

(१) कर्मसे जो उत्पन्न होय.

को कहै कथा निगोदकी,मन०ताके दुखको पार, चेतमनभाई रे॥
काल अनत तो तैं लहे,मन०दु ख अनती वार,चेतमनभाई रे॥३९॥
देव आयु पुनि तैं धरयो, मन० तामें दु ख अनेक, चेतमनभाई रे॥
लोभ महासुखहैजहा,मन०प्रगट विरह दुख होय,चेतमनभाईरे४०
दु ख महा वहु मानसी मन० देखे अन्य विभूति, चेतमनभाई रे ॥
तिर्यक् गतिमें तू फिरयो मन० सकट लहे अनेक,चेतमनभाई रे ४१
अविवेकी कारज किये, मन० वाधे पाप अनेक, चेतमनभाई रे॥
नरदेही पाई कह, मन०सेये पच मिथ्यात,चेतमनभाई रे॥४२॥
कहु कारज को तो सरयो, मन०जनम गमायो व्यर्थ, चेतमनभा०
भ्रमत भ्रमत ससारमे मन०कवहुँ न पायो सुक्ख,चेतमनभा० ४३
अवके जो तोको भई, मन० कछु आतम परतीत, चेतमनभा०॥
धारि लेहु निजसपदा,मन०दर्शन ज्ञान चरित्र,चेतमनभाईरे४४
और सकल भ्रमजालहै, मन०तत्त्व इहै निज काज, चेतमनभा०॥
सुखअनत यामेंवसे, मन०निज आतम अवधार,चेतमनभा०॥४५
सिद्ध समान सुछद है, मन० निश्चै दृष्टि निहारि, चेतमनभा० ॥
इहिविधि आतम सपदा, मन०लहि करि आतमकाज चेतमनभा०

दोहा

इहि विधि भाव सुभाव तें, पायो परमानद ॥
सम्यक दरश सुहावनो, लह्यो सु आतमचद ॥२४७॥
क्षायक भाव भये प्रगट, महा सुभट वलवत ॥
कीन्हों जिहँ छिन एकमें, सुभट सातको अंत ॥२४८॥
मोह तवै निर्वल भयो, अवके कछु विपरीत ॥
मेरे सुभट भये शिथल, लागहिं उनकी जीत॥२४९॥

(१) दर्शन मोहकी प्रकृति और अनतानुबधी क्रोध मान माया लोभ। (२) क्षय।

चेतन ध्यान कमान ले, मारे क्षायक वान ॥
मोह मूढ छिपतो फिरै, ज्ञान करै घमसान ॥ २५० ॥
देश विरत पुरमें चढ्यो, चेतन दल परचंड ॥
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, पालै सदा अखंड ॥ २५१ ॥

सोरठा.

मोह भयो बलहीन, छिप्यो छिप्यो जित तित रहै ॥
चेतन महा प्रवीन, सावधान ह्वै चलत है ॥ २५२ ॥
अप्रमत्त[1]पुरमाहिं, चेतन आयो बिधिसहित ॥
तहां न जोर बसाहिं, मोह मान भिष्टित भयो ॥ २५३ ॥
चेतन करि तहँ ध्यान, सुभट तीन[2] औरहि हरे ॥
पुनि चारित्र प्रमान, करैन[3] किये सप्तम पुरहि ॥ २५४ ॥

दोहा.

तजी अहार विहारविधि, आसन दृढ ठहराय ॥
छिन छिन सुख थिरता वढै, यों बोलै जिनराय ॥ २५५ ॥
अवहिं अपूरव[4] करनमें, आयो चेतनराय ॥
कियो करन[5] दूजो जहाँ, थिरता ह्वै अधिकाय ॥ २५६ ॥
[6]नवमें पुरमें आयकें, तृतिय करन करि लेय ॥
हरिके सुभट छतीसँ[7] तहँ, आगेंको पग देय ॥ २५७ ॥
आयो दशमें पुरविषै, चेतन महा सचेत ॥
सुभट एक[8] इतहू हर्‌यो, तबै ज्ञान सुधि देत ॥ २५८ ॥

---

(१) सातवें गुणस्थानमें। (२) नरक, तिर्यच देव आयु। (३) अध.प्रवर्तकरण प्रारभ किया। (४) आठवें गुणस्थानमें। (५) दूजा अपूर्वकरन प्रारभ किया। (६) नवमें अनिव्रतकरननामक गुणस्थानमें तीसरा करन प्रारंभ किया। (७) दर्शनावरणीकी २ मोहिनीकी ४ नामकर्मकी ३० इसप्रकार छत्तीस प्रकृतिये। (८) सूक्ष्म लोभ।

सावधान है नाथजी, रहियो तुम इह ठौर ॥
इहा मोहको जोर है, तुम जिन जानहु और ॥ २५९ ॥
पहिले हानि जो तुम लही, सो थानक इह आहि ॥
तातै मै विनती करो, प्रभू भूल जिन जाहि ॥ २६० ॥
तव चेतन कहै ज्ञान सुनि, अव यह पथ न लेहि ॥
चलहि उलघि उतावले, आगे धोंसा देहि ॥ २६१ ॥
कहे वहुत सक्षेपसो, इहविधि ये गुणथान ॥
पूरव वरनन विधि सवै, समझि लेहु गुणवान ॥ २६२ ॥
जो फिरकै वरनन करै, है पुनरुक्ति प्रदोष ॥
तातै थोरेमें कह्यो, महा गुणनिके कोप॥ २६३ ॥

पद्धरिछन्द

जहॅ चेतन करि सव करम छीन । उंपशात मोहपुर उलॅघि लीन ।
आयो द्वादशमहि महमहत । सव मोह कर्म छय करिय अत॥
जहॅ यथाख्यात प्रगट्यो अनूप । सुखमय सव वेदै निजस्वरूप ।
जहॅ अवधि ज्ञान पूरन प्रकास । केवल पुनि आयो निकट भास॥
सो छीनमोहॅ पुर प्रगट नाम । तिहि थानक विलसे निजसुधाम
अव अँतराय कहुँ करिय अत । पोडॅश सव प्रकृति खपाय तत ६६
जहॅ घातिया चारो कर्म नाश । सव लोकालोक प्रत्यक्ष भास ॥
प्रगट्यो प्रभु केवल अतिप्रकाश । जहॅ गुण अनत कीन्हों निवास६७
प्रगटी निज सपति सव प्रतच्छ । विनशी कुलकर्म अज्ञान अच्छ।
प्रगट्यो जहॅ ज्ञान अनत ऐन । प्रगट्यो पुनि दरश अनत नैन६८

---

(१) ग्यारहवा गुणस्थान ( ) क्षीणमोह वारहवें गुणस्थानमें (३) यथाख्यातचारित्र (४) वारहवाँ गुणस्थान (५) ज्ञानावणकी ५ दरानवर्णकी ४ यशकीर्ति १ उच्च गोत्र १ व अतराय ५ इसप्रकार १६ प्रकृति

प्रगट्यो तहँ वीर्य अनंत जोरि । प्रगट्यो सुख शक्ति अनंत फोरि॥
तहँ दोष अठारह गये भाज । प्रभु लागे करन त्रिलोकराज६९
सब इन्द्र आय सेवहिं त्रिकाल । प्रभु जय जय जय जीवनदयाल।
तहँ करत अष्टप्रतिहार्य देव। विधि भावसहित नितभविक सेव॥
प्रभु देत महा उपदेश ऐन । जिहँ सुनत लहत भवि परम चैन
जहँ जनम जरा दुख नाश होय । प्रभु विद्यादेश बताय सोय॥७१
इहविधि सयोग[1]पुर राज योग । प्रभु करत अनंत विलास भोग ॥
तोउ करम चार नहिं तजहिं संग । लगरहे पूर्व तिथिबंध अंग॥७२
प्रभु शुक्लध्यानआरूढ होय । अँतरीक्ष विराजहिं गगन सोय॥
तहँ आसन दृढ ठहराय एक । पद्मासन कायोत्सर्ग टेक ॥७३॥
प्रभु डग नहिं भरहिं कदाच भूम। तऊ कर्म करत है कौन धूम ॥
लिये लिये फिरत तिहुँलोकमाहिं। जिहँ थानक पूरव बंध आहिं ॥
कहुँ राखहिं थिर कहुँ लै चलंत। कहुँ बानि खिरै कहुँ मौनवंत ।
कहुँ समवशरण कहुँ कुटी होय । कहूँ चौदहराजु प्रमान लोय॥७५
इहविधि ये कर्म करंत जोर। नहिं जान देत शिववधू ओर ॥
एतेपै निर्बल कहे बखान । मनु जरी जेवरीकी समान॥७६
तोउ समय समयमें आय आय। चेतन परदेशन थित बधाय ॥
यह एक समयमें करत त्याग । थिर होन देत नहिं दुतिय लाग॥
तऊ सुभट पचासी लगि रहंत। निजनिजथानक निजबल करंत॥
चेतन परदेश न घात होय । तातैं जगपूज्य जिनेश होय ॥७८॥

दोहा.

चेतन राय सयोगपुर, इहविध विलसहि राज ॥
अब चहुँ कर्मन हरनको, ठानहि एक इलाज ॥२७९॥

(१) तेरहवें गुणस्थानमें.

श्री सयोगपुर देशमें, चेतन करि परवेश ॥
लाग्यो हरण सुकर्मको, तजिके जोगकलेश ॥ २८० ॥
तव सुवेदनी कर्मने, दीनों रस निज आय ॥
हुकुम एक भई प्रगट, जानहि श्रीजिनराय ॥ २८१ ॥
हम पयानो जगतंत, कीनो लघुथितिमाहि ॥
हरिके चारहि कर्मको, सूधे शिवपुर जाहि ॥ २८२ ॥
तहँ अनत सुख शास्वते, विलसहिं चेतनराय ॥
निराकार निर्मल भयो, त्रिभुवन मुकुट कहाय ॥२८३॥

चौपई

अनिचल धाम वसे शिव भूप। अष्टगुणातम सिद्ध स्वरूप ॥
चरमदेह परमित परदेश। किंचित ऊनो थित जिनभेश ॥
पुरषाकार निरजन नाम । काल अनतहि ध्रुव विश्राम ॥
भव कदाच न कवहू होय। सुख अनत विलसे नित सोय॥
लोकालोक प्रगट सव वेद । षट द्रव्य गुण पर्याय सुभेद ॥
ज्ञेयाकार सकल प्रतिभास। सहजहि स्वच्छ ज्ञानजिहँ पास ॥
षट्गुणी हानि वृद्धि परनमें। चेतन शुद्ध स्वभावहि रमे ॥
उत्पत व्यय ध्रुव लक्षण जास। इहविधि विते सर्व शिवरास८७॥
जगत जीत जिहि विरद प्रमान। पायो शिवगढ रतननिधान ॥
गुण अनत कहिये कत नाम। इहविध तिष्ठहि आतमराम८८॥
जिनप्रतिमा जगमें जहँ होय। सिद्ध निसानी देखहु सोय ॥
सिद्ध समान निहारहु आप। जातें मिटहि सकल संताप८९॥
निश्चय दृष्टि देख घटमाहि । सिद्ध र तोमहि अन्तर नाहिं॥
ये सव कर्म होय जड अग। तू 'भैया' चेतन सर्वंग ॥९०॥

ज्ञान दरश चारित भंडार । तू शिवनायक तू शिवसार ॥
तू सब कर्मजीत शिव होय । तेरी महिमा वरनें कोय॥२९१॥

दोहा.

गुण अनंत या हंसके, किंहविधि कहें वखान ॥
थोरेमें कछु वरनये, 'भविक' लेहु पहिचान ॥२९२॥
यह जिनवानी उदधिसम, कविमति अंजुलि मात्र ॥
तेती ही कछु संग्रही, जेतो हो निज पात्र ॥ २९३ ॥
जिनवानी जिहँ जिय लखी, आनी निजघटमाहिं ॥
तिहँ प्रानी शिवसुख लह्यो, यामें धोखो नाहिं ॥ २९४ ॥
चेतन अरु यह कर्मको, कह्यो चरित्र प्रकाश ॥
सुनत परम सुख पाइये, कहै भगवतीदास ॥ २९५ ॥
सत्रहसौ छत्तीसकी, जेष्ठ सप्तमी आदि ॥
श्रीगुरुवार सुहावनो, रचना कही अनादि ॥ २९६ ॥

इति चेतनकर्मचरित्र समाप्त ।

अथ अक्षरबत्तीसिका लिख्यते ॥

दोहा.

गुण अपार ओंकारके, पार न पावै कोय ॥
सो सब अक्षर आदि ध्रुव, नमैं ताहि सिधि होय ॥ १ ॥

चौपाई.

कक्का कहै करन[1] वश कीजे । कनक कामिनी दृष्टि न दीजे ॥
करिके ध्यान निरंजन[2] गहिये । केवलपदइहविधिसों लहिये ॥२॥

(१) इन्द्रियोंको ।

(२) कर्मरहित आतमस्वरूपको ।

खख्खा कहै खबर सुनि जीवा । खबरदार है रहो सदीवा ॥
खोटे फंद रचे अरिजाला । छिन इक जिनभूलहु वहख्याला ३

गग्गा कहै ज्ञान अरु ध्याना । गहिके थिर हूजे भगवाना ॥
गुण अनंत प्रगटहिं ततकाला । गरिके जाहि मिथ्यातम जाला॥४॥

घग्घा कहै स्वघर पहिचाना । घने दिवस भये फिरत अजानों॥
घर अपने आवो गुणवंता । घने कर्मको ज्यों है अंता॥ ५॥

नन्ना कहै नैनसों लखिये । नयनिहचै व्यवहार परखिये ॥
निजके गुण निजमें गहि लीजे । निरविकल्प आतमरस पीजे ॥६॥

चच्चा कहै चरचि गुण गहिये । चिन्मूरति शिवसम उर लहिये ॥
चंचल मन थिर करधरि ध्याना । सीखसुगुरुसुन चेतन स्याना ७

छच्छा कहै छांडि जगजाला । छहों काय जीवनप्रतिपाला ॥
छांड अज्ञान भावको संगा । छकि अपने गुण लखि सर्वंगा ॥८॥

चौपाई १५ मात्रा

जज्जा कहै मिथ्यामति जीत । जैनधरमकी गहु परतीत ॥
जिहिसों जीव लगै निजकाज । जगतउलधि होय शिवराज॥९॥

झज्झा कहै झूठ पर वीर[1] । झूटे चेतन साहस धीर ॥
झूठो है यह करम शरीर । झालि रहे मृगतृष्णानीर ॥१०॥

नन्ना कहै निरंजन नैन । निश्चै शुद्ध विराजत ऐन ॥
निज तजकें परम नहिं जाय । निरावरण वेदहु जिनराय॥११॥

टट्टा कहै टेव निज गहो । टिककें थिरअनुभव पद लहो ॥
टिकन न दीजे अरिके भाव । टुकटुकसुखको यही उपाव१२॥

चौपाई १६ मात्रा

ठठ्ठा कहै आठ ठग पाये । ठगत ठगत अबके कर आये ॥
ठगको त्याग जलांजलि दीजे । ठाकुर हैके तब सुखलीजे॥१३॥

---

१ जीते ऐसा भी पाठ है

डड्डा कहै डंक विष जैसो। डसै भुजंग मोहविष तैसो॥
डारयो विष गुरु मंत्र सुनायो। डर सव त्याग मान समुझायो १४
ढड्ढा कहै ढील नहिं कीजे। ढूंढ ढूंढ़ चेतन गुण लीजे॥
ढिग तेरे है ज्ञान अनंता। ढकै मिथ्यात्व ताहि करि अंता १५

दोहा.

नन्ना अक्षर जे लखो, तेई अक्षर नैन॥
जे अक्षर देखै नहीं, तेई नैन अनैन॥ १६॥

चौपाई १५ मात्रा.

तत्ता कहै तत्त्व निज काज। ताको गहे होय शिवराज॥
ताको अनुभौ कीजे हंस। तावेदतहै तिमिर विध्वंस॥१७॥
थत्था कहै इन्द्रिनको भूप। थंभन मन कीजे चिद्रूप॥
थाकहिं सकल कर्मके संग। थिरतासुख तहँ होय अभंग॥१८॥
दद्दा कहै परगुणको दान। दीने थिरता लहो निधान॥
दया वहै सुदया जहँ होय। दया शिरोमणि कहिये सोय १९॥
धद्धा कहै धरमको ध्यान। धरि चेतन! चेतनगुण ज्ञान॥
धवल परमपद प्रापति होय। ध्रुवज्यों अटलटलै नहि सोय २०॥
नन्ना नव तत्त्वनसों भिन्न। नितप्रति रहै ज्ञानके चिन्न॥
निशदिन ताके गुण अवधारि। निर्मल होय करमअघटारि॥२१॥
पप्पा कहै परमपद इष्ट। परख गहो चेतन निज दिष्ट॥
प्रतिभासहि सव लोकालोक। पूरण होय सकल सुख थोक॥२२॥
फप्फा कहै फिरहु कित हंस। फिर फिर मिलै न नरभव वंस॥
फंद सकल अरिके चकचूरि। फोरि शकति निज आनंद पूरि २३
वव्वा कहै ब्रह्म सुनि वीर। वर विचित्र तुम परम गँभीर॥

बोध बीज लहिये अभिराम । विधिसों कीजे आतमकाम॥२४॥
भब्भा कहे भरमके सग । भूलि रहे चेतन सर्वग ॥
भार अज्ञाननको कर दूर । भेदज्ञानतें परदल चूर ॥ २५ ॥
मम्मा कहै मोहकी चाल । मेटि सकल यह परजजाल ॥
मानहु सदा जिनेश्वरवैन । मीठे मनहु सुधात ऐन ॥ २६ ॥
जज्जा कहै जैनवृष गहो । ज्यो चेतन पचमि गति लहो ॥
जानहु सकल आप परभेद । जिहँजानें हुँ कर्म निखेद ॥ २७ ॥
ररी कहै राम सुनि वैन । रमि अपने गुन तज परसैन ॥
रिद्ध सिद्ध प्रगटहि ततकाल । रतन तीन लख होहु निहाल ॥२८॥
लल्ला कहै लखहु निजरूप । लोकअग्र सम ब्रह्मस्वरूप ॥
लीन होहु वह पद अनधारि । लोभकरन परतीत निवारि ॥२९॥

सोरठा

वव्वा बोले वैन, सुनो सुनोरे निपुण नर ॥
कहा करत भव सैन, ऐसो नरभव पाय के ॥ ३० ॥

दोहा

शश्शा शिक्षा देत है, सुन हो चेतन राम ॥
सकल परिग्रह त्यागिये, सारो आतम काम ॥ ३१ ॥
खक्खा खोटी देह यह, खिणक माहि खिर जाय ॥
खरी सुआतम सपदा, खिर न थिर दरसाय ॥ ३२ ॥
सस्सा सजि अपने दलहि, शिवपथ करहु विहार ॥
होय सकल सुख सास्वतं, सत्यमेव निरधार ॥ ३३ ॥
हहा कहै हित सीख यह, हस चन्यों है दाव ॥
हरिलै छिनमें कर्मको, होय बैठि शिवराव ॥ ३४ ॥

क्षक्षा क्षायक[1]पंथ चढि, क्षय कीजे सब कर्म ॥
क्षण इकमें वसिये तहां, क्षेत्र सिद्धि सुख धर्म ॥ ३५ ॥
यह अक्षर बत्तीसिका, रची भगवती दास ॥
बाल ख्याल कीनो कछू, लहि आतमपरकाश ॥ ३६ ॥

इति अक्षर वत्तीसिका.

अथ श्रीजिनपूजाष्टकं लिख्यते ॥

दोहा.

जल चंदन अरु सुमन लै, अक्षत शुचि नैवेद ॥
दीप धूप फल अर्घ विधि, जिनपूजा वसुभेद ॥ १ ॥

जलपूजा—कवित्त.

नीर क्षीरसागरको निर्मल पवित्र अति, सुंदर सुवास भरयो- सुरपैं अनाइये । गंगकी तरंगनके स्वच्छ सुमनोज्ञ जल, कंचन कलश वेग भरकें मगाइये ॥ और हू विशुद्ध अंवु आनिये उछा- हसेती, जानिये विवेक जिन चरन चढाइये । भौदुख समुद्रजल अंजुलिको दीजे इहां, तीन लोक नाथकी हजूर ठहराइये ॥ २ ॥

चंदन पूजा.

परम सुशीतल सुवास भरपूर भरयो, अतिही पवित्र सब दूषन दहतु है । महावनराजनके वृक्षन सुगंध करै, संगतिके गुण यह विरद वहतु है ॥ बावन जुचंदन सुपावन करन जग, चढै जिनचर्ण गुण ताहीतें लहतु है । मोह दुखदाहके निवारिवेको महा हिम, चंदनतैं पूजौं जिन चित्त यों कहतु है ॥ ३ ॥

अक्षतपूजा.

शशिकीसी किर्ण कैधों रूपाचलवर्ण कैधों, मेरुतट किर्ण

(१) क्षपकश्रेणी मांड.

कैधों फटिकप्रमाने हैं ॥ दूधकेसे फैन केधों चित्तामणि रेणु कैधों, मुक्ताफल ऐन केधों, हीरा हेरि आने है ॥ ऐसे अति उज्ज्वल है तदुल पवित्र पुज, पूजत जिनेश पाद पातक पराने हैं । अच्छै गुण प्रापति प्रकाश तेज पुज होय, अच्छै जिन देखे अच्छ इच्छते अघाने हैं ॥ ४ ॥

पुष्पपूजा

जगतके जीव जिन्हें जीतके गुमानी भयो, ऐसो कामदेव एक जोधा जो कहायो है । ताके शर जानियत फलनिके वृंद वहु, केतकी कमल कुद केवरा सुहायो है ॥ मालती सुगध चारु वेलिकी अनेक जाति, चपक गुलाव जिनचरण चढायो है । तेरी ही शरण जिन जोर न वसाय याको, सुमनसों पूजे तोहि मोहि ऐसो भायो है ॥ ५ ॥

नैवेद्यपुजा

परम पुनीत जान मेवनके पुज आन, तिन्हें पुनि पहिचान जिनयोग्य जानिये । अन्न ओ विशुद्ध तोय ताको पकवान होय, कहिये नैवेद्य सोई शुद्ध देख आनिये ॥ पूजत जिनेन्द्रपाय पातक-पराने जाय, मोक्षलच्छि ठहराय सत्य यों वखानिये । क्षुधाको न दोष होय ज्ञानतनपोष होय, परम सतोष होय ऐसी विधि ठानिये ॥ ६ ॥

दीपकपूजा

दीपक अनाये चहु गतिमें न आवे कहू, वर्तिका वनाये कर्म-वर्ति न वनत है । घृतकी सनिग्घतासों मोहकी सनिग्ध जाय, ज्योतिके जगाये जगाजोतिमें सनत है ॥ आरती उतारतें आरत

सब जाय टर, पांय ढिग धरे पाप पंकति हनत है। वीतराग देव जूकी सेव कीजे दीपकसों, दीपत प्रताप शिवगामी यों भनत है॥७॥

धूपपूजा.

परम पवित्र हेम आनिये अधिक प्रेम, जाति धूपदान जिमि शुद्ध निपजाइकैं। वह्नि जे विशुद्ध बनी तेज पुंज महाघनी, मानो धरी रत्न कनी ऐसी छवि पाइकैं॥ तामें कृष्णागरुकी जुकनिकाहू खेव कीजे, वहै कर्मकाठनिके पुंजगहि ताइकैं। पूजिये जिनेन्द्र पांय धूपके विधान सेती, तीनलोकमाहिं जो सुवास वास छायकैं॥ ८॥

फलपूजा.

श्रीफल सुपारी सेव दाड़िम बदाम नेव, सीताफल संगतरा शुद्धसदा फल है। विही नासपाती ओ बिजोरा आम अम्रतसे, नारँगी जँभीरी कर्ण फल जे कमल है॥ ऐसे फल शुद्ध आनि पूजिये जिनंद जान, तिहूँ लोकमधि महा सुकृतको थल है। फल सेती पूजे शुद्ध मोक्षफल प्राप्ति होय, द्रव्य भाव सेये सुखसंपति अचल है॥ ९ ॥

अर्घविधिपूजा.

जल सुविशुद्ध आन चंदन पवित्र जान, सुमन सुगंध ठान. अक्षत अनूप है। निरखि नैवेद्यके विशेष भेद जान सबै, दीपक सँवारि शुद्ध और गंध धूप है॥ फल ले विशेष भाय पूजिये जिनंद पाय, वसु भेद ठहराय अरथ स्वरूप है। कमल कलंक पंक हरिके भयो अटंक, सेवक जिनंद 'भैया' होत शिव भूप है॥१०

दोहा.

शुचि करकें निज अंगको, पूजहु श्रीजिन पाय॥
दर्वित भावतविधि सहित, करहु भक्ति मन लाय॥ ११॥

जिन पूजाके भेद बहु, यहविधि अष्टप्रकार ॥
प्रतिपूजा जल धारसों, दीजे अर्घ सुधार ॥ १२ ॥

इति श्रीजिनपूजाष्टक

अथ फुटकर कविता मात्रिक कवित्त

प्रथम अशोक फूलकी वर्षा, वानी खिरहि परम सुख कार ।
चामर छत्र सिहासन शोभित, भामडलद्युति दिपै अपार ॥
दुदुभि नाद बजत आकाशहि, तीन भवनमें महिमा सार ।
समवशरण जिन देव सेवको, ये उतकृष्ट अष्टप्रतिहार ॥ १३ ॥

सवैया सुन्दरी

काहेको देशदिशातर धावत, काहे रिझावत इद नरिद ।
काहेको देवि औ देव मनावत, काहेको शीस नवावत चद ॥
काहेको सूरजसो कर जोरत, काहे निहोरत मूढमुनिंद ।
काहेको शोच करै दिनरैन तू, सेवत क्यों नहि पार्श्वजिनद॥१४॥

वीतरागकी स्तुति छप्पय

देव एक जिनचद नाव, त्रिभुवन जस जंपै ।
देव एक जिनचद, दरश जिहँ पातक कंपै ॥
देव एक जिनचद, सर्व जीवन सुखदायक ।
देव एक जिनचद, प्रगट कहिये शिवनायक ॥
देव एक त्रिभुवन मुकुट, तास चरण नित वदिये ॥
गुण अनत प्रगटहि तुरत, रिद्धिवृद्धि चिरनदिये ॥ १५ ॥

कवित्त

आतमा अनूपम है दीसै राग द्वेष विना, देखो भविजीवो ! तुम आपमें निहारकें । कर्मको न अश कोऊ भर्मको न वश को-

---

(१) पाराडीतपम्वा

श्रीपद्मप्रभजिनस्तुति.

पदमप्रभ धरराजानंदन, मात सुसीमा जगतजगीस ।
कोसंवी नगरी जिन जन्मे, इन्द्रादिक प्रणमहि निशदीस ॥
लच्छन कमल विराजै प्रभुकै, शोभत तहँ अतिशय चौतीस।
चरणकमल प्रभुके नित वंदै, भव्यत्रिकाल नाय निज शीस ॥६॥

श्रीसुपार्श्वजिनस्तुति.

श्री सुपास जिन आश जु पूरै, सेवहु नित भविजन चरनं ।
पयठराजा सीव[1] सुलच्छन, पोहमिकुश प्रभु अवतरनं ॥
केवल वयन देशना देते, भविजनमन अम्रत झरनं ।
नगर बनारसि नित जन वंदै, भव्य जीव सब तुम शरनं॥७॥

श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तुति.

चन्द्रप्रभ चंदेरी उपजे, मंगला मात पिता महसेन[2] ।
शशिलच्छन सेवै चरनादिक, समकित शुद्धदेत तिहँ ऐन ॥
लोकालोक प्रगट घट अंतर, वानि खिरै अम्रत मुख जैन ।
ताके चरण भव्य नितवंदित, अविचलरिद्ध देत प्रभु चैन ॥८॥

श्रीसुविधिजिनस्तुति.

सेवहु सुविधि नाथ तीर्थंकर, जसु सुमरे सुखसंपति होय ।
काकंदी नगरी जिन उपजे, मगर लंछ प्रभुके तन जोय ॥
रामा मात जगत सब जाने, अरिकुल व्याप सकै नहिं कोय ।
अवनीपति सुग्रीव कहावत, ताके सुत वंदत तिहुं लोय ॥ ९॥

श्रीशीतलजिनस्तुति—कवित्त.

कंचन वरन तन रंचन डिगत मन, तिहुंलोक नाथ जिन इन्द्रमुख भासई। नंदाजूकी कूख धन दृढरथ राजा तन, अष्टकुल

---

(१) सेही। (२) 'जितसेन' ऐसा भी पाठ है।

मदहन, ज्ञानको प्रकाशई ॥ लच्छन श्रीवृच्छपाव शीतल श्री नाथ नाव, भद्दल जिनंद गाव रवि ज्यों उजासई । देशना सुदेह सार होंहि तहॉ जैजैकार, भव्यलोक पावे पार मिथ्याको वि-नाशई ॥ १० ॥

श्रीश्रेयासजिनस्तुतिमात्रिक कवित्त

श्रीपुर नगर जगत सव जानैं, विष्नराय विसनाके नद ।
समवशरनमधि जिनवर शोभत, मोहत है नृपके कुलवृद ॥
लच्छन खग सेवे चरणादिक, तीर्थकर श्रेयास जिनद ।
तिनके चरणन चित्तलायकें, वदत हैं नित इदनरिंद ॥ ११ ॥

श्रीवासुपूज्यजिनस्तुति

श्रीवासुपूज्य चपा नगरी पति, महिषी लछ मही सव जान ।
वासुपूज राजाकुल मडन, जायासुत सब जगत वखानैं ॥
सुरपति आय सीस नित नावे, प्रभुसेवा निजमनम आनैं ।
सम्यकदृष्टि नितप्रति सेवहिं, जिनके वचन अखडित मानैं ॥१२

श्रीविमलजिनस्तुति–छप्पय

विमलनाथ इकदेव, सिद्धसम आप विराजै ।
त्रिभुवनमाहि जिनद, जासु धुनि अवरगाजै ॥
कपिलपुर जिन जन्म, शुक्र लछन महि माने ।
सुरपति सेवहि पाय, जगत्रयमाझ वखानैं ॥
कृतवर्म भूप स्यामाजननि, केवलज्ञान दिवाकरन ।
तस चरन कमल वदत 'भविक' जयजिनवर तारनतरन ॥१३॥

श्रीअनतजिनस्तुति–मात्रिक कवित्त

अनत नाथ सीचाना लछन, सुजसा मात कहैं सब कोय ।

पिता जास श्रीसैन नरेश्वर, नगर अजोध्या जन्मैं सोय ॥
गुण अनंत वलरूप विराजै, सिद्ध भये अरिके कुल खोय ।
भावसहित भविप्रानी वंदत, हे प्रभु शिवपद हमको होय ॥१४॥

श्रीधर्मजिनस्तुति.

लच्छन वज्र रतनपुर उपजे, धर्मनाथ तीर्थंकर धीर ।
भानुमहीपतिके कुलमंडन, सुवृता मात वडे वलवीर ॥
समवशरनमें देशना देते, प्रभुधुनि जिम सागर गंभीर ।
चरन सदा भवि प्रानी वंदत, जैजै जिनवर चरमशरीर ॥ १५ ॥

श्रीशान्तिजिनस्तुति–सिंहावलोकन छप्पय.

जिनवर ताराचंद, चंदतारा नित वंदै ।
वंदै सुरनर कोटि कोटि, सुरवृंद अनंदै ॥
आनँद मगन जु आप, आप हस्तिनपुर आये ।
आये शांति जिनदेव, देव सवही सुख पाये ॥
पाये सुमात ऐरारतन, तन कंचन विश्वसेन गिन ।
गिन सु कोष गुनको वन्यो, वन्यो सुतारन तरन जिन॥१६॥

श्रीकुंथुजिनस्तुति. मात्रिक कवित्त.

पदमासन भगवंत विराजहिं, केवल वयन देशना देहिं ।
गजपुर नगर सूरसिंह भूपति, ताके नंद अभयपद देहिं ॥
कुंथुनाथ तीर्थंकर जगमें, सव प्राननिको आनंद देहिं ।
जस श्रीवत्सक लंछन सो है, भव्य त्रिकालहि वंदन देहि ॥१७॥

श्रीअरःजिनस्तुति.

नंद्यावर्त्त सुलच्छन सोहै, सुरपति सेव करै नित आय ।
संघ चतुर्विध देशना सुनते, वैरभाव नहिं रहै सुभाय ॥

अर्जुनमात मही सब जाने, पिता जासु हैदक्षिण राय ।
श्रीअरनाथ नगर गजपुरवर, वदें भव्य जिनेश्वर पाय ॥ १८ ॥

श्रीमल्लिजिनस्तुति

मल्लिनाथ मिथुलानगरीपति, अद्भुत रूप जिनेन्द्र विराजै ।
कुंभराय परभावति जननी, लच्छन कलश चरण सो छाजै ॥
सुरपति आय शीश नित नावें, कंचन कमल धरें प्रभु काजे ।
समोशरण गह गहै जिनेसुर, वानी सुन मिथ्यातम भाजै ॥ १९ ॥

श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तुति-सिंहावलोकन छप्पय

मुनिसुव्रत जिन नाम, नाम त्रिभुवन जस जंपै ।
जंपै सुरनर जाप, जाप जपि पाप जु कंपै ॥
कंपै अरिकुल रीति, रीति जिन नीति प्रकासै ।
परकासै घट सुमति, सुमति राजग्रह वासै ॥
वासै जिनवर सिद्ध चित, चितवत कूरम चरण तन ।
तन पदमावति पूजजिन, जिनसेवक वंदे सुमुनि ॥ २० ॥

श्रीनमिजिनस्तुति-मात्रिक कवित्त

नम्यनाथ नीलोत्पललच्छन, मिथुलानाथ नगर परसिद्ध ।
विजय राय परभावति जननी, सुमिरे पावै अविचलरिद्ध ।
केवल ज्ञान जिनेश्वर वदत, होत सदा समकितकी वृद्धि ।
भावसहित जो जिनको पूजे, तिन घरहोय सदा नवनिद्धि ॥ २१ ॥

श्रीनेमिजिनस्तुति कवित्त

नेमिनाथ नाथ नेमि काहसों न राखै प्रेम, मनवच सदा एम रहै दशा जोगकी । समुद्रके सुत धीर सिंधुज्यों गभीर वीर, सख रहै चर्ण तीर लिप्सा नाहीं भोगकी ॥ सौरिपुर शिवामाय जग जिननाथ राय नीलरत्न जासु काय, लख बात लोगकी । अन-

त बलधारी है सो सदा ब्रह्मचारी है, ऐसे जिन वंदत रहै न दशा रोगकी ॥ २२ ॥

श्रीपार्श्वनाथजिनस्तुति छप्पय.

अम्रत जिनमुख झरै, द्वार सुरदुंदुभि बाजै ।
सेवहिं सुरनर इंद्र, नाग फन शीश विराजै ॥
नगर बनारसि नाम, तात अससेन कहिज्जे ।
वामा मात विख्यात, जगत जिन पूजा किज्जे ॥
सुअनंत ज्ञान बल रूपधर, आप जगत तर सिद्धहुव ।
वंदै सुभव्य नर लोकके, जय जय पास जिनंद तुव ॥२३॥

श्रीवीरजिनस्तुति.

जिनवर श्रीमहावीर, इन्द्र सेवा नित सारहिं ।
सुरनर किन्नर देव तेहु, मिथ्या मत टारहिं ॥
क्षत्रिय कुल जिन जन्म, राय सिद्धारथ नंदन ।
त्रिशला उर अवतार, सिंह पद पाप निकंदन ॥
विधिचार संघ सुन देशना, केवल वचन विशाल अति ।
जिनप्रभु वंदत सम भावधर, जय जय दीनदयाल मति ॥ २४ ॥

दोहा.

जिन चौवीसी जगतमें, कलपवृक्षसम मान ॥
जे नर पढैं विवेकसों, ते पावहिं शिवथान ॥ २५ ॥

इति चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः ।

अथ विदेहक्षेत्रस्थ वर्तमानजिनविंशतिका.

श्रीसीमंधरजिनस्तुति—छप्पय.

सीमंधर जिनदेव, नगर पुंडरिगिर सोहै ।
वंदहि सुरनर इन्द्र, देखि त्रिभुवन मन मोहै ॥

वृष लच्छन प्रभु चरन सरन, सवहीको राखहि ।
तरहु तरहु ससार सत्य, सत यहै जु भाखहि ॥
श्रेयास रायकुल उद्धरन, वर्त्तमान जगदीश जिन ॥
समभावसहित भविजननमहि, चरण चार सदेह विन ॥ १ ॥

श्रीयुगमधरजिनस्तुति–कवित्त

केवल कलप वृच्छ पूरत है मन इच्छ, प्रतच्छ जिनद जुगमधर जुहारिये । दुदुभि सुद्वार वाजे, सुनत मिथ्यात्व भाजे, विराजै जगमें जिनकीरति निहारिये ॥ तिहु लोक ध्यान धरै नामलिये पापहरै, करै सुर किन्नर तिहारी मनुहारिये । भूपति सुदृढराय विजया सु तेरी माय, पाय गज लच्छन जिनेशके निहारिये ॥ २ ॥

श्रीवाहुजिनस्तुति सवैया–द्रुमिला

प्रभु वाहु सुग्रीव नरेश पिता, विजया जननी जगम जिनकी ।
मृगचिह्न विराजत जासुधुजा, नगरी है सुसीमा भली जिनकी ॥
शुभकेवल ज्ञान प्रकाश जिनेश्वर, जानतु है सवही जिनकी ।
गनधार कहै भवि जीव सुनो, तिहु लोकमे कीरति है जिनकी ॥ ३ ॥

श्रीसुवाहु जिनस्तुति सवैया

श्रीस्वामि सुवाहु भवोदधि तारन, पार उतारन निस्तार ।
नगर अजोध्या जन्म लियो, जगम जिन कीरति विस्तार ॥
निशढिल पिता सुनदा जननी, मरकटलच्छन तिस तार ।
सुरनरकिन्नर देव विद्याधर, करहि वदना शशि तार ॥ ४ ॥

श्रीसुजातिजिनस्तुति कवित्त

अलिका जु नाम पावै इन्द्रकी पुरी कहावै, पुडरगिरि सरभर नावे जो विख्यात है। सहसकिरनधार तेजत दिपै अपार, धुजापै निरा-

जै अंधकारहू रिझात है॥ देवसेन राजासुत जाकी छवि अदभुत, देवसेना मातु जाकै हरष न मात है। श्रीसुजाति स्वामीको प्रणाम, नित्य भव्य करैं जाके नामलिये कुल पातक विलात है ॥ ५॥

श्रीस्वयंप्रभुजिनस्तुति सवैया. (मात्रिक)

श्रीस्वयंप्रभु शशिलंछन पति, तीनहु लोकके नाथ कहावें।
मित्रभूतभूपतिके नंदन, विजया नगर जिनेश्वर आवें॥
धन्य सुमंगला जिनकी जननी, इन्द्रादिक गुण पार न पावें।
भव्यजीव परणाम करतु है, जिनके चरन सदा चित लावें ॥ ६॥

श्रीऋषभाननजिनस्तुति छप्पय.

ऋषभानन अरहंत, कीर्तिराजाके नंदन।
सुरनरकरहिं प्रणाम, जगतमें जिनको वंदन॥
वीरसेनसुतलशय, सिंहलच्छन जिन सोहै।
नगर सुसीमा जन्म देखि, भविजनमननमोहै॥
अमलान ज्ञान केवलप्रगट, लोकालोक प्रकाशधर।
तस चरनकमल वंदनकरत, पापपहार परांहिं पर॥ ७॥

श्रीअनंतवीर्यजिनस्तुति कवित्त.

श्रीअनंतवीर्यसेव कीजिये अनेक भेव, विद्यमान येही देव मस्तक नवाइये। तात जासु मेघराय मंगला सुकही माय, नगरी अजोध्याके अनेक गुण गाइये॥ ध्वजापै विराजै गज पेखै पाप जाय भज, त्रिकोटनकी महिमा देखे न अघाइये। तिहूं लोकमध्य ईस अतिशै चौतीस लसै, ऐसे जगदीश 'भैया' भलीभांति-ध्याइये॥ ८॥

श्रीसूरप्रभजिनस्तुति—सिंहावलोकन छप्पय.

सूरप्रभ अरहंत, हंत करमादिक कीन्हें।
कीन्हें निज सम जीव, जीव वहु तार सु दीन्हें॥

दीन्हें रनिपद वास, वास विजयामहि जाको ।
जाको तात सुनाग, नाग भय माने ताको ॥
ताको अनतवलज्ञानधर, धर भद्रा अवतार जी ।
जिहँभावधारि भनि सेवही, वहि नरिंद लहि मुकतिश्री॥९॥

श्रीविशालजिनस्तुति सवैया

नाथ विशाल तात विजयापति, निजयावति जननी जिनकी ।
धन्य सु देश जहा जिन उपजे, पुडरगिरि नगरी तिनकी ॥
लच्छन इदु वसहि प्रभु पायें, गिनै तहा कौन सुरगनकी ।
मुनिराज कहै भविजीव तरै, सो है महिमा महिमें इनकी ॥ १० ॥

श्रीवज्रधरजिनस्तुति कवित्त

अहो प्रभु पदमरथ राजाके नदनसु, तेरोई सुजस तिहूपुर गाइ यतु है। केई तव ध्यान धरै, केई तव जापकरै, केई चर्णशर्णतरै, जीव-पाइयतु है । नगर सुसीमा सिधि ध्वजापैं विराजै शख, मातुसर-स्वतिके आनद वधायतु है। वज्रधरनाथ साथ शिवपुरी करो कहि, तुम दास निशदीस शीस नाइयतु है ॥ ११ ॥

श्रीचद्राननजिनस्तुति छप्पय

चन्द्राननजिनदेव, सेव सुर करहि जासु नित ।
पदमासन भगवत, डिगत नहि एक समयचित ॥
पुडरिनगरी जनम, मातु पदमावति जाये ।
वृषलच्छन प्रभुचरण, भविक आनद जु पाये ॥
जस धर्मचक्र आगें चलत, ईतिभीति नासत सव ।
सुत वाल्मीक विचरत जहँ, तहँतहँ होत सुभिक्ष तव ॥१२॥

श्रीचन्द्रबाहुजिनस्तुति मानिककवित्त

लक्षण पद्मरेणुका जननी , नगर विनीता जिनको गाव ।

तीन लोकमें कीरति जिनकी, चन्द्रबाहु जिन तिनको नांव ॥
देवानंद भूमिपतिके सुत, निशिवासर वंदहिं सुर पांव ।
भरत क्षेत्रतें करहि बंदना, ते भविजन पावहिं शिवठांव ॥ १३॥

श्रीभुजंगमजिनस्तुति सवैया.

महिमा मात महावलराजा, लच्छन चंद धुजा पर नीको ।
विजय नग्र भुजंगम जिनवर, नाव भलो जगमें जिनहीको ॥
गणधर कहै सुनो भविलोको, जाप जपो सवही जिनजीको ।
जास प्रसाद लहै शिवमारग, वेग मिलै निजस्वाद अमीको॥१४॥

श्रीईश्वरजिनस्तुति मात्रिक कवित्त.

ईश्वरदेव भली यह महिमा, करहि मूल मिथ्यातमनाश ।
जस ज्वाला जननी जगकहिये, मंगलसैन पिता पुनि पास ॥
नगरी जास सुसीमा भनिये, दिनपति चर्ण रहै नित तास ।
तिनको भावसहित नित बंदै, एक चित्त निहचै तुम दास ॥१५॥

श्रीनेमप्रभुजिनस्तुति कवित्त.

लच्छन वृषभ पाँय पिता जास वीरराय, सेना पुनि जिनमाय सुंदर सुहावनी । नगरी अजोध्या भली नवनिधि आवै चली, इन्द्रपुरी पॉय तली लोकमें कहावनी ॥ नेमि प्रभु नाथ वानी अम्रत समान मानी, तिहूं लोक मध्यजानी दुःखको बहावनी। भविजीव पांयलागै सेवा तुम नित मागै, अवै सिद्धि देहु आगै सुखको लहावनी ॥१६॥

श्रीवीरसेनजिनस्तुति सवैया.

महा वलवंत वडे भगवंत, सवै जिय जंत सुतारनको ।
पिता भुवपाल भलो तिनभाल, लह्यो निजलाल उधारनको ॥
पुंडरी सुवासहि रावन पास, कहै तुम दास उचारनको
वीरसेन राय भली भानुमाय, तारोप्रभु आय विचारनको॥१७॥

श्रीमहाभद्रजिनस्तुति सवैया

महाभद्र स्वामी तुम नाम लिये, सीझै सब काम विचारनके।
पिता देवराज उमादे माय, भली विजया निसतारनके ॥
शशि सैन आय लगै, तुम पाय भले जिनराय उधारनके ।
किरपा करि नाथ गहो हम हाथ, मिलै जिनसाथ तिहारनके॥१८

श्रीदेवजसजिनस्तुति छप्पय

जिन श्रीदेवजस स्वामी, पिताश्रवभूत भनिर्ज्जे ।
लच्छन स्वस्तिक पाव, नाव तिहु लोक गुणिर्ज्जे ॥
पावहि भविजन पार, मात गगा सुखधारहि ।
नगर सुसीमा जन्म आय, मिथ्यामति टारहि ॥
प्रभु देहिं धरम उपदेश नित, सदा वैन अम्रत झरहिं ।
तिन चरणकमल वदन करत, पापपुज पकति हरहि ॥१९॥

श्रीअजितवीर्यजिनस्तुति छप्पय.

वर्तमानजिनदेव पद्म, लच्छन तिन छाजै ।
अजितवीर्य अरहत, जगतमें आप विराजै ॥
पद्मासन भगवत, ध्यान इक निश्चय धारहि ।
आवहि सुरनरवृद, तिन्हैं भवसागर तारहि ॥
नगर अजोध्याजन्मजिन, मात कननिका उरधरन ।
तस चरन कमल वदत'भविक' जै जै जिन आनँद करन॥२०॥

दोहा

वर्त्तमान वीसी करी, जिनवर वदन काज ॥
जे नर पढै विवेकसों, ते पावहिं शिवराज ॥ २१॥

समुच्चयवर्त्तमानवीसतीर्थंकरकवित्त—

सीमंधर जुगमंद्र बाहु ओ सुबाहु संजात स्वयंप्रभु नाव तिहुं पन ध्याइये। ऋषभानन अनंतवीर्य विशालसूरप्रभ, वज्रधरनाथके चरण चितलाइये॥ चंद्रानन चन्द्रबाहु श्रीभुजंगमईश्वर, नेमिप्रभुवीरसेन विद्यमान पाइये। महाभद्र देवजस अजितवीरज भैया, वर्त्तमानवीसको त्रिकाल सीस नाइये॥ २२॥

इति वर्त्तमानजिनविंशतिका.

अथ परमात्माकी जयमाला लिख्यते।

दोहा.

परम देव परनाम कर, परमसुगुरु आराधि।
परम सुधर्म चितार चित, कहूं माल गुणसाधि॥ १॥

चौपाई.

एकहि ब्रह्म असंखप्रदेश। गुण अनंत चेतनता भेश॥
शक्ति अनंत लसै जिह माहिं। जासम और दूसरो नाहिं॥२॥
दर्शन ज्ञान रूप व्यवहार। निश्चय सिद्ध समान निहार॥
नहि करता नहिं करि है कोय। सदा सर्वदा अविचल सोय॥३॥
लोकालोक ज्ञान जो धरै। कबहुँ न मरण जनम अवतरै॥
सुख अनंत मय जाससुभाव। निरमोही वहु कीने राव॥ ४॥
क्रोध मान माया नहिं पास। सहजै जहाँ लोभको नास॥
गुण थानक मारगना नाहिं। केवल आपु आपुही माहिं॥५॥
परका परस रंच नहिं जहां। शुद्ध सरूप कहावै तहां॥
अविनाशी अविचलअविकार। सो परमातम है निरधार॥६॥

दोहा

यह निश्चय परमातमा, ताको शुद्ध विचार ॥
जामें पर परसै नहीं, 'भैया' ताहि निहार ॥ ७ ॥

इति परमात्माकी जयमाला ।

अथ तीर्थंकरजयमाला ।

दोहा

श्रीजिनदेव प्रणाम कर, परम पुरुष आराध ॥
कहों सुगुण जयमालिका, पच करणरिपु साध ॥१ ॥

पद्धरिछंद

जयजय सु अनत चतुष्टनाथ । जयजय प्रभु मोक्ष प्रसिद्ध साथ ॥ जय जय तुम केवल ज्ञानभास । जय जय केवल दर्शन प्रकाश ॥२॥ जय जय तुम वल जु अनत जोर।जय जय सुख जास न पार ओर॥ जय जय त्रिभुवन पति तुम जिनद । जय जय भवि कुमदनि पूर्णचद ॥ ३ ॥ जय जय तम नाशन प्रगट भान । जय जय जित इद्रिन तू प्रधान ॥ जय जय चारित्र सु यथाख्यात। जय जय अघनिशि नाशन प्रभात ॥ ४ ॥ जय जय तम मोह-निवार वीर । जय जय अरिजीतन परम धीर ॥ जय जय मनमथमर्दन मृगेश । जय जय जम जीतनको रसेश ॥ ५ ॥ जय जय चतुरानन होप्रतक्ष । जय जय जग जीवन सकल रक्ष ॥ जय जय तुम क्रोध कषाय जीत।जय जय तुम मान हर्‍यो अजीत६॥ जय जय तुम मायाहरन सूर । जय जय तुम लोभनिवार मूर ॥ जय जय शत इद्रन वदनीक । जय जय अरि सकल निकद

नीक ॥ ७ ॥ जय जय जिनवर देवाधिदेव । जय जय तिहुंपन भवि करत सेव ॥ जय जय तुम ध्यावहिं भविक जीव । जय जय सुख पावहिं ते सदीव ॥ ८ ॥

घत्ता.

ते निजरसरत्ता तज परसत्ता, तुम सम निज ध्यावहि घटमें ॥
ते शिवगति पावैं वहुर न आवैं, वसै सिंधुसुखके तटमें ॥ ९ ॥

इति तीर्थंकर जयमाला.

अथ श्रीमुनिराज जयमाला ।

दोहा.

परमदेव परनाम कर, सतगुरु करहुं प्रणाम ॥
कहूं सुगुण मुनिराजके, महा लब्धिके धाम ॥ १ ॥

ढाल–मुनीश्वर वंदो मनधर भाव, ए देशी ।

पंच महाव्रत आदरैंजी, समति धरैं पुनि पंच ॥
पंचहु इन्द्रिय जीतकेंजी, रहैं विना परपंच, मुनीश्वर० ॥ २॥
षट आवश्यक नित करैंजी, जीव दया प्रतिपाल ॥
सोवैं पश्चिम रयनमेंजी, शुद्ध भूमि लघुकाल, मुनीश्वर० ॥ ३ ॥
स्नान विलेपन ना करैंजी, नग्न रहै निरधार ॥
कचलोंचैं हित भावसोंजी, एकहि वेर अहार, मुनीश्वर० ॥ ४ ॥
थिर ह्वै लघु भोजन करैंजी, तजैं दंतवन काज ॥
ये पालैं निरदोषसोंजी, सो कहिये ऋषिराज, मुनीश्वर० ॥ ५ ॥
दोष लगे प्रायश्चित करैंजी, धरैं सु आतम ध्यान ॥
सोधै नित परिणामको जी, सो संयम परवान, मुनीश्वर० ॥ ६॥

दोष छियालीस टालकै जी, लेवहिं शुद्ध आहार ॥
श्रावकको कुल जानकैजी, जल अचर्ने तिँहवार, मुनीश्वर०॥७॥
महा तपस्या व्रत करैजी, सहे परीसह घोर ॥
वीस दोय वहु भेदसोजी, काय कसं अतिजोर, मुनीश्वर०॥८॥
निर्मल कर निज आतमाजी, चढैं श्रेणि शुध ध्यान ।
'भैया' ते निहचै सहीजी, पावहि पद निर्वान, मुनीश्वर० ॥९॥

दोहा

यह श्रीमुनिगुणमालिका, जो पहिरे उरमाहि॥
तिनको शिवसपति मिलै, जनममरनभय नाहि ॥ १० ॥

इति मुनिश्वर जयमाला

अथ अहिक्षिति पार्श्वनाथजिनस्तुति

दोहा

अश्वसेन अगज विमल, वामाके कुलचद ॥
तिँह केवल कल्याण भनि, पूजिये पार्श्वजिनद ॥ १ ॥

छद

पूजिये पास जिनद भविजन, नगर श्रीअहि छत्तये ।
जिँह थान प्रभुजू ध्यान धरिये, आत्मरस महँ रत्तये ॥
उपसर्ग कमठ अज्ञान कीन्हों, क्रोधसो अगिनत्तये ।
वहु वाघ सिंह पिशाच व्यतर, गजादिक मदमत्तये ॥ २ ॥
कोऊ रुडमाला पहरि कठहि, अगनि जाल मुकत्तये ।
महाकाल रूप त्रिकाल सूरति, भय दिखावत गत्तये ॥
महि वरप वरपा क्रूर याक्यो, भन समुद्रहि पत्तये ।
पूजिये पास जिनद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये॥ ३॥

धरणीन्द्र औ पद्मावती तहँ, आय जिन सेवंतये ।
सुअनंत बल जुत आप राजत, मेरु ज्यों अचलत्तये ।
करि कर्म चार विनाश ताछिन, लह्यो केवल तत्तये ।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये ॥४॥
शत इंद्र मिल कल्याण पूजा, आय विविध रचत्तये ।
तिहँ काजतैं यह भूमि महिमा, जगतमें प्रगटत्तये ॥
भवि जात्रि आवें जिनहि ध्यावें, निजातम सर्दहत्तये ।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्रीअहिछित्तये ॥५॥

दोहा.

सावधान मन राखिकें, जे जिनगुण गावंत ॥
संपति सुख तिनको सदा, गनत न आवै अंत ॥ ६ ॥
सत्रहसौ इकतीसकी, सुदि दशमी गुरुवार ॥
कार्तिकमास सुहावनो, पूजे पार्श्वकुमार ॥ ७ ॥

इति श्रीअहिक्षितिपार्श्वनाथजिनस्तुति.

अथ शिक्षा छंद.

दोहा.

देह सनेह कहा करै, देह मरन को हेत ॥
उत्तम नरभवपायकें, मूढ अचेतन चेत ॥ १ ॥

मरहठा छंद.

हे मूढ अचेतन, कछुइक चेतो, आखिर जगमें मरना है ।
नरदेही पाई, पूर्व कमाई, तिससों भी फिर टरना है० ॥ टेक ॥ २ ॥
क्यों धर्म विसारो, पापचितारो, इन बातन क्या तरना है ॥
जो भूप कहाये, हुकुम चलाये, तौ भी क्या ले करना है, हे मूढ ॥३॥

धन यौवन आये, रह अरझाये, सो सध्याका वरना है ॥
विषयारस रातो, रहे सुमातो, अतअगनिमें जरना है, हेमूढ० ॥ ४ ॥
कैदिनको जीनो, विषरस पीनो, वहुरि नरकमें परना है ॥
जैसी कछु करनी, तैसी भरनी, बुरे फैलसो डरना है॥ हेमूढ० ॥५॥
छिन छिन तन छीजै, आयु न धीजै, अजुलि जल ज्यों झरनाहै॥
जमकी असवारी, रहैतयारी, तिनसों निशदिन लरना है, हेमूढ०॥६॥
कै भौ फिर आयो, अत न पायो, जन्म जरा दुख भरना है ॥
क्या देख भुलाने, भरम निराने, यह स्वपनेका छरना है, हे मूढ०॥७॥
दुरगतिको परिवो, दुखको भरिवो, काल अनतहु सरना है ॥
परसों हित मानै, मूढ न जाने, यह तन नाहि उवरना है, हेमूढ०॥८॥
मिथ्यामत लीन्हें, आप न चीन्हें, कर्म कलकन हरना है ॥
जिनदेव चितारो, आपु निहारो, जिनसो जीव उधरनाहै, हेमूढ०॥९॥

दोहा

जनम मरनतैं नाथ क्यों, जीव चतुर्गति माहि ॥
पचमि गति पाई नही, जो महिमा निजमाहि ॥ १० ॥
निज स्वभावके प्रगटतें, प्रगट भये सब दर्व ॥
जनम मरन दुख त्यागकैं, जानन लागौ सर्व ॥ ११ ॥
'भैया' महिमा ज्ञानकी, कह कहा लो कोय ॥
कै जानै जिन केवली, के समदृष्टी होय ॥ १२ ॥

इतिशिक्षावली ।

अथ परमार्थपदपंक्ति

१ । राग भैरों

या देहीको शुचि कहा कीजे, जासों धोइये सोईपै छीजै, या

देहीको०॥टेक॥ जो जो धोइये सो सो भरी, देखहु दृष्टि विचारके खरी, या देहीको० ॥ २ ॥ दशों द्वार निशिवासर वहनी, कोटि जतन किये थिर नहिं रहनी, या देहीको० ॥ ३ ॥ तत्त्व यहै आतम रसपीजे, परगुण त्याग जलंजलि दीजे, या देहीको० ॥४॥

२ राग देव गंधार ।

अब मैं छाड्यो पर जंजाल, अब मैं ० टेक ।

लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी, तज्यो ताहि तत्काल अबमैं०॥१॥
आतम रस चाख्यो मैं अदभुत, पायो परमदयाल, अबमैं० ॥२॥
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, सोमरूप सुविशाल, अबमैं०॥३॥

३ । राग विलावल ।

या घटमैं परमात्मा चिन्मूरति भइया ॥
ताहि विलोकि सुदृष्टिसों पंडित परखैया, या घटमें० ॥१॥
ज्ञान स्वरूप सुधामयी, भवसिंधु तरैया ॥
तिहूं लोकमें प्रगट है, जाकी ठकुरैया, या घटमें० ॥ २ ॥
आप तरै तारें परहिं, जैसें जल नइया ॥
केवल शुद्ध स्वभाव है, समुझै समुझैया, या घटमें ॥ ३ ॥
देव वहै गुरु हैं वहै, शिव वहै वसइया ॥
त्रिभुवन मुकुट चहै सदा, चेतौ चितवइया, या घटमें० ॥४॥

४ । पुनः राग विलावल.

नरदेही वहु पुण्यसों, चेतन तैं पाई ॥
ताहि गमावत वावरे, यह कौन वड़ाई' नरदेही०॥ १ ॥
जप तप संयम नेम व्रत, करि लेहुरे भाई ॥
फिर तोको दुर्लभ महा, यह गति ठकुराई, नरदेही० ॥२॥

५। राग रामकली

अरे तै जु यह जन्म गमायोरे, अरे तैं० टेक।

पूरब पुण्य किये कहु अतिही, तात नरभव पायोरे ॥
देव धरम गुरु ग्रथ न परखै, भटकिभटकि भरमायोरे अरे० ॥१॥
फिर तोको मिलिवो यह दुर्लभ, दश दृष्टान्त वतायोरे ॥
जो चेतै तो चेतरे 'भैया' तोको कहि समुझायोरे, अरे० ॥ २ ॥

६। पुन राग रामकली

जीयको मोह महादुखदाई, जीयको० टेक ॥

काल आनादि जीति जिहँ राख्यो, शक्ति अनत छिपाई ॥
क्रम क्रम करकें नरभव पायो, तऊन तजत लराई जीयको०॥१॥
मात तात सुत बन्धव वनिता, अरु परवार बडाई
तिनसों प्रीति करै निशिवासर, जानत सब ठकुराई जीयको० ॥२॥
चहु गति जनममरनके बहुदुख, अरु बहु कष्ट सहाई ॥
सकट सहत तऊ नहि चेतत, भ्रममदिरा अति पाई, जीयको०॥३॥
इह विन तजे परम पद नाहीं, यो जिनदेव वताई ॥
तातै मोह त्याग लै भइया, ज्यो प्रगटे ठकुराई,जीयको० ॥ ४॥

७। राग काफी

जाको मन लागो निजरूपहि, ताहि और क्यों भावे ।
ज्यो अटूट धन लहै रक कहु, और न काहु दिखावै ॥ १ ॥
गुण अनत प्रगटे जिह थानक, तापटतर को आवै ॥
इहिविधि हम सकल सुखसागर, आपुहि आप लखावै ॥ २ ॥

---

(१) मनुष्यभवकी दुर्लभतादिखानेवाले जिनमतमे दश दृष्टान्त प्रसिद्ध हैं उन के द्वारा।

८ । राग सारग.

जगतगुरु कबनिज आतम ध्याऊं जगत० टेक ॥

नग्नदिगंबरमुद्राधरिकैं कब निज आतम ध्याऊं ॥

ऐसी लब्धि होइ कब मोको, हौं वा छिनको पाऊं, जगत ०॥१॥

कब घर त्याग होऊं वनवासी, परम पुरुष लौ लाऊं ॥

रहों अडोल जोड पदमासन, करम कलंक खपाऊं, जगत० ॥२॥

केवल ज्ञान प्रगट कर अपनों, लोकालोक लखाऊं ॥

जन्म जरा दुख देय जलांजलि, हों कब सिद्ध कहाऊँ, जगत० ॥३॥

सुख अनंत विलसों तिहँ थानक, काल अनंत गमाऊँ ॥

"मानसिंह"[1] महिमा निज प्रगटै, वहुर न भवमें आऊं, जगत ० ॥४॥

९ । राग धमाल गौडी.

गौड़ीप्रभु पारस पूजिये हो, मनधर परम सनेह, गौडी० टेक ।

सकल करम भय भंजनो हो, पूरै वंछित आश ।

तास नाम नित लीजिये हो, दिन दिन लीला विलास, गौडी०॥२॥

केवलपद महिमा लखो हो, धरहु सुथिरता ध्यान ॥

ज्ञानमाहिं उर आनिये हो, इहिविधि श्रीभगवान, गौडी० ॥ ३ ॥

और सकल विकलप तजो हो, राखहु प्रभुसों प्रीति ॥

आप सरवर ए करें हो, यहै जिनंदकी रीति, गौडी, ॥ ४ ॥

जाके वदन विलोकते हो, नाशै दूर मिथ्यात ॥

ताहि नमहुं नित भावसों हो, पास जगत विख्यात, गौडी० ॥५॥

१० । पुनः

कहा परदेशीको पतियारो, कहा–टेक० ।

मनमाने तब चलै पंथको, सांज गिनै न सकारो ।

सबै कुटंब छाँड इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो, कहा०॥ १ ॥

---

(१) मानसिंह भैया भगवतीदासजीका परम मित्र था ।

दूर दिसावर चलत आपही, कोऊ न राखन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो, कहा०॥ २॥
धनसों राचि धरमसों भूलत, झूलत मोहमझारो।
इहि विधि काल अनंत गमायो, पायो नहि भवपारो, कहा०॥३॥
साचे सुखसों विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहुरे भइया, आपही आप सभारो, कहा०॥ ४॥

११। पुन

ते गहिले भाई ते गहिले, जगराते अबके पहिले।
आपा पर जिहँ भेद न जान्यो, ते बूडे भवभ्रमवहले, ते गहले॥१॥
धन धन करत फिरत निशिवासर, तिनको जनम गयो अहले।
भ्रममें मगन लगन पुदगलसों, ते नर भवसागर टहले, ते गहले॥२॥
क्रोध मान माया मद माते, विषयनके रस माहि रले।
'भैया' चेत चतुर कछु अबकें, नहि तो नरक निगोद हिले, ते ग०३।

१२। राग केदारो

छाड़िदे अभिमान जियरे छाडिदे० ॥ टेक–
काको तू अरु कौन तेरे, सबही हैं महिमान॥
देख राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान, जियरे० ॥ १॥
जगत देखत तोरि चलबो, तूभी देखत आन॥
घरी पलकी खबर नाहीं, कहा होय विहान, जियरे० ॥ २॥
त्याग क्रोधरु लोभ माया, मोह मदिरापान॥
राग दोषहि टार अन्तर, दूर कर अज्ञान, जियरे० ॥ ३॥
भयो सुरपुर देव कबहू, कबहु नरक निदान।
इम कर्मवश बहु नाच नाचे, भैया आप पिछान, जियरे०॥४॥

---

१ बावले, २ राच

१३। राग सोरठ.

अरे सुन जिनशासनकी बतियाँ, जातें होय परम सुखि छतियां, अरे०टेक। निजपर भेद करहु दिन रतियां, ज्यों प्रगटहिं शिवशकतिअनँतियां, अरे० ॥ १ ॥ सुख अनंत सब होय निकतियां, मिटहि सकल भव भ्रमकी घतियां, अरे० ॥ २ ॥ परम ज्योति प्रगटै परभतियां, 'भैया' निजपद गहु निज मतियां, अरे० ॥ ३ ॥

१४। राग कान्हरो.

देखो मेरी सखीये आज चेतन घर आवै ॥
काल अनादि फिर्‌यो परवशही, अब निज सुधहिं चितावै, दे०॥१॥
जनमजनमके पाप किये जे, ते छिन माहि बहावै ॥
श्रीजिनआज्ञा शिरपर धरतो, परमानंद गुण गावै, देखो० ॥२॥
देत जलांजुलि जगत फिरनको, ऐसी जुगति बनावै ॥
विलसै सुख निज परम अखंडित, भैया सब मनभावै, देखो॥ ३॥

१५। राग केदारो.

कैसें देऊं करमन दोष कैसें० ॥ टेक ॥
मगन है है आप कीने, गहे रागरु दोष ॥
विषयोंके रस आप भूल्यो, पापसों तन पोस, कैसें० ॥ १ ॥
देवधर्म गुरु करी निंदा, मिथ्या मदके जोस ॥
फल उदै भई नरकपदवी, भजोगे कै कोस, कैसें० ॥ २ ॥
किये आपसु बनै भुगते, अब कहा अफसोस ।
दुखित तो बहु काल बीते, लही न सुख जल ओस, कैसें० ॥३॥

क्रोध मानरु लोभ माया, भर्यो तन घट ठोस ॥
चेत चेतन पाय नरभव, मुकति पथ सुघोष, कैसें० ॥ ४ ॥

१६ । राग केदारो

कहो परसों प्रीति कीन्ही, कहा गुण तुम जान ।
चतुर चेतन चितविचारो, कहहुँ पुनि पहिचान ॥ १ ॥
वे अचेतन तुम सुचेतन, देखि दृष्टि विनान ।
परहि त्याग स्वरूप गहिये, यहै वात प्रमान ॥ २॥

१७ । राग, अडानो

रे मन ऐसा है जिनधर्म, रे मन० टेक ॥
जाके दरस सरस सुख उपजत, मिटत सकल भव भर्म ॥
शुद्धस्वरूप सहज गुणसागर, जानत सबको मर्म, रे मन० ॥१॥
ज्ञान दरस चारित कर राजत, परसत नाहीं कर्म ॥
नि.ार्थ ध्यान धरो वा प्रभुको, ज्यों प्रगटै पद पर्म, रे मन० ॥२॥

१८ । दोहा (विहाग)

श्रीजिन चरणाबुज प्रते, वदत भवि धर भाव ।
केवल पद अवलवि निज, करत भगत व्यवसाव ॥ १ ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल में, श्री जिनविव अनूप ॥
तिँह प्रति वदत भविक नित, भावसहित शिवरूप॥ २ ॥

१९ । राग अडानो

भविक तुम वदहु मनधर भाव, जिन प्रतिमा जिनवरसी कहिये, भ०॥
जाके दरस परमपद प्रापति, अरु अनत शिवसुख लहिये, भविक॥१
निज स्वभाव निरमल है निरखत, करम सकल अरि घट दहिये॥
सिद्ध समान प्रगट इह थानक, निरख निरख छवि उर गहिये, भ०२॥

अष्ट कर्म दल भंज प्रगट भई, चिन्मूरति मनु बन रहिये ।
इहि स्वभाव अपनो पद निरखहु, जो अजरामर पद चहिये, भविक०
त्रिभुवन माहिं अकृत्रिम कृत्रिम, वंदन नितप्रति निरवहिये ।
महा पुण्यसंयोग मिलत है, भइया जिन प्रतिमा सरदहिये, भविक०

२० । पुनः

हो चेतन तो मति कौन हरी, चेतन०टेक ॥
कै लै गयो मिथ्यामति मूरख, कै कहुं कुमति धरी ॥
कै कहुं लोभ लग्यो तोहि नीको, कै विष प्रीति करी, हो चे०॥१
कै कहुं राग मिल्यो हितकारी, रीति न समुझि परी ॥
अब हूं चेत परमपद अपनो, सीख सु धार खरी, हो चे०॥२

२१ । पुनः

हो चेतन वे दुःख विसरि गये ॥ टेक ॥
परे नरकमें संकट सहते, अब महाराज भये ।
सूरी सेज सबै तन वेदत, रोग एकत्र ठये ॥ हो चे० ॥ १ ॥
करत पुकार परम पद पावत, कर मन आनंदये ।
कहूं शीत कहूं उष्ण महाभुवि, सागर आयु लये, हो चे० ॥२॥

२२ । राग मारू.

जो जो देख्यो वीतरागने सो सो होसी वीरारे ।
विन देख्यो होसी नहिं क्योंही, काहे होत अधीरा रे ॥१॥
समयो एक बढ़ै नहिं घटसी, जो सुख दुखकी पीरा रे ।
तू क्यों सोच करै मन कूड़ो, होय वज्र ज्यों हीरा रे ॥२॥
लगै न तीर कमान बान कहुं, मार सकै नहिं मीरा रे ।
तूं सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे॥३

निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभुको, जो टारै भव भीरा रे ।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारै भव नीरा रे ॥४॥

२३ । राग धनाश्री ।

जिनवाणी को को नहिं तारे, जिन० ॥ टेक ॥
मिथ्यादृष्टी जगत निवासी, लहि समकित निज काज सुधारे ।
गौतम आदिक श्रुतिके पाठी, सुनत शब्द अघ सकल निवारे, जिन०
परदेशी राजा छिन बादी, भेद सुतत्त्व भरम सब टारे ।
पचमहाव्रत धर तू 'भैया' मुक्तिपथ मुनिराज सिधारे जिन ॥२॥

२४ ।पुन ।

जिनवाणी सुनि सुरत सभारे जिन०॥ टेक ॥
सम्यग्दृष्टी भवननिवासी, गह वृत केवल तत्त्व निहारे, जिन०१॥
भये धरणेन्द्र पदमावति पलम, जुगलनाग प्रभु पास उबारे ॥
बाहूबलि बहुमान धरत हैं, सुनत वचन शिव सुख अवधारे, जिन२॥
गणधर सबै प्रथम धुनि सुनिके, दुविध परिग्रह सग निवारे ॥
गजसुकुमाल बरस वसुहीके, दिक्षाग्रहत करम सब टारे, जिन०३॥
मेघकुँवर श्रेणिकको नदन, वीरवचन निजभवहि चितारे ॥
और हु जीव तरे जे भैया, ते जिनवचन सबै उपगारे, जिन०॥४॥

२५।पुन ।

चेतन परे मोह वश आय, चेतन ॥ टेक ॥
मानत नाहि कहू समुझायो, विषयन रहे लुभाय ॥
नरक निगोद भ्रमन बहु कीन्हो, सो दुख कह्यो न जाय, चेतन०,१॥
नरभव पाय धरम नहिं पायो, आगेको न उपाय ॥
जैसें डारि उदधि चिंतामणि, मूरख फिर पछताय, चेतन० ॥२॥

घातियासु कर्म टारि, लोकालोकको निहारि भयो सुखरासी है। सर्वही विनाश कर्म, भयो महादेव पर्म, वंदै भव्य ताहि नित लोक अग्रवासी है ॥ २ ॥

नेकु राग द्वेष जीत भये वीतराग तुम, तीनलोक पूज्यपद येहि त्याग पायो है। यह तो अनूठी बात तुम ही बताय देहु, जानी हम अबहीं सुचित्त ललचायो है ॥ तनिकहू कष्ट नाहिं पाइये अनन्त सुख, अपने सहजमाहिं आप ठहरायो है। यामें कहा लागत है, परसंग त्यागतही, जारि दीजे भ्रम शुद्ध आपुही कहायो है ॥ ३ ॥

वीतराग देव सो तो बसत विदेहक्षेत्र, सिद्ध जो कहावै शिवलोकमध्य लहिये। आचारज उवझाय दुहीमें न कोऊ यहां, साधु जो बताये सो तो दक्षिणमें कहिये ॥ श्रावक पुनीत सोऊ विद्यमान यहां नाहिं, सम्यकके संत कोऊ जीव सरदहिये ॥ शास्त्रकी शरधा तामें बुद्धि अति तुच्छ रही, पंचम समैमें कहो कैसे पंथ गहिये ॥ ३ ॥

तूही वीतराग देव राग द्वेष टारि देख, तूही तो कहावै सिद्ध अष्ट कर्म नासतैं। तूही तो आचारज है आचरै जु पंचाचार, तूही उवझाय जिनवाणीके प्रकाशतैं॥ परको ममत्त्व त्याग तूहीहै सो ऋषि राय, श्रावक पुनीत व्रत एकादश भासते। सम्यक स्वभाव तेरो शास्त्र पुनि तेरी वाणी, तूही भैया ज्ञानी निज रूपके निवासतें ४ ॥

मात्रिक सवैया.

आलस कहै उद्यम जिन ठानों, सोवहु सदन पिछोरी तान।
काहे रैन दिना शठ धावत, लिख्यो ललाट मिलै सोइ आन ॥
आवत जात मरे जिय केतक, एसेही भेद हिये पहिचान।
तातें इकन्तगहो उरअन्तर, सीख यहै धरिये सुख मान ॥ ५ ॥

उद्यम कहै अरे शठ आलस, तू सरवर क्यो करै हमारि ॥
हम मिथ्यात तजें गहे सम्यक, जो निजरूप महा हितकारि ॥
श्रावक धर्म्म इकादश भेदसो, श्री मुनिपथ महाव्रत धारि ।
चढ गुण थान विलोक ज्ञेय भव, त्यागहिं कर्म वरै शिवनारि ॥६॥

कवित्त मनहरन

मिथ्याभाव नाश होय तबै ज्ञान भास होय, मिथ्याके मिलापसों अशुद्धता अनादिकी । मिथ्याके सॅयोग सेती मोक्षको वियोग रहै, मिथ्याके वियोग वात जानें मरजादिकी ॥ मिथ्याकी मगनतासो सकट अनेक सहै, मिथ्याके मिटाये भव भॉवरि है वादिकी । ऐसी मिथ्या रीतिकी प्रतीतिको निवारे सत, करै निज प्रगट शक्ति तोर कर्मादिकी ॥ ७ ॥

मोहके निवारें राग द्वेषहू निवारें जाहिं, राग द्वेष टारें मोह नेक हू न पाइये । कर्मकी उपाधिके निवारिवेको पेंच यहै, जडके उखारें वृक्ष कैसे ठहराइये ॥ डार पात फल फूल सबै कुम्हलाय जाय, कर्मनके वृक्षनको ऐसे के नसाइये । तबै होय चिदानन्द प्रगट प्रकाश रूप, विलस अनन्त सुख सिद्धमें कहाइये ॥ ८ ॥

जबै चिदानद निज रूपको सभार देखे, कौन हम कौन कर्म कहाको मिलाप है। रागद्वेष भ्रमने अनादिके भ्रमाये हमें, तातें हम भूल परे लाग्यो पुण्य पाप है ॥ रागद्वेष भ्रम ये सुभाव तो हमारे नाहिं, हम तो अनत ज्ञान, भानसो प्रताप है । जैसो शिव खेत वसै तैसो ब्रह्म यहा लसै, तिहू काल शुद्ध रूप 'भैया' निज आप है ॥ ९ ॥

जीव तो अकेलो है त्रिकाल तीनोंलोकमध्य, ज्ञान पुज प्राण

चौदह गुण देवन कृत होय। सर्व मागधी भाषा सोय ॥
मैत्री भाव जीव सब धरैं। सर्वकाल तरु फूल न फरैं ॥ ९ ॥
दर्पणवत निर्मल ह्वै मही । समवशरण जिन आगम कही ॥
शुद्ध गंध दक्षिण चल पौन। सर्व जीव आनँद अनुभौन ॥ १० ॥
धूलिरु कंटक वर्जित भूमि । गंधोदक वरषत है झूमि ॥
पद्म उपरि नित चलत जिनेश। सर्व नाज उपजहि चहुं देश॥ ११
निर्मल होय अकाश विशेष। निर्मल दशा धरतु है भेष ॥
धर्म चक्र जिन आगें चलै। मंगल अष्ट पाप तम दलै ॥१२॥
प्राति हार्य्य वसु आनँदकंद । वृक्ष अशोक हरै दुख द्वंद ॥
पुहुप वृष्टि शिव सुखदातार। दिव्य ध्वनि जिन जै जै कार॥१३
चौसठ चवर ढरहिं चहुंओर। सेवहिं इंद्र मेघ जिम मोर ॥
सिंहासन शोभन दुतिवंत। भामंडल छवि अधिक दिपंत ॥
वेदी माहिं अधिक दुति धरै। दुंदुभि जरा मरण दुख हरै ॥
तीन छत्र त्रिभुवन जयकार। समवशरणको यह अधिकार॥१५

दोहा.

ज्ञान अनँत मय आतमा, दर्शन जासु अनंत ॥
सुख अरु वीर्य अनंत बल, सो वंदों भगवंत ॥ १६ ॥
इन छ्यालीसन गुणसहित, वर्त्तमान जिनदेव ॥
दोष अठारह नाशतैं, करहिं भविक नितसेव ॥ १७ ॥

चौपाई.

क्षुधा त्रिषा न भयाकुलजास । जनम न मरन जरादिक नाश ॥
इन्द्रीविषय विषाद न होय। विस्मय आठ मदहि नहिं कोय॥१८॥
रागरु दोष मोह नहि रंच। चिंता श्रम निद्रा नहि पंच ॥
रोग विना पर स्वेद न दीस। इन दूषन बिन है जगदीश॥ १९॥

दोहा

गुण अनत भगवन्तके, निहचै रूप वखान ॥
ये कहिये व्यवहारके, भविक, लेहु उर आन ॥ २० ॥
'भैया' निजपद निरखतें, दुविधा रहे न कोय ॥
श्रीजिनगुणकी मालिका, पढ़ें परम सुख होय ॥ २१ ॥

इति श्रीजिनगुणमालिका

अथसिज्झाय लिख्यते

करखा छद

जहँ कर्मके वश,सों अश नहिं लसै, सिद्ध सम आतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥ मोह मिथ्यात्वमद,पान दूरहि नशैं, राग अरुद्वेषहू जास थानी॥१॥ नहि क्रोध नहिमान थानभासैं कहू,माय नहि लोभ जहँ दूरदीखै चहू। प्रकृति परद्रव्यकी सर्व मानी,भली सिद्ध समआतमा ब्रह्म ज्ञानी॥२॥ जामें ज्ञान अरु दर्श चारित गुणराजही, शकति अनत सबै ध्रुवछाजही ॥ परम पद पेख निजराजधानी, सिद्ध समआतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥ ३ ॥ अतीत अनागत वर्त्तमानहि जिते, दरब गुण परजय सर्व भासहि तिते ॥ शुद्ध नय सिद्ध जिम जानिप्रानी, सिद्ध सम आतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥ ४ ॥

अथ पचपरमेष्ठिनमस्कार।

दोहा

प्रातसमय श्रीपच पद, वदन कीजे नित्त ॥
भाव भगति उर आनिकै, निश्चय कर निजचित्त ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा

प्रातहि उठि जिनवर प्रणमीजे। भावसहित श्रीसिद्ध नमीजै ॥
आचारज पद वदन कीजै। श्री उवझाय चरण चितदीजै॥२॥

साधु तणा गुण मन आणीजे । पटद्रव्य भेद भला जानीजे ॥
श्रीजिनवचन अमृतरस पीजे । सब जीवनकी रक्षा कीजे ॥ ३॥
लग्यो अनादि मिथ्यात्व वमीजे । त्रिभुवन माही जिम न पसीजे ॥
पाचौं इन्द्री प्रवल दमीजे । निज आतम रस माहि रमीजे॥४॥
परगुण त्याग दान नित कीजे । शुद्ध स्वभाव शील पालीजे ॥
अष्ट करम तज तप यह कीजे । शुद्धस्वभाव मोक्ष पामीजे ॥५॥

दोहा.

इहविधि श्रीजिन चरण नित, जो वंदत धर भाव ॥
ते पावहिं सुख शास्वते, 'भैया' सुगम उपाव ॥ ६ ॥

इति पंचपरमेष्ठि नमस्कार.

अथ गुणमंजरी लिख्यते.

दोहा.

परम पंच परमेष्ठिको, वंदौं सीस नवाय ॥
जस प्रसाद गुण मंजरी, कहूं कथन गुणगाय ॥ १ ॥
ज्ञान रूप तरु ऊगियो, सम्यकधरतीमाहिं ॥
दर्शन दृढ शाखासहित, चारित दल लहकाहिं ॥ २ ॥
लगी ताहि गुण मंजरी, जस स्वभाव चहुं ओर ॥
प्रगटी महिमा ज्ञानमें, फल है अनुक्रम जोर ॥ ३ ॥
जैसें वृक्ष रसालके, पहिले मंजरी होय ॥
तैसें ज्ञान तमालके, गुणमंजरिका जोय ॥ ४ ॥
दया सुवत्सल सुजनता, आतम निंदा रीति ॥
समता भक्ति विरागविधि, धर्म रागसों प्रीति ॥ ५ ॥
मनप्रभावना भाव अति, त्याग न ग्रहन विवेक ॥
धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी अनेक ॥ ६ ॥

तिनके लच्छन गुण कहू, जिन आगम परमान ॥
इह क्रम शिव फल लागि है, देख्यो श्री भगवान ॥ ७ ॥

चौपाई

दया कही द्वय भेद प्रकाश । निजपरलच्छन कहू विकाश ॥
प्रथम कहू निज दया बखान । जिहमें सब आतम रस जान ॥८॥
शुद्ध स्वरूप विचारहि चित्त । सिद्ध समान निहारहि नित्त ॥
थिरता धर आतमपदमाहिं । विषयसुखनकी वाछा नाहि॥९॥
रहै सदा निजरसमें लीन । सो चेतन निजदया प्रवीन ॥
अब दूजो परदया विचार । जो जानै सगरो ससार ॥ १० ॥
छहों कायकी रक्षा होय । दयाशिरोमणि कहिये सोय ॥
पृथिवी अप तेऊ अरु वाय । वनस्पती त्रिस भेद कहाय ॥११
मन वच काय विराधै नाहि । सो परदया जिनागममाहिं ॥
अव्रतमें भावनितें टलै । यथाशक्ति कछु दर्वित पलै॥१२
ज्यों कषायकी मदित ज्योत । त्यों त्यों दया अधिक तिहँ होत॥
त्रसकी रक्षा निश्चय करै । देशविरत थावर कछु टरै॥१३॥
सर्वदया छट्टे गुणथान । आगें ध्यान कह्यो भगवान ॥
और कहू परदया बखान । ताके लक्षण लेहु पिछान॥१४
कष्टित देख अन्य जियकोय । जाके हिरदै करुणा होय ॥
शक्ति समान करै उपकार । सो परदया कही ससार ॥१५॥

दोहा

कही दया द्वय भेदसों, थोरेमें समुझाय ॥
याके भेद अपार है, जानै श्रीजिनराय ॥ १६ ॥
अब वत्सलता गुण कहू, जो रुचिवत सदीव ॥
लग्यो रहै जिनधर्ममें, सो सम दृष्टी जीव ॥ १७ ॥

चौपाई.

जैसैं वच्छा चूंघै गाय । तैसैं जिनवृष याहि सुहाय ॥
लग्यो रहै निशदिन तिहँ माहिं । और काजपर मनसा नाहिं१८
सुनै जिनागमके विरतंत । त्यों त्यों सुख तिहँ होत महंत ॥
जो देख्यो केवल भगवान । सो निहचै याकै परमान॥१९॥
द्वादश अंग प्ररूपहि जोय । सो याके घट अविचल होय ॥
रहै सदा जिनमतको ध्यान । सो वत्सलता गुण परमान २०
अब तीजी सज्जनता कहूं । जाके भेद यथारथ लहूं ॥
देखै जो जिनधर्मी जीव । ताकी संगति करै सदीव ॥२१॥
सब प्राणीपर सज्जन भाव । मित्र समान करै चित चाव ॥
जहां सुनै जिनधर्मी कोय । तहँ रोमांचित हुलसित होय॥
देखत ही मन लहै अनंद । सो सज्जनता है गुणवृंद ॥
अब अपनी निंदा अधिकार । कहूं जिनागमके अनुसार ॥२३॥
जब जिय करै विषयसुख भोग । निंदित ताहि रहै उपयोग ॥
अघकी रीति करै जिय जहां । भ्राष्टित रहै रैन दिन तहां॥२४
देह कुटुंबादिकसे नेह । जब ह्वै तब निंदै निज देह ॥
व्रत पचखान करै नहिं रंच । तब कहै रे मूरख तिरजंच॥२५॥
जब कहू जियको हिंसा होय । तब धिक्कार करै निज सोय ॥
जब परिणाम वहिर्मुख जाय । तब निज निंदा करै सुभाय२६
इहविधि निज निंदहि जे जीव । ते जिन धर्मी कहे सदीव ॥
धर्म विषें उद्यम नहिं होय । तब निज निंदहिं धर्मी सोय

दोहा.

आतमनिंदा पाठ इम । करत भविक निशदीस ॥
अब समता लक्षण कहूं । जो भाषित जगदीश ॥ २

चौपाई

समताभाव धरहि उरमाहिं। वैर भाव काहूसों नाहि॥
निज समान जाने सब हंस। क्रोधादिक तब करै विध्वंस॥२९॥
उत्तम क्षमा धरहि उर आन। सुखदुख दुहुमें एकहि वांन॥
जो कोउ क्रोध करै इह आय। तबहू याके समता भाय॥३०॥
उपजै क्रोध कषाय कदाच। तव तहँ रहै आपसों राच॥
सो समतादिक लच्छन जान। थोरेमें कछु कह्यो बखान॥३१॥
अब कहु भगति भाव जो होय। सेवहि पंच पदहि नित सोय॥
देव गुरू जिन आगम सार। इनकी भक्ति रहै निरधार॥३२॥
जिनप्रतिमा जिन सरसी जान। पूजे भाव भगति उर आन॥
सांधर्मी जिय देखै कोय। ताकी भगति करै पुनि सोय३३
जामहि गुण देखै अधिकाय। ताकी भगति करहि मन लाय॥
भक्ति भावतें नाहिं अघाय। समदृष्टीको यहै स्वभाय॥३४॥
अब कहु गुण वैराग बखान। उदासीन सबसों तिहँ जान॥
जोपै रहै गृहस्थावास। तोहू मन तिह रहै उदास॥३५॥
जानै कबहू चारित लेउँ। परिग्रह सबै त्यागकर देउँ॥
क्षणभंगुर देखहि संसार। तातै राग तजै निरधार॥ ३६ ॥
निजशरीर निपजेपण करै। अशुचि देख ममता परिहरै॥
यह जडमय चेतन सरवंग। कैसे राग करू इहि संग॥३७॥
मन लाग्यो आतम रस माहिं। तातै वैरवासना नाहि॥
इम वैराग्य धरहिं जे संत। ते समदृष्टि कहे सिद्धंत॥३८॥
अब कहु धर्मरागकी बात। समदृष्टी जिय सबै सुहात॥
पंच परम परमेष्ठी जान। तिनमें राग धरहिं उर आन॥३९॥

(१) आदत (२) सहधर्मी (३-४) सम्यग्दृष्टि

जिन आगम जो कह्यो सिधंत । तिनपै राग धरत हैं संत ॥
ज्यों देखहि जिनधर्म उद्योत । त्यों तिहिं राग महा उर होत ४०
जहां सुनै जिनधर्मी कोय । तिहिं मिलिवेकी इच्छा होय ॥
धर्म राग धर्मीपै जोय । सम्यक्त लच्छन कहिये सोय ४१

दोहा.

कही आठ गुणमंजरी, सम्यक लक्षण जान ॥
पंच भेद पुनि और है, तेहू कहूं वखान ॥ ४२ ॥
मन प्रभावना भाव धर, हेय उपादेय वंत ॥
धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी वृतंत ॥ ४३ ॥

चौपाई.

चित प्रभावना भावहिं धरै । किहि विधि जैनधर्म विस्तरै ॥
संघ चलावहि खरचै दाम । प्रगट करै जिन शासननाम ४४
जिनमंदिरकी रचना करै । तामें विंव अनोपम धरै ॥
करै प्रतिष्ठा विविध प्रकार । सो जिनधर्मी चित्त उदार ॥४५॥
साधू साध्वी श्रावक वर्ग । इनके दूर करहिं उपसर्ग ॥
पोषै संघ चतुर्विधि जान । सो जिनधर्मी कहे वखान ॥४६॥
इह विधि करै उद्योत अनेक । जाके हिरदै परम विवेक ॥
जिनशासनकी महिमा होय । नितप्रति काज करत है सोय ४७
जव कोउ जीव महाव्रत धरै । ताके तहां महोत्सव करै ॥
खरचहि द्रव्य देय वहु दान । सो प्रभावना अंग वखान ॥४८॥
अव कहुं हेय उपादेय भेद । जाके लखे मिटै सव खेद ॥
प्रथमहिं हेय कहतहूं सोय । जामे त्याग कर्मको होय ॥४९॥
पुद्गल त्याग योग्य सव तोहि । इनकी संगति मगन न होहि ॥
ऐसें जो वरतै परिणाम । हेय कहत है ताको नाम ॥५०॥

अव कहु उपादेयकी वात । जामें ग्रहण अर्थ निरव्यात ॥
निज स्वरूप जो आतमराम । चिदानद ह ताको नाम ॥५१॥
ज्ञान दरश चारित भडार । परमधरम धन वारन हार ॥
निराकार निरभय निररूप । सो अविनाशी ब्रह्म स्वरूप ५२
ताकी महिमा जानहिं सत । जाकी सकति अपार अनत ॥
ताहि उपादेय जानहिं जोय । सम्यकदृष्टी कहिये सोय ॥५३॥
निज स्वरूप जो ग्रहण करेय । परसत्ता सव त्यागे देय ॥
ऐसे भाव धरहि जो कोय । हेय उपादेय कहिये सोय ॥५४॥
अव धीरज गुण कहू वखान । जिनके ते सम दृष्टी जान ॥
धर्मविषै जो धीरज धरै । कष्टदेख सरधा नहि टरै ॥५५॥
सहै उपसर्ग अनेक प्रकार । सवहू धीरज ह्वै निरधार ॥
मिथ्यामत जो देखै कोय । चमत्कार तामें वहु होय ॥५६॥
तवहू ताहि लखहि अज्ञान । सो धीरजधर सम्यकवान ॥
अव कहु हरप गुणहि समुझाय । समदृष्टी यह सहज सुभाय॥५७॥
निज स्वरूप निरखहिं जो कोय । ताके हर्ष महा उर होय ॥
सुख अनतको पायो ईस । तिहँ निरखै हरपै निसदीस॥५८॥
छहों द्रव्यके गुण परजाय । जाने जिन आगम सुपसाय ॥
निज निरखै सु विनाशी नाहि । यातें हर्ष महा उर माहि ॥५९॥
तीर्थकर देवनके देव । ताकी प्रभुताके सव भेव ॥
अनँत चतुष्टय आदि विचार । हप ते निज माहि निहार॥६०॥
जन्म जरादिक दुख वहु जान । तिहतें भिन्न अपनपो मान ॥
सिद्धसमान विचारहि चित्त । तातें हर्प महा उर नित्त ॥६१॥
अव गुण कहू प्रवीन वखान । जिनके ते समदृष्टी मान ॥
स्वपरविवेकी परम सुजान । प्रगट्यो वोध महा परधान ॥६२॥

१ गुप्रसाद

जानन लाग्यो सब विरतंत । जैसो कछु देख्यो भगवंत ॥
जिन आगमके वचन प्रमान । तामहिं बुद्धि अहै परधान ॥६३॥
धर्म महागुण जाके होय । तातैं निपुण न दूजो कोय ॥
जाके हृदय भयो परकाश । ताकी कुमति गई सब नाश॥६४॥
चौदह विद्यामें जो आदि । ब्रह्मज्ञान सो कह्यो मरजाद ॥
तातैं जो परवीन प्रधान । सो समदृष्टीविन नहिं आन ६५
मिथ्याती जिय भ्रमसें रहै । सो प्रवीनता कैसें गहै ॥
तातैं कथा यहै परमान । है प्रवीन जिय सम्यकवान ॥६६॥
इहि विधि मंजरी लगी अनेक । ज्ञानवंत धर देख विवेक ॥
जैसें द्रुम शोभै सहकार । तैसें ज्ञान गुणनके भार ॥६७॥
यातैं प्रथम मंजरिका कही । इहि द्रुम शिवफल लागहि सही॥
जाके घट समकित परकाश । ताके ये गुन होंहि निवास ॥६८॥
सम्यग्दर्श लहै जो जीव । सो शिवरूपी कह्यो सदीव ॥
तातैं सम्यक ज्ञान प्रमान । जातें शिवफल होय निदान ६९

दोहा.

कही ज्ञानगुण मंजरी, जिनमतके अनुसार ॥
जो समुझहिं ओ सरदहैं, ते पावहिं भवपार ॥ ७० ॥
यामें निज आतम कथा, आतमगुण विस्तार ॥
तातैं याहि निहारिये, लहिये आतम सार ॥ ७१ ॥
जो गुण सिद्ध महंतके, ते गुण निजमहिं जान ॥
भैया निश्चय निरखतें, फेर रंच जिनमान ॥ ७२ ॥
सत्रहसो चालीसके, उत्तम माघ हिमंत ॥
आदि पक्ष दशमी सुदिन, मंगल कह्यो सिद्धंत ॥ ७३ ॥

इति गुणमजरिका.

अथ लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथन लिख्यते ।

चौपाई

प्रणमू परमदेवके पाय । मन वच भावसहित शिर नाय ॥
लोक क्षेत्रकी गिनती कहू । राजू भेद जहाँतें लहू ॥ १ ॥
घनाकार सब कह्यो वखान । त्रयशत अरु तेतालिस मान ॥
ताके भेद कहू समुझाय । श्री जिन आगमके जु पसाय॥२॥
सिद्ध शिलातक गिनती करी । ऊपरिकी हद इह मग धरी ॥
अहमिंदर नवग्रीव विमान । तिँह उपरके सबही जान ॥ ३ ॥
राजू ग्यारह घन आकार । देख्यो जिनवर ज्ञानमझार ॥
ताके तरहिं सुरग वसु जान । द्विक चतुकी सख्या उर आन॥४
उपरितें तरको दृग देहु । गनती भेद समझ कर लेहु ॥
साढे अठ रज्जू द्विक एक । घनाकार सब लहहु विशेक॥५॥
दूजो द्विक साढे दश होय । तीजो साढे बारह सोय ॥
चौथो साढे चउदह कह्यो । द्विक चतु भेद जिनागम लह्यो ६
द्वै द्विक और कहू विस्तार । ते राजू तेतीस निहार ॥
साढे सोरह इक इक जान । इम तेतीस दुहू द्विक मान ॥ ७ ॥
सनत्कुमार महेन्द्र सुदीस । इन दुहके साढे सैंतीस ॥
अब सुधर्म ईशान विमान । तिर्यग् लोक याहि महिजान॥८॥
मेरु चूलिकातें गन ठही । राजू साढे उनइस कही ॥
सब गिनती ऊपरकी दीस । राजू इक सो सैंतालीस ॥ ९ ॥
अब नीचें कहु क्रममें गुनो । जाके भेद जथारथ सुणो ॥
मेरू तलतासें गण लेह । सात नरकको वरणन जेह॥ १० ॥

---

(१) प्रणाम

पहिली रतनप्रभा ते जान। दशराजू तिह कही वखान ॥
दूजी शोलह राजू कही। तीजी नरक वीसद्वै लही ॥११॥
चौथी नरक अठाइस राजु। तिह निकस्यो जिय सारे काजु ॥
पंचमि नरक राजु चौतीश। छट्टी चालिस कही जगदीश ॥१२
नरक सातवींकी मरजाद। कही छियालिस कथन अनाद ॥
लोक अन्त सवतैं जो तरें। सो सव नर्क सातवीं धरै ॥ १३॥
सात नरककी गिनती जान। शतइक और छ्यानवें मान ॥
सब राजू देखे जगदीस। भये तीनसै तैतालीस ॥ १४ ॥
घनाकार सव भुवनहिं जान। ऊंचौ राजू चवदह मान ॥
सागर स्वयंभुरमणहिं जोय। तिहँवानहि राजूइक होय ॥१५॥
पुरुषाकार कह्यो सब लोक। ताके परें सु और अलोक ॥
इहि मधि त्रसनाड़ी इक जान। ताके भेद कहूं उर आन ॥१६॥
चवदह राजू कही उतंग। राजू इक पोली सरवंग ॥
तामहिं त्रसथावरको थान। याके परैं सु थावर मान ॥१७॥
इहविधि कही जिनागम भाख। ग्रंथ त्रिलोकसारकी साख ॥
धर्म ध्यानको जानहु भेद। चर्ण चतुर्थ लखहु विन खेद ॥१८
इतनो है यो लोकाकाश। छहों दरवको यामें वास ॥
चेतन ज्ञान दरश गुण धरै। और पंथ जड़ता अनुसरै ॥१९॥
रहै सदा इहि लोकमझार। तू 'भैया' निजरूप निहार ॥
सत्रहसौ चालीसै सही। पौष सुदी पूनम रवि कही ॥ २० ॥

इति लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथनं ॥

अथ मधुबिन्दुककी चौपाई लिख्यते ।

दोहा

वदों जिनवर जगत गुर, वदों सिद्ध महत ॥
वदों साधू पुरुष सव, वदों शुद्ध सिद्धत ॥ १ ॥
मधु विदुककी चौपई, कह ग्रन्थ अनुसार ॥
दुख अरु सुखके उदधिको, लहिये पारावार ॥ २ ॥
काल अनादि गयो इहा, वसत यही जगमाहिं ॥
दुख अर सुखसों भिन्नता, जानी कबहू नाहिं ॥ ३ ॥
विपयसुखनको सुख लख्यो, तिहँ दुख लह्यो अपार ॥
सो जानै जिन केवली, है अनत विस्तार ॥ ४ ॥

चौपाई

इक दिन भविजन मिले सुभाय। आवत देख्यो श्रीमुनिराय ॥
अठ्ठाईश मूल गुण धरै । तास चरण भवि वदन करै ॥५॥
विनती करहि टूहूकर जोर । हे प्रभु भवबधनतैं छोर ॥
तव मुनिराज धरमहित जान। जिन आगम कछु कहहि वखान ६

दोहा

भविक सुनहु उपदेश तुम, मन वच दृढकर काय ॥
ज्यों पावहु निज सम्पदा, सशय वेग विलाय ॥ ७ ॥
इक दृष्टात विचारिकैं, कहै सुगुर उपदेश ॥
सुनहु भविक थिरतासहित, तज अज्ञान कलेश ॥ ८ ॥

चौपाई

एक पुरुष वन भूल्यो परचो । ढूढत ढूढत सब निशि फिरचो ॥
चहु दिश अटवी झझाकार । हीडत कहु नहिं पावै पार ॥ ९ ॥

महा भयानक सव वनराय । भटकत फिरै कछू न वसाय ॥
जित देखहि तित कानन जोर । परयो महा संकट तिहँ घोर॥१०
सोचत वाघ सिंह जिनै[1] खाय । जिनै[2] कहुं वैरी पकर न जाय ॥
इहि विधि दुखित महावन धाय। तिहँ थानक गज निकस्यो आय ११
ताकी दृष्टि परयो नर जहां । ता पकरन गज दोरयो तहां ॥
यह भाग्यो आगेंको जाय । पाछैं गज आवत है धाय ॥ १२ ॥
जो यह देखै दृष्टि निहार । यह तो रह्यो डगन द्वै चार ॥
अव मैं भागि कहां लों जाउँ । देख्यो कूप एक तिहँ ठाउँ ॥१३॥
परयो कूप मधि यहै विचार । गज पकरै तो डारै मार ॥
कूप मध्य वड़ ऊग्यो एक । ताकी शाखा फली अनेक॥१४॥
तामहिं मधुमक्षिनको थान । छत्ता एक लग्यो पहचान ॥
वरकी जटा लटकि तहँ रही । कूप मध्य गिरते कर गही ॥१५॥
दोउकर पकर रह्यो तिहँ जोर । नीचैं देखै दृष्टि मरोर ॥
कूप मध्य अजगर विकराल । मुह फारे वैठ्यो जिम काल॥१६॥
वह निरखहि आवै मुख मांहि । तो फिर भाजि कहां लों जाहि॥
चार कौनमें नाग जु चार । वैठे तहां तेहु मुखफार॥ १७ ॥
कव यह नर गिर है इह ठौर । गिरतें याको कीजे कौर ॥
नीचैं पंच सर्प लखि डरयो । तव ऊपरको मस्तक करयो॥१८॥
देखै वटकी जटै[3] कहँ दोय । ऊंदैंर[4]जुग काटत है सोय ॥
इक उज्वल इक श्याम शरीर । काटहि जटा नही तिहँ पीर॥१९॥
कूप कंठ गज शुंड प्रकार । झकझोरै वरकी वहु डार ॥
पकर निशुंड चलावै ताहि । यह तो रह्यो दूर द्रुम साहि॥२०॥

(१–२) मत ३ जटा ४ दो चूहे

बरकी शाखा हाली सबै। मधुकी बूद गिरी इक तबै॥
इह राख्यो तवहीं मुखफार। आवत ग्रहण करी निरधार॥२१॥
झकझोरत माखी उडि जेह। आय लगी सब याकी देह॥
काटै तन पै वेदै नाहिं। मन लाग्यो मधु छत्ता माहिं॥२२॥
एक बूद जब मुख महिं परै। तब दूजीप मनसा करै॥
लगी दृष्टि छत्तासो जाय। दुखसकटसो नहिं अकुलाय २३

सोरठा

तव तिहँ थानक कोय, विद्याधर आकाशमें॥
जाहि पुरुप तिय दोय, बैठे निजहि विमानमें॥ २४॥
तिय निरख्यो तिहँ वार, कोउ पुरुप सकट पर्यो॥
हे पिय! दुखहि निवार, निराधार नर कूपमें॥ २५॥
दुख अपार अति घोर, पर्यो पुरुप सकट सहै॥
कछु न चलत है जोर, हे प्रभु याहि निवारिये॥ २६॥
कहै विद्याधर वैन, सुनहु प्रिया तुम सत्य यह॥
यह मानें इत चैन, निकसनको क्योंही नही॥ २७॥

दोहा

प्रिया कहै प्रियतम सुनो, किहँ सुख मान्यो चैन।
यह अटवी यह कूप गज, अहि मखि मूसा ऐन॥ २८॥
कहै विद्याधर प्रिये सुनो, मधु विदव रस लीन॥
यह सुख मान रच्यो यहा, दुख अगीकृत कीन॥ २९॥
ए सब दुखहिं विचारके, मधुविंदवके स्वाद॥
लग्यो मूढ सकट सहै, कहिवो मनही वाद॥ ३०॥
वहुर प्रिया कहै सुनहु प्रिय, ऐसी कबहुँ न होय॥
एते सकट जो सहै, सो सुख मानै कोय॥ ३१॥

तातैं याको काढिये, कहै तिया समुझाय ॥
विद्याधर कहै हट तजहु, पंथ अकारथ जाय ॥ ३२ ॥
तीय कहै चलवो नहीं, इहि विन काढे आज ॥
स्वामि वडो उपकार है, कीजे उत्तम काज ॥ ३३ ॥
तिय हटविद्याधर तहां, उतरयो निजहिं विमान ॥
आय कह्यो तिहँ नर प्रतैं, निकसि निकसि अज्ञान ॥३४॥
आवे तो हम वांह गहि, तोकों लेय निकासि ॥
निज विमान वैठायकें, पहुंचावें तो वास ॥ ३५ ॥

चौपाई.

ऐसे वचन सुनत निज कान । वोलै पुरुष सुनहु हितवांन ॥
एक वूंद छत्तासो खिरै । सो अवके मेरे मुख गिरै ॥ ३६॥
ताको अवहीं चख सरवंग । तव मैं चलूं तुमारे संग ॥
जव वह वूंद परी मुख माहिं । तव दूजीपर मन ललचाहिं॥३७॥
अव यह जो आवैगी सही । तो चलहूं कछु धोको नही ॥
दूजी वूंद परी मुख जान । तव तीजीपर करी पिछान॥३८॥
इह विधि वूंद स्वादके काज । लाग रह्यो नहिं कछू इलाज ॥
विद्याधर दै हाँक पुकार । निकसै नहीं चल्यो तव हार॥३९॥
आय विमान भयो असवार । निज थानक पहुंच्यो तिहँवार ॥
तवही भवि मुनिके नमि पांय । कहा कही प्रभु कह समुझाय ४०
हम नहिं समुझे यह दृष्टांत । कहहु प्रगट प्रभु सव विरतांत ॥
को नर को गज को वनकूप । को अहि को वट जटा अनूप॥४१॥
को ऊंदर को मधुकी वुंद । को माखी जो दे दुखदुंद ॥
कौन विद्याधर कहो समुझाय । जातैं सव संशय मिट जाय ॥४२॥

---

(१) हितैपी

दोहा

तव मुनिवर दृष्टात विधि, कहैं भविक समुझाय ॥
सावधान ह्वै सुनहु तुम, कह कथन गुणगाय ॥ ४३ ॥

चौपाई

यह ससार महा वन जान । तामहि भवभ्रम कूप समान ॥
गज जिम काल फिरत निशदीस । तिहँ पकरन कहू विस्वावीस ४४
वटकी जटा लटकि जो रही । सो आवर्दा जिनवर कही ॥
तिहँ जर काटत मूसा दोय । दिन अरु रैन लखहु तुमसोय ४५
माखी चूटत ताहि शरीर । सो वहुरोगा दिककी पीर ॥
अजगर परयो कूपके वीच । सो निगोद सवतैं गतिनीच ॥४६॥
याकी कछु मरजादा नाहि । काल अनादि रहैं इह माहि ॥
तातैं भिन्न कही इहि ठौर । चहु गति महितैं भिन्न न ओर ४७
चहु दिश चारहु महा भुजग । सो गति च्यार कही सरवग ॥
मधुकी वूद विषै सुख जान । जिहँ सुख काजरह्यो हितमान ४८
ज्यों नर त्यों विपयाश्रित जीव । इह विधि सकट सहै सदीव ॥
विद्याधर तहँ सुगुरु समान । दै उपदेश सुनावत कान ॥४९॥
आवहु तुमहिं निकाशहिं वीर । दूर करहि दुख सकट भीर ॥
तनह मूरख मानै नाहि । मधुकी वूदविषै ललचाहि ५०
इतनो दुख सकट सह रहै । सुगुरुवचन सुन तज्यो न चहै॥
तैसे ज्ञानहीन जियवत । ए दुखसकट सहै अनत ॥५१॥
विषै सुखन मधुविंदव काज । मानत नाहिं वचन जिनराज ॥
सहत महा दुख सकट घोर । निकसन चलत वधू शिवओर ५२

जिहँ थानक सुख सागर भरे । काल अनंतहु विलसहु खरे ॥
जन्मजरादिक दुख मिट जाय । प्रगटै परमधरम अधिकाय ॥५३॥
वहुरन कवहू संकट होय । सुख अनंत विलसहु ध्रुवसोय ॥
यह उपदेश कहै मुनिराज ।भव्य जीव चेतहु निजकाज॥५४॥

दोहा.

सुनके वचन मुनीन्द्रके, भवि चिंतै मन माहिं ॥
विषयसुखनसों मगनता, कवहूं कीजे नाहि ॥ ५५ ॥
विषयसुखनकी मगनसों, ये दुख होंहिं अपार ॥
तातैं विषय विहंडिये, मन वच क्रम निरधार ॥ ५६ ॥
यह विचार कर भविकजन, वंदत मुनिके पाय ॥
धन्य धन्य तारन तरन, जिन यह पंथ वताय ॥ ५७ ॥
एतो दुख संसारमें, एतो सुख सव जान ॥
इम लखि भैया चेतिये, सुगुरु वचन उरआन ॥ ५८ ॥
सत्रहसौ चालीसके, मारगसिर शित पक्ष ॥
तिथि द्वादशी सुहावनी, भोमवार परतक्ष ॥ ५९ ॥
मधुविंदवकी चौपई, कही ग्रंथ अनुसार ॥
जे समुझै वा सरदहै, ते पावहिं भवपार ॥ ६० ॥

इति मधुविंदवकी चौपई.

अथ सिद्धचतुर्दशी लिख्यते ।

दोहा.

परमदेव परणाम कर, परम सुगुरु आराध ॥
परम ब्रह्म महिमा कहूं, परम धरम गुण साध ॥ १ ॥

कवित्त

आतम अनोपम है दीसै राग द्वेष विना, देखो भव्यजीव! तुम आपमें निहारकै। कर्मको न अंश कोऊ भर्म को न वंश कोउ, जाकी सुद्धताई मैं न और आप टारकै॥ जैसो शिव खेतै वसै तैसो ब्रह्म इहा लसै, इहा उहा फेर नाहि देखिये विचारकै। जेई गुण सिद्धमाहि तेई गुण ब्रह्मपाहि, सिद्ध ब्रह्म फेर नाहिं निश्चय निरधारकै॥ २॥ सिद्धकी समान है विराजमान चिदानंद ताहीको निहार निजरूप मान लीजिये। कर्मको कलंक अंग पंक ज्यों पखार हर्यो, धार निजरूप परभाव त्याग दीजिये॥ थिरताके सुखको अभ्यास कीजे रैन दिना, अनुभोके रसको सुधार भले पीजिये। ज्ञानको प्रकाश भास मित्रकी समान दीसै, चित्र ज्यों निहार चित ध्यान ऐसो कीजिये॥ ३॥ भाव कर्म नाम रागद्वेषको बखान्यो जिन, जाको करतार जीव भर्म संग मानिये। द्रव्यकर्म नाम अष्टकर्मको शरीर कह्यो, ज्ञानावर्णी आदि सब भेद भले जानिये। नो करम सजात शरीर तीन पावत है, औदारिक वैक्रीय आहारक प्रमानिये॥ अंतरालसमै जो अहार विना रहै जीव, नो करम तहा नाहि याहीतें बखानिये॥४॥

सवैया

लोपहि कर्म हरै दुख भर्म सुधर्म सदा निजरूप निहारो।
ज्ञानप्रकाश भयो अघनाश, मिथ्यात्व महातम मोह न दारो॥
चेतनरूप लखो निजमूरत, सूरत सिद्धसमान विचारो।
ज्ञान अनंत वहै भगवंत, वसै अरि पकतिसौं नित न्यारो।

छप्पय छंद.

त्रिविधि कर्मतें भिन्न, भिन्न पररूप परसतैं ॥
विविधि जगतके चिह्न, लखै निज ज्ञान दरसतैं ॥
वसै आपथल माहिं, सिद्ध समसिद्ध विराजहि ।
प्रगटहि परम स्वरूप, ताहि उपमा सव छाजहि ॥
इह विधि अनेक गुणब्रह्ममहिं, चेतनता निर्मल लसै ॥
तस पद त्रिकाल वंदत भविक', शुद्ध स्वभावहि नित वसै ॥६॥
अष्टकर्मतैं रहित, सहित निज ज्ञान प्राण धर ॥
चिदानंद भगवान, वसत तिहुं लोक शीसपर ॥
विलसत सुखजु अनंत, संत ताको नित ध्यावहि ॥
वेदहि ताहि समान, आयु घट माहिं लखावहि ॥
इमध्यान करहि निर्मल निरखि, गुणअनंत प्रगटहिं सरव ॥
तस पद त्रिकाल वंदत भविक,' शुद्ध सिद्ध आतम दरव ॥७॥
ज्ञान उदित गुण उदित, मुदित भई कर्म कषायें ।
प्रगटत पर्म स्वरूप, ताहिं निज लेत लखायें ॥
देत परिग्रह त्याग, हेत निहचै निज मानत ।
जानत सिद्ध समान, ताहि उर अंतर ठानत ॥
सो अविनाशी अविचल दरव, सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम ।
निर्मल विशुद्ध शास्वत सुथिर, चिदानंद चेतन धरम ॥८॥

कवित्त.

अरे मतवारे जीव जिन मतवारे होहु, जिनमत आन गहो जिनमत छोरकैं । धरम न ध्यान गहो धरमन ध्यान गहो, धरम स्वभाव लहो, शकति सुफोरकैं ॥ परसों सनेहकरो, परम सनेह

करो, प्रगट गुण गेह करो मोहदल मोरकै। अष्टा दशदोप हरो, अष्ट कर्म नाश करो, अष्ट गुण भास करो, कहू कर जोरकै ॥९॥

वर्णमें न ज्ञान नहि ज्ञान रस पचनमें, फर्समें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहू गधमें। रूपमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कह ग्रथनमें, शब्दमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कर्म वधमें ॥ इनतै अतीत कोऊ आतम स्वभाव लसै, तहाँ वसै ज्ञान शुद्ध चेतनाके खधमें ॥ ऐसो वीतरागदेव कह्यो है प्रकाशभेव, ज्ञानवत पावै ताहि मूढ धावै ध्वधमें ॥१०॥

वीतराग वैन सो तो ऐनसे विराजत है, जाके परकाश निजभास पर लहिये। सूझै पट दर्व सर्व गुण परजाय भेद, देवगुरु ग्रथ पथ सत्य उर गहिये ॥ करमको नाश जामें आतम अभ्यास कह्यो, ध्यानकी हुतास अरिपकतिको दहिये। खोल द्दग देखि रूप अहो अविनाशी भूप, सिद्धकी समान सव तोपैं रिद्ध कहिये ॥११॥

रागकी जु रीतसु तो वडी विपरीत कही, दोपकी जु वात सु तो महादुख दात है। इनहीकी सगतिसों कर्मवन्ध करै जीव, इनही सगतिसों नरक निपात है ॥ इनहीकी सगतिसों वसिये निगोद वीच, जाके दुखदाहको न थाह कह्यो जात है। येही जगजाल के फिरावनको वडे भूप, इनहीके त्यागे भव भ्रम न विलात है ॥ १२ ॥

मानिक कवित्त

असी चार आसन मुनिवरके, तामें मुक्ति होनके दोय।
पद्मासन खड्गासन कहिये, इनविन मुक्ति होय नहि कोय ॥
परम दिगम्बर निजरस लीनो, ज्ञान दरश थिरतामय होय।
अष्ट कर्मको थान भ्रष्टकर, शिवसपति विलसत है सोय ॥ १३ ॥

दोहा.

जैसो शिवखेतहि वसै, तैसो या तनमाहिं ॥
निश्चय दृष्टि निहारतैं, फेर रंच कहुं नाहिं ॥ १४ ॥

इति सिद्धचतुर्दशी.

अथ निर्वाणकांडभाषा लिख्यते ।

दोहा.

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित शिरनाय ।
कहूं कांड निर्वानकी, भाषा विविध वनाय ॥ १ ॥

चौपई.

अष्टापद आदीश्वर स्वामि । वासुपूज्य चंपापुरि नामि ॥
नेमिनाथ स्वामी गिरनार । वंदौं भावभगति उर धार ॥ २ ॥
चर्म तिर्थंकर चर्म शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥
शिखरसमेद जिनेश्वर वीस । भावसहित वंदो जगदीस ॥ ३ ॥
वरदत औ वर इंद मुनिंद । सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥
नगर तारवर मुनि उठं कोड़ । वंदौं भावसहित करजोड़ ॥ ४ ॥
श्रीगिरनार शिखर विख्यात। कोटि वहत्तर अरु सौ सात ॥
संवु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय । अनुरुद्ध आदि नमूं तसपाय ॥ ५ ॥
रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाड नरिंद आदि गुणधीर ॥
पंचकोड़ मुनि मुक्तिमझार । पावागिर वंदौं निरधार ॥ ६ ॥
पांडव. तीन द्रविड़ राजान । आठकोड़ मुनि मुकतिप्रमान ॥
श्रीशत्रुंजयगिरिके शीस । भावसहित वंदो निशदीस ॥ ७ ॥

---

(१) साढे तीन करोड.

जो बलिभद्र मुकतिमें गये । आठ कोडि मुनि औरहिं भये ॥
श्री गजपथ शिखर सुविशाल । तिनके चरण नमू तिहु काल ॥८॥

राम हनू सुग्रीव सुडील । गवगवाख्य नील महानील ॥
कोड निन्याणव मुक्तिप्रमान । तुगी गिर वदों धर ध्यान ॥९॥
नग अनंग कुमार सुजान । पचकोड अरु अर्द्ध प्रवान ॥
मुक्ति गये शिहुनागिरशीस । ते वदों त्रिभुवनपति ईश ॥१०॥
रावनके सुत आदि कुमार । मुक्ति भये रेवातट सार ॥
कोटि पच अरु लाखपचास । ते वदो धर परम हुलास ॥११॥
रेवानदी सिद्धवर कूट । पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ॥
द्वै चक्री दश काम कुमार । औठकोडि वदों भवपार ॥१२॥

वडवानी वडनगर सुचग । दक्षिण दिशि गिर चूल उतग ॥
इद्रजीत अरु कुभ जु कर्ण । ते वदों भवसागर तर्ण ॥१३॥
सुवरणभद्र आदि मुनि चार । पावागिरिवर शिखरमझार ॥
चलना नदीतीरके पास । मुक्ति गये वदों नित तास ॥१४॥

फलहोडी वडगाम अनूप । पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ॥
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहा । मुक्ति गये वदो नित तहा ॥१५॥
बाल महाबाल मुनि दोय । नाग कुमार मिले त्रय होय ॥
श्रीअष्टापद मुकति मझार । ते वदों नित सुरत सभार ॥१६॥
अचला पुरकी दिशा ईशान । तहाँ मेढगिरि नाम प्रधान ॥
साढे तीन कोटि मुनिराय । तिनके चरन नमू चितलाय ॥१७॥
वशस्थल वनके ढिग होय । पश्चिम दिश कुथलगिरि सोय ॥
कुल भूषण देश भूषण नाम । तिनके चरणनि करहु प्रणाम ॥१८

(२) साढेतीन कोड

जसरथ राजाके सुत कहे । देश कलिंग पांचसो लहे ॥
कोटि शिला मुनि कोटि प्रमान । वंदन करों जोर जुग पान ॥१९॥
समवशरण श्रीपार्श्वजिनंद । रिशंदेह गिरि नयनानंद ॥
वरदत्तादि पंच ऋषिराज । ते वंदों नित धरम जिहाज॥२०॥
तीन लोकके तीरथ जहां । नित प्रति वंदन कीजे तहां ॥
मन वच भाव सहित शिर नाय । वंदन करें भविक गुण गाय॥२१
संवत सत्रहसो इकताल । अश्विन सुदि दशमी सुविशाल॥
'भैया' वंदन करहि त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुण माल॥२२॥

इति निर्वाणकांडभाषा.

अथ एकादशगुणस्थानपर्यन्तपंथवर्णन लिख्यते ॥

दोहा.

कर्म कलंक खपायकें, भये सिद्ध भगवान ॥
नित प्रति वंदों भाव धर, जो प्रगटै निज ज्ञान ॥ १ ॥
कहों पंथ इह जीवके, किहँ मग आवै जाय ॥
गुण थानक दश एकलों, धरै जनम मृत भाय ॥ २ ॥
भव्य राशितैं निकसिकै, मुक्ति होनके काज ॥
चढहि गिरहि इम पंथमें, अंत होंहिं महाराज ॥ ३ ॥

चौपाई.

प्रथम मिथ्यात नाम गुण थान । उभय भेद ताके परवान ॥
एक अनादि नाम मिथ्यात । दूजो सादि कह्यो विख्यात ॥४॥
प्रथम अनादि मिथ्याती जीव । पंथ तीनको धरै सदीव ॥
चौथे पंचम सप्तम जाय । गिरैतो फिर मिथ्यापुर आय॥५॥
सादि मिथ्यात्व जीव जो धरै । पंथ चार ताके विस्तरै ॥

तीजै चौथे पचम जाय । सप्तम पुरलों पहुचै धाय ॥ ६ ॥
अब दूजो सासादन नाम । ताके एक गिरनको धाम ॥
मिथ्यापुरलो आवै सही । दूजी वाट न याकी कही ॥७॥
तीजो मिश्रनाम गुण थान । पथ दोय याके परमान ॥
गिरै तो पहिले पुरके माहि । चढै तो चौथे थानक जाहिं ॥ ८॥
चौथौ है अव्रतपुर थान । पथ पच भाखे भगवान ॥
गिरै तो तीजै दूजै जाय । मिथ्यापुरलों पहुँचै आय ॥ ९॥
चढै तो पचम सप्तम सही । ऐसी महिमा याकी कही ॥
पचम देशविरतपुर जान । पथ पच ताके उर आन ॥१०॥
गिरै तो चौथे तीजै जाय । अथवा दूजै पहिले भाय ॥
चढै तो सप्तम पुरके माहि । इहि थानक अधिके कछु नाहि ११
अब षष्टम परमत्त बखान । ताके पथ छहों पहिचान ॥
गिरै तौ पचम चौ त्रिय जाय । दूजै पहिले धरै सुभाय ॥ १२॥
चढै तो सप्तम पुरलों आय । ऐसे भेद कहे जिनराय ॥
सप्तम अप्रमत्त पुर नाम । पथ तीन ताके अभिराम॥१३॥
गिरै तो छठे पुरलों जाहिं । चढै तो अष्टम पुरके माहिं ॥
मरन करै चौथे पुर आय । ऐसे भेद कहे समुझाय ॥ १४ ॥
अष्टम नाम अपूरव करण । शिवलोचन मधि ताकी धरण॥
गिरै तो सप्तम पुरहि अखड । चढै तो नवमें पुर परचड॥१५
मरन करै तो चौथै जाय । ऐसे कथन कह्यो मुनिराय ॥
नवमों नाम अनिव्रतकर्ण । पथ तीन ताके विस्तर्ण ॥ १६॥
गिरै तो अष्टम पुरके सग । चढै तो दशमें होय अभग ॥
मरन करै चौथै पुर वीच । तोहू भवथिति रहै नगीच॥१७
सूक्ष्म सापराय दश कहै । पथ तीन ताके इम लहै ॥

गिरै तौ नवमें पुरकी वाट। चढै इकादश उपशम घाट ॥१८
मरन करै चौथै पुर सही। ऐसी रीति जिनागम कही ॥
एकादशम मोह उपशांत। पंथ दोय तिहँ कहै सिद्धांत ॥१९
गिरै तो दशमें पुर निरधार। मरन करै तो चौथै सार ॥
ऐसे भेद जिनागममाहिं। गोमठसार ग्रंथकी छांहि ॥२०॥
भाषा करहिं 'भविक' इह हेत। याके पढ़त अर्थ कह देत ॥
बाल गुपाल पढ़हिं जे जीव। 'भैया' ते सुख लहहिं सदीव ॥२१

इति एकादशगुणस्थानकथनम्।

अथ कालाष्टक लिख्यते।

दोहा.

तिहुं पुरके पुरहूत सब, वंदत शीस नवाय॥
तिहँ तीर्थंकर देवसौं, बचत नाहिं यमराय ॥ १ ॥
जिनकी भ्रूके फरकतें, कंपत सुरनरवृन्द ॥
तेहू काल छिनमें लये, जो योधा सुर इन्द्र ॥ २ ॥
जाकी आज्ञामें रहैं, छहों खंडके भूप ॥
ता चक्रीधरको ग्रसै, काल महा भयरूप ॥ ३ ॥
नारायण नरलोकमें, महा शूर बलवंत ॥
तीन खंड आज्ञा वहै, तिनैहु काल ग्रसंत ॥ ४ ॥
औरहु भूप बलिष्ट जे, वसत याहि जगमाहिं ॥
तेहु कालकी चालसौं, वचत रंच कहुं नाहिं ॥ ५ ॥
तातैं काल महाबली, करत सबनपै जोर ॥
धन धन सिधपरमातमा, जिहँ कीनों इहि भोर ॥ ६ ॥

ऐसे काल वलिष्टको, जो जीतै सो देव ॥
कहत दास भगवतको, कीजे ताकी सेव ॥ ७ ॥
काल वसत जगजालमें, नूतन करत पुरान ॥
'भैया' जिहँ जग त्यागियो, नमहु ताहि धर ध्यान ॥ ८ ॥

इतिकालाष्टक

अथ उपदेशपचीसिका लिख्यते ।

दोहा

वीतरागके चरनयुग, वदो शीस नवाय ॥
कहु उपदेशपचीसिका, श्रीगुरुके सुपसाय ॥ १ ॥

चौपाई

वसत निगोद काल वहु गये । चेतन सावधान नहिं भये ॥
दिन दश निकस वहुर फिर परना। एते पर एता क्या करना ॥ २ ॥
अनंत जीवकी एकहि काया । उपजन मरन इकत्र कहाया ॥
स्वास उसास अठारह मरना । ऐते पर एता क्या करना ॥ ३ ॥
अक्षरभाग अनतम कह्यो । चेतन ज्ञान इहालों रह्यो ॥
कौन सकति कर तहा निकरना । एते पर एता क्या करना ॥ ४ ॥
पृथिवी अप तेऊ अरु वाय । वनसपतीमें वसै सुभाय ॥
ऐसी गतिमें दुख वहु भरना । एते पर एता क्या करना ॥ ५ ॥
केतो काल इहा तोहि गयो । निकसि फेर विकलत्रय भयो ॥
ताका दुख कछु जाय न वरना । एते पर एता क्या करना ॥ ६ ॥
पशुपक्षीकी काया पाई । चेतन रहे तहाँ लपटाई ॥
विना विवेक कहो क्यों तरना । एते पर एता क्या करना ॥ ७ ॥
इम तिरजच माहिं दुख सहे । सो दुख किनहू जाहि न कहे ॥

पाप करमतैं इह गति परना । एते पर एता क्या करना ॥ ८ ॥
फिरहू परे नरकके माहीं । सो दुख कैसें वरनें जाहीं ॥
क्षेत्र गंधतें नाक जु सरना । एते पर एता क्या करना ॥ ९ ॥
अग्निसमान भूमि जहँ कही । कितहू शील महा बन रही ॥
सूरी सेज छिनक नहिं टरना । एते पर एता क्या करना ॥१०
परम अधर्मी देव कुमारा । छेदन भेदन करहिं अपारा ॥
तिनके वसतें नाहि उवरना । एते पर एता क्या करना ॥११
रंचक सुख जहँ जियको नाहीं । वसत याहि गति नाहिं अघाहीं
देखत दुष्ट महा भय डरना । एते पर एता क्या करना ॥१२॥
पुण्ययोग भयो सुर अवतारा । फिरत फिरत इह जगतमझारा॥
आवत काल देख थर हरना । एते पर एता क्या करना ॥१३॥
सुरमंदिर अरु सुखसंयोगा । निशदिन सुख संपतिके भोगा ॥
छिनइक माहिं तहांते टरना । एते पर एता क्या करना॥१४ ॥
वहु जन्मांतर पुण्य कमाया । तव कहुं लही मनुष परजाया ॥
तामें लग्यो जरा गद मरना । एते पर एता क्या करना ॥१५॥
धन जोवन सवही ठकुराई । कर्म योगतैं नौनिधि पाई ॥
सो स्वपनांतरकासा वरना । एते पर एता क्या करना ॥१६
निशदिन विषय भोग लपटाना। समुझै नाहिं कौन गति जाना॥
है छिन काल आयुको चरना । एते पर एता क्या करना ॥१७॥
इन विषयन केतो दुख दीनों । तवहूं तू तेही रस भीनों ॥
नेक विवेक हृदै नहिं धरना । एतेपर एता क्या करना ॥१८॥
परसंगति केतो दुख पावै । तवहू तोकों लाज न आवै ॥
वासन संग नीर ज्यों जरना । एते पर एता क्या करना॥१९॥
देव धर्म गुरु ग्रंथ न जानें । स्वपरविवेक हृदै नहिं आनें ॥
क्यों होवै भवसागर तरना । एते पर एता क्या करना ॥२०

पाचों इन्द्री अति वटपारे । परम धर्म धन मूसन हारे ॥
खाहिं पियहि एतो दुख भरना । एते पर एता क्या करना ॥२१
सिद्ध समान न जाने आपा । तात तोहि लगत है पापा॥
खोल देख घट पटहिं उघरना । एते पर एता क्या करना॥२२॥
श्रीजिनवचन अमल रस वानी । पीवहिं क्यों नहिं मूढ अज्ञानी॥
जातें जन्म जरा मृत हरना । एते पर एता क्या करना॥२३॥
जो चेतै तो है यह दावो । नाही वैठे मगल गावो ॥
फिर यह नरभव वृक्षन फरना । एते पर एता क्या करना॥२४॥
'भैया' विनवहि वारवारा । चेतन चेत भलो अवतारा ॥
है दूलह शिव नारी वरना । एते पर एता क्या करना ॥२५

दोहा

ज्ञानमयी दर्शन नमयी, चारितमयी स्वभाय ॥
सो परमातम ध्याइये, यहै सु मोक्ष उपाय ॥ २६ ॥
सत्रहसो इकतालके, मारगशिर शितपक्ष ॥
तिथि शकर गन लीजिये, श्रीरविवार प्रतक्ष ॥ २७ ॥

इति उपदेशपचीसिका

अथ नदीश्वरद्वीपकी जयमाला ।

दोहा

वंदों श्रीजिनदेवको, अर वदो जिन वैन ॥
जस प्रसाद इह जीवके, प्रगट होंय निज नैन ॥ १ ॥
श्रीनदीश्वर द्वीपकी, महिमा अगम अपार ॥
कह तास जय मालिका, जिनमतके अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई.

एक अरव अरु त्रेसठ कोड़ि । लख चौरासी तापरि जोड़ि ॥
एते योजन महा प्रमान । अष्टमद्वीप नंदीश्वर जान ॥२॥
तामहि चहुं दिशि शिखरि उतंग । तिनको मान कहुं सरवंग ॥
दिशि पूरव गिरि तेरह सही । ताकी उपमा जाय न कही ॥४॥
मध्य एक अंजनके रंग । शिखरि उतंग वन्यो सरवंग ॥
सहस चौरासी योजन मान । धूपरवत देख्यो भगवान ॥ ५ ॥
ताके चहुं दिशि परवत चार । उज्वल वरन महा सुखकार ॥
चौसठि सहस उतंग जु होय । दधिमुख नाम कहावे सोय ६
इक इक दधि मुखपरवत तास । द्वै द्वै रतिकर अचल निवास ॥
इक इक अरुण वरन गिरि मान । सहस चवालिस ऊर्द्ध प्रमान ॥७
इहविधि तेरह गिरिवर गने । ता परि चैत्य अकृत्रिम वने ॥
इक इक गिरिपर इक प्रासाद । ताकी रचना वनी अनाद ॥ ८ ॥
इक जिनमंदिरको विस्तार । सुनहु भविक परमागम सार ॥
गिरिको शिखर वरत तिहिरूप । रत्नमयी प्रासाद अनूप ॥ ९ ॥
इक चैत्यालय विंव प्रमान । इकसो आठ अनूपम जान ॥
रत्नमणी सुंदर आकार । धनुष पंचसो ऊर्ध्व उदार ॥१०॥
इम तेरह पूरव दिशि कहे । ताके भेद जिनागम लहे ॥
छप्पनसो सोरह विँव सवै । ताकी भावन भाऊं अवै ॥ ११॥
अनँत ज्ञान जो आतमराम । सो प्रगटहि इह मुद्रा धाम ॥
लोक अलीक विलोकन हार । ता परदेशनि यह आकार ॥१२
अनँत काललों यही स्वरूप । सिद्धालय राजै चिद्रूप ॥

---

(१) मंदिर.

सुख अनत प्रगटै इहि ध्यान । तातैं जिनप्रतिमा परधान ॥ १३
जिनप्रतिमा जिनवरणे कही । जिन सादृशमें अतर नही ॥
सब सुरवृद नदीश्वर जाय । पूजहि तहा विविध धर भाय १४
'भैया' नितप्रति शीस नवाय । वदन करहि परम गुण गाय ॥
इह ध्यावत निज पावत सही । तौ जयमाल नदीश्वर कही १५

इति नदीश्वरजयमाला

अथ बारहभावना लिख्यते ।

चौपाई

पच परम पद वदन करों । मन वच भाव सहित उर धरों ॥
बारह भावन पावन जान । भाऊ आतम गुण पहिचान ॥ १ ॥
थिर नहिं दीखहि नैननि वस्त । देहादिक अरु रूप समस्त ॥
थिर विन नेह कौनसों करों । अथिर देख ममता परिहरों ॥ २
असरन तोहि सरन नहिं कोय । तीन लोकमहिं दृगधर जोय ॥
कोऊ न तेरो राखन हार । कर्मनवस चेतन निरधार ॥ ३ ॥
अर ससार भावना एह । परद्रव्यनसों कीजे नेह ॥
तू चेतन वे जड सरवग । तातैं तजहु परायो सग ॥ ४ ॥
एक जीव तू आप त्रिकाल । ऊरध मध्य भवन पाताल ॥
दूजो कोऊ न तेरी साथ । सदा अकेलो फिरहि अनाथ ॥ ५
भिन्न सदा पुद्गलतैं रहै । भर्मबुद्धितैं जडता गहै ॥
वे रूपी पुद्गलके खध । तू चिनमूरत सदा अवध ॥ ६ ॥
अशुचि देख देहादिक अग । कौन कुवस्तु लगी तो संग ॥
अस्थी मास रुधिर गद गेह । मलमूतन लखि तजहु सनेह ॥ ७ ॥

आस्रव परसों कीजे प्रीत । तातैं वंध वढहि विपरीत ॥
पुद्गल तोहि अपनपो नाहिं । तू चेतन वे जड़ सव आंहि ॥ ८॥
संवर परको रोकन भाव । सुख होवेको यही उपाव ॥
आवे नहीं नये जहां कर्म । पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म ॥९॥
थिति पूरी ह्वै खिर खिर जाहिं । निर्जरभाव अधिक अधिकाहिं ॥
निर्मल होय चिदानंद आप । मिटै सहज परसंग मिलाप॥१०
लोकमांहि तेरो कछु नाहिं । लोक आन तुम आन लखांहिं ॥
वह षट दर्शनको सव धाम । तू चिनमूरति आतम राम॥ ११
दुर्लभ पर दर्वनिको भाव । सो तोहि दुर्लभ है सुनि राव ॥
जो तेरो है ज्ञान अनंत । सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत ॥१२
धर्म सुआप स्वभावहि जान । आप स्वभाव धर्म सोई मान ॥
जव वह धर्म प्रगट तोहि होय । तव परमातम पद लखि सोय१३
येही वारह भावन सार । तीर्थंकर भावहिं निरधार ॥
ह्वै वैराग महाव्रत लेहिं । तव भवभ्रमन जलांजुलि देहिं१४
'भैया' भावहु भाव अनूप । भावत होहु चरित शिवभूप ॥
सुख अनंत विलसहु निशदीस । इम भाख्यो स्वामी जगदीस१५

इति वारह भावना.

अथ कर्मबंधके दशभेद लिख्यते ।

दोहा.

श्री जिनचरणाम्बुजप्रतैं, वंदहुं शीस नवाय ॥
कहूं कर्मके वंधको, भेद भाव समुझाय ॥ १ ॥
एक प्रकृति दश विधि वँधै, भिन्नभिन्न तस नाम ॥

गुण लच्छन बरनन सुनें, जागहि आतम राम ॥ २ ॥
वन्धसमुच्चय भेद ये, उत्कर्षण जु वढाय ॥
शकरमनै औरहि लसै, अपकर्षण घट जाय॥ ३ ॥
लावे निकट उदीरणा, सत्ता उदय करत ॥
उपसम ओर निधत्तं लखि, कर्म निकाचित अत ॥ ४ ॥

चौपाई

मिथ्या अव्रत योग कषाय । वध होय चहु परत आय ॥
थिति अनु भाग प्रकृति परदेश । ए वधन विधि भेद विशेश ॥५॥
प्रथमहि वध प्रकृति जो होय । समुचवध कहावै सोय ॥
दूजो उत्कर्षण वध -एह । थितहिं वढाय करै बहु जेह॥६
तीजो सक्रमण जु कहाय । औरकी ओर प्रकृति हो जाय ॥
गतिविन और करमपै कही । वध उदय नाना विधि लही॥७॥
चौथो अपकर्षण इम थाय । वध घटे अथवा गल जाय ॥
पचम करन उदीरण हेर । ल्यावै निकट उदयमें घेर ॥ ८॥
सत्ता अपनी लिये वसत । षष्टम भेद यहै निरतत ॥
सप्तम भेद उदय जे देय । थिति पूरी कर वध खिरेय ॥९॥
अष्टम उपसम नाम कहाय । जहा उदीरन वल न वसाय ॥
नवमों भेद निधत्त जु सोय । उदीरन सक्रमणन होय ॥१०॥
दशमों वध निकाचित जहा । थिति नहीं वढै घटै नहिं तहा ॥
उदीरण सक्रमणन और । जिम वध्यो रस दे तिन ठौर॥११
ए दश भेद जिनागम लहे । गोमठसार प्रथमें कहे ॥
समझ धार जे उर माहिं । तिनके चित्त विकलता नाहि१२
गुण थानक पै जहा जो होय । आगम देख निलोकहु सोय ॥
सव सशय जियके मिट जाय । निर्मल होय चिदातमराय १३

चित्तमें चितारिये। उदैदेव प्रभादेव श्रीउदंक प्रश्नकीर्त्त, जयकीर्त्त पूर्णवुद्धि हिरदै निहारिये॥ निःकषाय विमलप्रभ विपुल निर्मल चित्र, गुप्त समाधिगुप्त नाम नित धारिये। स्वयंभू कंदर्प जयनाथ विमलसु देवपाल अनंतवीर्य चौवीसी आगम जुहारिये॥ ३॥

पंच पर्म इष्ट सार महामंत्र नमस्कार, जपै जीव लहै पार सागर भौ तीरको। रिद्धको भरै भंडार सिद्धको सुपंथ सार, लब्धिको अनोपचार सार शुद्ध हीरको॥ कष्टको करै निवार दुष्ट दूर होंहिं छार, पुष्ट पर्म ब्रह्मद्वार सुष्टु शुद्ध धीरको। पापको करै प्रहार अष्ट कर्म जैतवार, भव्यको यहै अधार ज्ञान वल वीरको॥४

महा मंत्र यहै सार पंच पर्म नमस्कार, भौ जल उतारै पार भव्यको अधार है। विघ्नको विनाश करै, पापकर्म नाश करै। आतम प्रकाश करै पूरवको सार है॥ दुख चकचूर करै, दुर्जनको दूर करै, सुख भरपूर करै परम उदार है। तिहूं लोक तारनको आतमा सुधारनको, ज्ञान विस्तारनको यहै नमस्कार है॥५॥

जीव द्रव्य एक देख्यो दूसरो अजीव द्रव्य, गुण परजाय लिये सबै विद्यमान है। देख्यो ज्ञान मधि जिनवर श्री वृषभ नाथ, ताके भेद कहते अनेकही विनान है॥ देवनके इन्द्र जिते तिनके समूह मिले, वंदै नित्य भाव धर सदा ये विधान है। ताको सदा हमहू प्रणाम शीस नाय करैं, जाके गुणधारे मोक्ष मारग निदान है॥ ६॥

अनङ्गशेखर (३२ वर्ण. लघु गुरुके क्रमसे)

नमामि पंच नामको सुध्याय आप धामको, विडार मोह कामको सुरामकी रटा लई। कुराग दोष टारकें कषायको निवारकें,

स्वरूप शुद्ध धारिके निहारकें सुधामई ॥ अनत ज्ञान भानसो कि चेतना निधानसो, कि सिद्धकी समानसो सुधार ठीक यों दई । सुबुद्धि ऐसें आयके अवधको दिखायके, चटाक चित्त लायकें झटाक झूठ रव्वै गई ॥ ७ ॥

प्रकृत्ति आदि सातकी जहा तें ताहि घातकी, तौं चिंता कौन वातकी मिथ्यात्वकी गढी ढई । लखी सुजात गातकी शरीर सात धातकी, सुयामें काहु भातिकी न चेतना कहू भई ॥ अधेरी मेट रातकी सुजानी वात प्रातकी, प्रवानी जीव जातिकी सुआप चेतना मई । सुवुद्धि ऐसें आयकें अवधको दिखायकें, चटाक चित्त लायके झटाक झूठ रव्वै गई ॥ ८ ॥

कटाक कर्म तोरके छटाक गाठि छोरके, पटाक पाप मोरके तटाक दै मृपा गई । चटाक चिह्न जानिके, झटाक हीय आनके नटाकि नृत्य भानके खटाकि नै खरी ठई ॥ घटाके घोर फारिके, तटाक वध टारके अटाके राम धारकें रटाक रामकी जई । गटाक शुद्ध पानको हटाकि आन आनको, घटाकि आप थानको सटाक स्यौंवधू लई ॥ ९ ॥

मनहरण (३१ वर्ण)

केऊ फिरं कानफटा, केऊ शीम धरैं जटा, केऊ लिये भस्म वटा भूले भटकत है । केऊ तज जाहिं अटा, केऊ घेरें चेरी चटा, केऊ पढैं पट केऊ धूम गटकत हैं ॥ केऊ तन किये लटा, केऊ महा दीसं कटा केऊ, तरतटा केऊ रसा लटकत हैं । भ्रम भावतें न हटा हिये काम नाही घटा, विषै सुख रटा साथ हाथ पटकत है ॥ १०

छप्पय

दुविधि परिग्रह त्याग, त्याग पुनि प्रकृति पच दश ।

गहहिं महा व्रत भार, लहहिं निज सार शुद्ध रस ॥
धरहिं सुध्यान प्रधान, ज्ञान अम्रत रस चक्खहिं ।
सहहिं परीषह जोर, व्रत्त निज नीके रक्खहिं ॥
पुनि चढहिं श्रेणि गुण थान पथ, केवल पद प्रापति करहिं।
तस चरण कमल वंदन करत, पाप पुंज पंकति हरहिं ॥११॥

कवित्त. (मनहरण)

भरमकी रीति भानी परमसों प्रीति ठानी, धरमकी वात जानी ध्यावत घरी घरी । जिनकी बखानी वानी सोई उर नीके आनी, निहचै ठहरानी दृढ ह्वैकें खरी खरी ॥ निज निधि पहिचानी तव भयौ ब्रह्म ज्ञानी, शिव लोककी निशानी आपमें धरी धरी । भौ थिति विलानी अरि सत्ता जु हठानी, तव भयो शुद्ध प्रानी जिन वैसी जे करी करी ॥ १२ ॥

तीनसै तेताल राजु लोकको प्रमान कह्यो, घनाकार गनतीको ऐसो उर आनिये । ऊंचो राजू चवदह देख्यो जिन राज जूने, तामे राजू एक पोलो पवन प्रवानिये ॥ तामें है निगोद राशि भरी घृतघट जैसें, उभै भेद ताके नित इतर सु जानिये । तामैं सों निकसि व्यवहार राशि चढै जीव, केई होहिं सिद्ध केई जगमें बखानिये ॥ १३ ॥

छप्पय.

जो जानहिं सो जीव, जीव विन और न जानें ।
जो मानहिं सो जीव, जीव विन और न मानें ॥
जो देखहि सो जीव, जीव विन और न देखै ।
जो जीवहि सो जीव, जीव गुण यहै विसेखै ॥

महिमा निधान अनुभूत युत, गुण अनत निर्मल लसै ।
सो जीव द्रव्य पेखत भवि, सिद्ध खेत सहजहिं वसै॥१४॥

कवित्त

अचेतनकी देहरी न कीजे तासों नेहरी, ओगुनकी गेहरी परम दुख भरी है। याहीके सनेहरी न आवें कर्म छेहरी सु, पावें दुख तेहरी जे याकी प्रीति करी है ॥ अनादि लगी जेहरी जु देखतही खेहरी तू, यामें कहा लेहरी कुरोगनकी दरी है। काम गजकेहरी सुराग द्वेषके हरी तू, तामें दृग देहरी जो मिथ्यामति हरी है ॥ १५ ॥

सवैया

ज्ञान प्रकाश भयो जिनदेवको, इद्रसु आय मिले जु तहाई ।
रूपसुवर्ण महाद्युति रत्नके, कोट रचे त्रै अनादिकी नाई ॥
वीस हजार जु पैडी विराजत, तांप चढ्यो तिरलोक गुसाई ।
देखके लोक कहे अवनीपर, सिधु चढ्यो असमानके ताई॥१६॥
नीव धरे शिवमदिरकी, उरमें कितनी उकतें उपजावें ।
ज्ञानप्रकाश करें अति निर्मल, ऊरधकी मति यों चित लावे ॥
इन्द्रिन जीतकें प्रीति करे, परमेश्वरसों मन चाह लगावे ।
देखे निहार विचार यहै, करमें करनी महाराज कहावे ॥ १७ ॥
तोहि इहा रहिवो कहु केतक, पथमे प्रीति किये सुख स्वै है ।
पोषत जाहिं पियारीसु जानकें, सो तौ नियारीये होतन छै है ॥
तू इम जानत है तनही मम, सो भ्रम दूर करो दुख द्वै है ।
देह सनेह करै मत हस, गई कर जाहिं निवाहन ह्वै है ॥ १८ ॥

कवित्त

मृग मीन सुजनसो अकारन वैर करें, ऐसे जगमाहि जीव

विधना बनाये हैं । काननमें तृन खांहिं दूर जल पीन जांहिं, बसै वनमाहिं ताहि मारनको धाये हैं ॥ जल माहिं मीन रहै काहूसों न कछू कहै, ताको जाय पापी जीव नाहक सताये हैं । सज्जन सन्तोष धरै काहूसों न वैर करै, ताको देख दुष्ट जीव क्रोध उपजाये हैं ॥ १९ ॥

अहिक्षितिपार्श्वनाथकी स्तुति कवित्त.

आनंदको कंद किधों पूनमको चंद किधों, देखिये दिनंद ऐसो नंद अश्वसेनको । करमको हरै फंद भ्रमको करै निकंद, चूरै दुख द्वंद सुख पूरै महा चैनको ॥ सेवत सुरिंद गुनगावत नरिंद भैया, ध्यावत मुनिंद तेहू पावैं सुख ऐनको । ऐसो जिन चंद करै छिनमें सुछंद सुतौ, ऐक्षितको इंद पार्श्व पूजों प्रभु जैनको ॥ २० ॥

कोऊ कहैं सूरसोमदेव है प्रत्यक्ष दोऊ, कोउ कहै रामचंद्र राखै आवागौनसों । कोऊ कहै ब्रह्मा बडो सृष्टिको करैया यहै, कोऊ कहै महादेव उपज्यो न जोनसों ॥ कोऊ कहै कृष्ण सब जीव प्रतिपाल करै, कोउ लागि रहे हैं भवानीजीके भौनसों । वही उपख्यान साचो देखिये जहाँन बीचि, वेश्याघर पूत भयो बाप कहै कौनसों ॥ २१ ॥

वीतराग नामसेती काम सब होंहि नीके, वीतराग नामसेती धामधन भरिये । वीतराग नामसेती विघन विलाय जाँय, वीत

(१) यह कवित्त आगे सुपथ कुपथ पचीसीमें भी आया है. इसका कारण ऐसा मालूम होता है कि इस सुबुद्धि चौवीसीके आदिमें भूतभविष्यत दो चौवीसीके नमस्कारके दो कवित्त हैं. इनके बीचमे वर्त्तमान चौवीसीको नमस्कार करनेका कवित्त भी भैयाजीने अवश्य बनाया होगा परन्तु लेखकोंकी भूलसे कदाचित छुट जानेसे किसी एक महात्माने यह २१ वाँ कवित्त रखकर २४ की सख्या पूरी की होगी अन्यथा दोजगहँ एकही कवित्तका होना असभव है ।

राग नामसेती भवसिंधु तरिये ॥ वीतराग नामसेती परम पवित्र हूजे, वीतराग नामसेती शिववधू वरिये। वीतराग नामसम हितू नाहिं दूजो कोऊ, वीतराग नाम नित हिरदैमें धरिये ॥२२॥

श्रीराणापुरमंदिरका वर्णन–

देख जिनमुद्रा निजरूपको स्वरूप गहै, रागद्वेषमोहको वहाय डारै पलमें। लोकालोकव्यापी ब्रह्म कर्मसों अवध वेद, सिद्धको स्वभाव सीख ध्यावे शुद्ध थलमें ॥ ऐसे वीतरागजूके बिंब हैं विराजमान, भव्यजीव लहै ज्ञान चेतनके दलमें । माझनी ओ मंडपकी रचना अनूप बनी, राणापुर रत्न सम देख्यो पुण्य फलमें ॥ २३ ॥

सुबुधि प्रकाशमें सु आतम विलासमें सु, थिरता अभ्यासमें सुज्ञानको निवास है। ऊरधकी रीतिमें जिनेशकी प्रतीतिमें सु, कर्मनकी जीतमें अनेक सुख भास है ॥ चिदानंद ध्यावतही निज पद पावतही, द्रव्यके लखावतही देख्यो सब पास है । वीतराग वानी कहै सदा ब्रह्म ऐसें भास, सुखमें सदा निवास पूरन प्रकाश है ॥ २४ ॥

दोहा

यह सुबुद्धि चौवीसिका, रची भगवतीदास ॥
जे नर पढहिं विवेकसों, ते पावहिं शिववास ॥ २५ ॥

इति श्रीसुबुद्धि चौवीसी

अथ अकृत्रिमचैत्यालयकी जयमाला।

चौपाई

प्रणमहु परम देवके पाय। मन वच भाव सहित शिरनाय ॥

अकृत्रिम जिनमंदिर जहां। नितप्रति वंदन कीजे तहां॥ १ ॥
प्रथम पताल लोकविस्तार। दश जातिनके देव कुमार ॥
तिनके भवन भवन प्रति जोय। एक एक जिनमंदिर होय ॥ २ ॥
असुर कुमारनके परमान। चौसठ लाख चैत्य भगवान ॥
नाग कुमारनके इम भाख। जिनमंदिर चौरासी लाख ॥ ३ ॥
हेम कुमारनके परतक्ष। जिनमंदिर हैं वहतर लक्ष ॥
विदुत कुमारनके भवनाल। लक्ष छिहत्तर नमूं त्रिकाल ॥ ४ ॥
सुपर्ण कुमारनके सव जान। लक्ष वहत्तर चैत्य प्रमान ॥
अगनि कुमारनके प्रासाद। लक्ष छिहत्तर वने अनाद ॥ ५ ॥
वात कुमार भवन जिनगेह। लक्ष छिहत्तर वंदहुं तेह ॥
उदधि कुमार अनोपमधाम। लक्ष छिहत्तर करूं प्रणाम ॥ ६ ॥
दीप कुमार देवके नांव। लक्ष छिहत्तर नमुं तिहँ ठांव ॥
लक्ष छयानवें दिक्क कुमार। जिनमंदिर सो है जैकार ॥ ७ ॥
ये दश भवन कोटि जहँ सात। लक्ष वहत्तर कहे विख्यात ॥
तिन जिनमंदिरको त्रैकाल। वंदन करूं भवन पाताल ॥ ८ ॥
मध्य लोक जिन चैत्य प्रमान। तिनप्रति वंदों मनधर ध्यान ॥
पंचमेरु अस्सी जिन भौन। तिनकी महिमा वरने कौन ॥ ९ ॥
वीस वहुर गजदंत निहार। तहां नमूं जिन चैत्य चितार ॥
तीस कुलाचल पर्वत शीस। जिन मंदिर वंदों निशदीस ॥१०॥
विजयारध पर्वतपर कहे। जिन मंदिर सौशत्तर लहे ॥
शुरद्रुमन दश चैत्य प्रमान। वंदन करों जोर जुगपान ॥ ११ ॥
श्रीवक्षार गिरहिं उर धरों। चैत्य असी नित वंदन करों ॥
मनुषोत्तर परवत चहुं ओर। नमहूं चार चैत्य करजोर ॥ १२ ॥

और कहूं जिनमदिर थान । इक्ष्याकारहिं चार प्रमान ॥
कुडलगिरिकी महिमा सार । चैत्य जु चार नमूं निरधार ॥ १३ ॥
रुचिकनाम गिरिमहा वखान। चैत्य जु चार नमूं उर आन ॥
नदीश्वर बावन गिरराव । बावन चैत्य नमहु धरभाव ॥ १४॥
मध्यलोक भविके मन भावन। चैत्य चारसौ और अठावन ॥
तिन जिन मदिरको निशदीस। वदन करों नाय निज शीस ॥ १५॥
व्यतर जाति असखित देव । चैत्य असख्य नमहु इह भेव ॥
ज्योतिष सख्यातैं अधिकाय । चैत्य असख्य नमूं चितलाय ॥१६॥
अब सुरलोक कहूं परकाश । जाके नमत जाहिं अघनाश ॥
प्रथम स्वर्ग सौधर्म विमान । लाख वतीस नमूं तिहँ थान ॥ १७॥
दूजो उत्तर श्रेणि इशान । लक्ष्य अठाइस चैत्य निधान ॥
तीजो सनत कुमार कहाय । बारह लाख नमूं धर भाय ॥१८॥
चौथो स्वर्ग महेन्द्र सुठामि । लाख आठ जिन चैत्य नमामि ॥
ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर दोय । लाख च्यार जिन मदिर होय ॥१९
लांतव और कहूं कापिष्ट । सहस पचास नमूं उत सिष्ट ॥
शुक्र महा शुक्र अभिराम। चालिस सहँसनि करू प्रणाम २०
सतार सहस्रार सुर लोक । षट सहस्र चरनन द्यौं धोक ॥
आनत प्राण आरण अच्युत्त । चार स्वर्गसे सात सयुत्त ॥२१॥
प्रथमहि ग्रैव चैत्य जिन देव । इकसो ग्यारह कीजे सेव ॥
मध्यग्रैव एकसो सात । ताकी महिमा जग विख्यात २२
उपरि ग्रैव निन्वे अर एक । ताहि नमूं धर परम विवेक ॥
नव नवउत्तर नव प्रासाद । ताहि नमूं तजिके परमाद ॥२३॥
सबके उपर पच विमान । ताँ जिनचैत्य नमूं धरध्यान ॥
सब सुरलोकनकी मरजाद । कही कथन जिन वचन अनाद२४

लख चौरासी मंदिर दीस । सहस सत्याणव अरु तेईस ॥
तीन लोक जिन भवन निहार । तिनकी ठीक कहूं उरधार ॥२५॥
आठ कोड अरु छप्पन लाख । सहस सत्याणव ऊपर भाख ॥
चहुँसे इक्यासी जिन भौन । ताहि नमूं करिकें चिन्तौन ॥२६
धनुष पंचसो विंवप्रमान । इकसौ आठ चैत्य प्रति जान ॥
नव अरव्व अरु कोटि पचीस । त्रेपन लाख अधिक पुनिदीस २७
सहस सताईस नवसे मान । अरु अडतालीस विंव प्रमान ॥
एती जिन प्रतिमा गन लीजे । तिनको नमस्कार नित कीजे २८
जिनप्रतिमा जिनवरके भेश । रंचक फेर न कह्यो जिनेश ॥
जो जिनप्रतिमा सो जिनदेव । यहै विचार करै भवि सेव ॥२९
अनँत चतुष्टय आदि अपार । गुण प्रगटै इहि रूप मझार ॥
तातैं भविजन शीस नवाय । वंदन करहिं योग त्रयलाय॥३०॥
अकृत्रिम अरु कृत्रिम दोय । जिन प्रतिमा वंदो नित सोय ॥
वारंवार शीस निज नाय । वंदन करहुं जिनेश्वर पाय ३१
सत्रहसै पैंतालिस सार । भादों सुदि चउदश गुरुवार ॥
रचना कही जिनागम पाय । जैजैजै त्रिभुवनपतिराय ॥३२॥

दोहा.

दक्षलीन गुनको निरख, मूरख मीठे वैन ॥
'भैया' जिनवानी सुने, होत सवनको चैन ॥ ३२ ॥

इति श्रीअकृत्रिम चैत्यालयोकी जयमाला.

अथ चवदहगुणस्थानवर्त्तिजीवसंख्यावर्णन लिख्यते.

दोहा.

वीतरागके चरनयुग, वंदों दोउ करजोर ॥
कहूं जीव गुणथानके, अष्टकर्म दलभोर ॥ १ ॥

जिहँ चलवो जिहँ पथको, सो ढूढे वहु साथ ॥
तैसें पथिक मोक्षके, ढूढ लेहि जिननाथ ॥ २ ॥

चौपाई

चौदह गुण थानक परमान । जियकी सख्या कहौ वखान ॥
इहि मगचलै मुकत सो होय । रहै अर्द्ध पुद्गललों कोय ॥ ३ ॥
प्रथम मिथ्यात्व नाम गुणथान । जीव अनतानत प्रमान ॥
तिनके पच भेद विस्तार । वरनो जिन आगम अनुसार ४॥
एक पक्ष जो गहिकै रहैं । दूजी नय नाहीं सरदहे ॥
वो मिथ्याती मूरख जीव । ज्ञानहीन ते कहे सदीव ॥ ५ ॥
जिन आगमके शब्द उथाप । थापै निजमति वचन अलाप ॥
सुजस हेत गुरुतर मनधरै । सो विपरीती भवदुख भरै ॥६॥
देव कुदेव न जाने भेव । सुगुरु कुगुरकी एकहि सेव ॥
नमै भगतिसों विना विवेक । विनय मिथ्याती जीव अनेक॥७॥
भाति भातिके विकलप गहै । जीव तत्त्व नाहीं सरदहै ॥
शून्य हिये डोलै हैरान । सो मिथ्याती सशयवान ॥ ८ ॥
गहल रूप वरतै परिणाम । दुखित महान न पावै धाम ॥
जाको सुरति होय नहि रच । ज्ञानहीन मिथ्याती पच ॥ ९ ॥

दोहा

इनहि पच मिथ्यात्व वश, जीव वसै जगमाहि ॥
इनहि त्याग ऊपर चढै, ते शिवपथिक कहाहि ॥ १० ॥
सासादन गुन थानसों, अर अयोग परजत ॥
उत्कृष्टी सख्या कहू, भाखी श्रीभगवन्त ॥ ११ ॥

चौपाई

सासादन गुणथानक नाम । वावन कोटि जीव तिहँ ठाम ॥

एक अरब अरु कोटि जु चार। मिश्रनाम तीजै उरधार ॥१२॥
अव्रत है चौथो गुणवंत। सात अरब जिय तहां वसंत ॥
पंचम देशविरतपुर कहे। तेरह कोटि जीव जहँ लहे॥१३॥
पंच कोटि अरु त्राणवलाख। सहस अठ्याणवें ऊपरि भाख ॥
द्वयसो छह जिय छट्ठे थान। परमादी मुनि कहे बखान॥१४॥
अप्रमत्त सप्तम परतक्ष। कोटि दोय अरु छयानव लक्ष॥
सहस निन्याणव इकसो तीन। एते मुनि संयम परवीन ॥१५॥
उपसम श्रेणि चढै गुणवान। अष्टम नवम दशम गुण थान।
द्वै द्वै सौं निन्याणव कहे। अठ सत्ताणव सब सरदहे ॥१६॥
अष्टम क्षपक पंथ जिय कोय। शतक पंच अठ्ठाणव होय ॥
नवमें गुण थानक जिय जवै। शतक पंच अठ्ठाणव सवैं ॥१७॥
दशमें गुण थानक मुनिराय। शतक पंच अठ्ठाणव थाय ॥
एकादश श्रेणी उपशंत। द्वैसौ अरु निन्याणव तंत ॥१८॥
द्वादशमों गुण क्षीण कषाय। पंच अठाणव सब मुनिराय ॥
अब तेरहमें केवल ज्ञान। तिनकी संख्या कहूं बखान॥१९
लाख आठ केवलि जिन सुनो। सहस अठाणव ऊपर गुनो ॥
शतक पंच अरु ऊपर दोय। एते श्री केवलि जिन होय॥२०
अब चौदम अयोग गुण थान। पंच अठवाण सब निर्वान ॥
तेरह गुण थानक जिय लहूं। सबकी संख्या एकहि कहूं॥२१॥
आठ अरब सतहत्तर कोड़। लाख निन्याणव ऊपर जोड़ ॥
सहस निन्याणव नव सौ जान। अरु सत्याणव सब परमान॥२२॥
जब लौं जिय इह थानक माहिं। तब लौं जिय जग वासि कहांहिं॥
इनहि उलंघि मुकतिमें जांहिं। काल अनंतहि तहां रहाहिं॥२३॥
सुख अनंत विलसहिं तिहँ थान। इहि विधि भाख्यो श्रीभगवान॥

भैया सिद्ध समान निहार । निजघट माहि वहै पद धार॥२४॥
सवत सत्रह सैंतालीस । मारगसिर दशमी शुभ दीस ॥
मगल करन महा सुखधाम । सब सिद्धनप्रति करू प्रणाम ॥२५॥

इति श्रीशिवपथ पचीसिका ।

अथ पन्द्रह पात्रकी चौपाई लिख्यते

दोहा

नमहु देव अरहतको, नमहु सिद्ध शिवराय ॥
नमहु साधुके चरनको, योग त्रिविधिके लाय ॥ १ ॥
पात्र कुपात्र अपात्रके, पद्रह भेद विचार ॥
ताकी कछु रचना कहू, जिन आगम अनुसार ॥ २ ॥
तीन पात्र उत्तम महा, मध्यम तीन बखान ॥
तीन पात्र पुनि जघन हैं, ते लीजे पहिचान ॥ ३ ॥
तीन कुपात्र प्रसिद्ध हैं, अरु अपात्र पुनि तीन ॥
ये सब पन्द्रह भेद हैं, जानहु ज्ञान प्रवीन ॥ ४ ॥

चौपाई

उत्तम माहि महा अरु श्रेष्ठ । तीर्थकर कहिये उत्कृष्ट ॥
मुनि मुद्रामें लेहि अहार । वह दातार लहै भव पार ॥५॥
उत्तम माहिं मध्यके अग । श्रीगणधर वरने सरबग ॥
चार ज्ञान सयुक्त प्रधान । द्वादशागके करहि बखान ॥६॥
उत्तम माहि जघन्य जु होय । सामान्यहि मुनि वरने सोय ॥
दर्वित भावित शुद्ध अनूप । परम दयाल दिगम्बर रूप ॥७॥
मध्यम पात्र अणुव्रत धार । तिनके तीन भेद विस्तार ॥
दवित भावित गुण सयुक्त । रहै पाप किरियासो मुक्त ॥८॥

उत्तम ऐलक श्रावक पास । एक लंगोटी परिग्रह जास ॥
मठ मंडपमें करहि निवास । एकादशम प्रतिज्ञा भास ॥९॥
दूजो श्रावक क्षुल्लक नाम । कुछ अधिको परिग्रह जिहि ठाम॥
पीछी और कमंडल धरै । मध्यम पात्र यही गुण वरै ॥१०॥
अरु दश प्रतिमा धारी जेह । लघु पात्रनमें वरने तेह ॥
इह विधि यह पंचम गुण थान । मध्यम पात्र भेद परवान ॥११॥
अब लघु पात्र कहूं समुझाय । उत्तम मध्यम जघन कहाय ॥
उत्तम क्षायिक समकितवंत । जिनके भावनको नहि अंत॥१२॥
मध्यम पात्र सु उपसम धार । जिनकी महिमा अगम अपार ॥
वेदक समकित जाके होय । लघुपात्रनमें कहिये सोय ॥१३॥
तीन कुपात्र मिथ्याती जीव । द्रव्यलिंग जो धरहिं सदीव ॥
ज्ञान विना करनी वहु करै । भ्रमि भ्रमि भवसागरमें परै॥१४
मुनिकी सम मुद्रा निरधार । सहै परीसह वहु परकार ॥
जीव स्वरूप न जाने भेव । द्रव्य लिंगी मुनि उत्तम एव॥१५
मध्यम पात्र सु श्रावक भेष । दर्वित किरिया करै विशेष ॥
अन्तर शून्य न आतम ज्ञान । मानत है निजको गुणवान ॥१६
जघन्य कुपात्र कहूं विख्यात । जाके उर वरतै मिथ्यात ॥
समकितकीसी ऊपर रीति । अंतर सत्य नही परतीति ॥१७॥
कहूं अपात्र त्रहूं विधि भ्रष्ट । दर्वित भावित क्रिया अनिष्ट ॥
परिग्रहवंत कहावै साधु । मिथ्यामत भाखै अपराध ॥१८॥
श्रावक आप कहै जगमाहिं । श्रावकके गुण एकहु नाहिं ॥
भक्ष्याभक्ष्य न जाने भेद । मध्य अपात्र करै वहु खेद ॥१९॥
जघन अपात्र यहै विरतंत । कहै आपको समकितवंत ॥
निहचै अरु नाहीं व्यवहार । दर्वित भावित दुहुं विधि छार॥२०

दर्वित गुण समकितके जेह। ग्रथनमें बहु वरने तेह॥
तिहँ माफिक नाही जिहँ चाल। ते मिथ्याती जीव त्रिकाल॥२१॥
भावित समकित जीव सुभाय। सो निहचैं जानैं मुनिराय॥
कै जानै जो वेदै जीव। ऐसें गणधर कहैं सदीव॥२२॥

दोहा

इहविधि पन्द्रह पात्रके, गुण निरखें गुणवत॥
यथा अवस्थित जानके, धारहि हिरदै सत॥ २३॥
निज स्वभाव रसलीन जे, ते पहुँचे शिव ओर।
मिथ्याती भटकत फिरैं, विनवैं दास किशोर॥ २४॥

इति पन्द्रह पात्रकी चौपई

अथ ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी लिख्यते

दोहा

असिआउसा जु पचपद, वदौं शीस नवाय॥
कछु ब्रह्मा अरु ब्रह्मकी, कहू कथा गुणगाय॥ १॥
ब्रह्मा ब्रह्मा सब कहैं, ब्रह्मा और न कोय॥
ज्ञान दृष्टि धर देखिये, यह जिय ब्रह्मा होय॥ २॥
ब्रह्माके मुखचार हैं, याहूके मुख चार॥
ऑख नाक रसना श्रवण, देखहु हिये विचार॥ ३॥
ऑख रूपको देखकर, ग्रहण करै निरधार॥
रागीद्वेषी आतमा, सबको स्वादनहार॥ ४॥
नाक सुवास कुवासको, जानत है सब भेद॥
राचै विरचै आतमा, यों मुखबोले वेद॥ ५॥
रसना षटरस भुजती, परी रहै मुख माहि॥
रीझै खीजै आतमा, मुख यातैं ठहराहि॥ ६॥

श्रवण शब्दके ग्रहणको, इष्ट अनिष्ट निवास ॥
मुख तो सोही प्रगट है, सुखदुख चाखै तास ॥ ७ ॥
येही चारों मुख वने, चहुं मुख लेय अहार ॥
तातैं ब्रह्मा देव यह, यही सृष्टि करतार ॥ ८ ॥
हृदय कमलपर बैठिकैं, करत विविधि परिणाम ॥
कर्त्ता नाही कर्मको, ब्रह्मा आतम राम ॥ ९ ॥
चार वेद ब्रह्मा रचे, इनहू तजे कषाय ॥
शुद्ध अवस्था ये भये, यहै विन शुद्धि कहाय ॥ १० ॥
नाना रूप रचैं नये, ब्रह्मा विदित कहान ।
नाम कर्मजिय संगलै, करत अनेक विनान ॥ ११ ॥
ब्रह्मा सोई[1] ब्रह्म[2] है, यामें फेर न रंच ॥
रचना सब याकी करी, तातैं कह्यो बिरंचै[3] ॥ १२ ॥
जेते लक्षण ब्रह्मके, ते ते ब्रह्मा माहि ॥
ब्रह्मा ब्रह्म न अंतरो, यों निश्चय ठहराहि ॥ १३ ॥
जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह वात ॥
'भैया' थोरे कथनमें, कही कथा विख्यात ॥ १४ ॥

इति ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी.

अथ अनित्य पचीसिका लिख्यते ।

कवित्त.

नर लोकनके ईश नाग लोकनके ईश, सुरलोकहूके ईश जाको ध्यान ध्यावही । नाय नाय शीस जाहि वंदत मुनीश नित, अतिशै चौतीस ओ अनंत गुण गावही ॥ कौन करै जाकी

---

१ (ब्रह्मा) (२) जीव (३) ब्रह्मा ।

रीस कर्म अरि डारै पीस, लोकालोक जाहि दीस पथको वताव-ही। ताके चर्ण निश दीश वदै भविनाय शीस, ऐसे जगदीश पुण्यवंत जीन पावही ॥ १ ॥

दोहा

परयो कालके गालमें, मूरख करै गुमान ॥
देहै छिनमें दान जो, निकस जाहिगे प्रान ॥ २ ॥

कवित्त

मिथ्यामत नासवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपापर भास-वेको भानसी वखानी है। छहों द्रव्य जानवेको नधनिधि भान वेको, आपापर ठानवेको परम प्रमानी है ॥ अनुभो वतायवेको जीवके जतायवेको काहु न सतायवेको भव्य उर आनी है। जहाँ तहाँ तारवेको पारके उतारवेको, सुख विस्तारवेको यहै जिनवा-नी है ॥ ३ ॥

आज काल जम लेत है, तू जोरत है दाम ॥
लक्ष कोटि जो धर चलै, ऐहै कौनै काम ॥ ४ ॥

कवित्त

पच वर्ण वसनसो पच वर्ण धूलि शाल, मान थभ सत्य वैन देखे मान नाश है। दयाको निवास सोही वेदीको प्रकाश लसै, रूपेको जु कोट सु तौं नो करम भास है ॥ द्रव्य कर्म नाम हेम कोट मध्य राजत है, रतनको कोट भाव कर्मको विलास है। ताके मध्य चेतन सु आप जगदीस लसै, समोसर्न ज्ञानवान देखे निजपास है ॥ ५ ॥

लागो है जम जीवको, वोलत ऐसें गाजि ॥
आज कालमें लेत हु, कहाँ जाहुगे भाजि ॥ ६ ॥

देखहुरे दच्छ एक वात परतच्छ नयी, अच्छनकी संगति विचच्छन भुलानो है । वस्तु जो अभच्छ ताहि भच्छत है रैन दिन, पोषवेको पच्छ करे मच्छ ज्यों लुभानो है ॥ विनाशीक लच्छ ताहि चच्छुसों विलोकै थिर, वहै जाय गच्छ तव फिरै ज्यों दिवानो है । स्वच्छ निज अच्छको विलच्छकै न देखै पास, मोह जच्छ लागे वच्छ ऐसो भरमानो है ॥ ७ ॥

जगहिं चलाचल देखिये, कोउ सांझ कोउ भोर ॥
लाद लाद कृत कर्मको, ना जानों किहि ओर ॥ ८ ॥

नरदेह पाये कहा पंडित कहाये कहा, तीरथके न्हाये कहा तीर तो न जैहै रे । लच्छिके कमाये कहा अच्छके अघाये कहा, छत्रके धराये कहा छीनता न ऐहै रे ॥ केशके मुंडाये कहा भेषके बनाये कहा, जोवनके आये कहा जराहू न खैहै रे । भ्रमको विलास कहा दुर्जनमें वास कहा, आतम प्रकाश विन पीछें पछितैहै रे ॥ ९ ॥

दुःखित सव संसार है, सुखी लसै नहिं कोय ॥
एक सुखित जिन धर्म है, जिहँ घट परगट होय ॥ १० ॥

नरदेह पाये कहो कहा सिद्धि भई तोहि, विषै सुख सेयें सव सुकृत गमायो है । पंच इन्द्रि दुष्ट तिन्हें पुष्टकर पोष राखै, आय गई जरा तव जोर विललायो है ॥ क्रोध मान माया लोभ चारों चित रोक बैठे, नरक निगोदको संदेसो वेग आयो है । खाय चल्यो गांठको कमाई कोडी एक नाहिं, तोसो मूढ दूसरो न ढूंढ्यो कहूं पायो है ॥ ११ ॥

जाके परिग्रह वहुत है, सो वहु दुखके माहिं ॥
विन परिग्रहके त्यागतें, परसों छूटै नाहिं ॥ १२ ॥

थानी ह्वैके मानी तुम थिरता विशेष इहा, चलवेकी चिंता कछू है कि तोहि नाहिने। जोरत हो लच्छ बहु पाप कर रैन दिन, सो तो परतच्छ पाय चलवो उवाहिने॥ घरीकी खवर नाहिं सामो सौ वरष कीजै, कोन परवीनता विचार देखो काहिने। आतमके काज विना रज सम राज सुख, सुनो महाराज कर कान किन[1] दाहिने॥ १३॥

शयन करत हैं रयनको, कोटिध्वज अरु रंक॥
सुपनेमें दोऊ एकसे, वरतें सदा निशंक॥ १४॥

मानिक कवित्त

नटपुर नाव नगर इक सुंदर, तामें नृत्य होहिं चहु ओर।
नायक मोह नचावत सवको, ल्यावत स्वांग नये नित जोर॥
उछरत गिरत फिरत फिरकी दै, करत नृत्य नानाविधि घोर।
इहि विधि जगत जीव सब नाचत, राचत नाहिं तहां सु किशोर॥१५॥

कर्मनके वस जीव है, जहँ खैंचे तहँ जाय॥
ज्यो हि नचावे त्यों नचे, देख्यो त्रिभुवनराय॥ १६॥

मानिक कवित्त

इंद्र हरे जिहँ चन्द्र हरे, सुरवृन्द्र हरे असुरादिक जोय।
ईश हरे अवनीस हरे, चक्रीश हरे वलि केशव दोय॥
शेष हरे पुर देश हरे सब, भेस हरे थितिकी गत खोय।
दास कहँ शिवरास विना, इहि काल वलीसो वली नहि कोय॥१७

एक धर्म जिनदेवको, वसै जासु उर माहिं॥
ताकी सरवर जगतमें, और दूसरो नाहिं॥ १८॥

कवित्त

पूरनही पुण्य कछ किये हैं अनेक विधि, ताके फल उदै आज

नर देही पाई है । इहां आय विषै रस लाग्यो अति नीको तोहि, ताके संग केलि करै यहै निधि पाई है ॥ आगें अव कहा गति ह्वै है चिदानंद राय, चलवेकी थिति सांझ भोर माहि आई है । साथ कौन संबल न सत्तू कछु लेत मूढ, आगें कहा तोहि सुख सेज ले विछाई है ॥ १९ ॥

द्वै द्वै लोचन सब धरै, मणि नहिं मोल कराहिं ॥
सम्यकदृष्टी जोंहरी, विरले इहि जगमाहिं ॥ २० ॥

कवित्त.

वर्ष सौ पचास माहिं एते सब मरजाहिं, जे ते तेरी दृष्टिविषै देखतु है बावरे । इनमेंको कोऊ नाहिं बचवेको काल पाँहिं, राजा रंक क्षत्री और शाह उमराव रे ॥ जमहीकी जमा मांहि घरी पल चले जांहिं, घटै तेरी आव कछु नाहिं को उपावरे । आज कालिह तोहूको समेट काल गाल माहिं, चाबि जैहै चेत देख पीछें नाहिं दावरे ॥ २१ ॥

जो वानी सर्वज्ञकी, तामें फेर न सार ॥
कल्पित जो काहू कही, तामें दोष अपार ॥ २२ ॥

जाके होय क्रोध ताके बोध को न लेश कहूं, जाके उर मान ताके गुरु को न ज्ञान है । जाके मुख माया वसै ताके पाप केई लशै, लोभके धरैया ताको आरतको ध्यान है ॥ चारों ये कषाय सु तौ दुर्गति ले जाय 'भैया,' इहां न वसाय कछु जोर बल प्रान है । आतम अधार एक सम्यक प्रकार लशै, याहीतैं उधार निज थान दरम्यान है ॥ २३ ॥

आप निकट निज दृगनितैं, विकट चर्म दृग दोय ॥
जाके दृग जैसें खुलै, तैसो देखै सोय ॥ २४ ॥

अरे भव्य प्रानी जो त जाति निज जानी तो तू, लखि जिनवानी जामें मोक्षकी निसानी है । काहू ले कुवुद्धि सानी यामें निपरीत आनी, ताहि जो पिछानी तो तू भयो ब्रह्म ज्ञानी है । जाके नाव और ठानी द्वादशागकै वखानी, वपुरे अज्ञानी ताकी वुद्धि भरमानी है । ठौर ठौर कानी जामै रहै नाहि सत्य पानी, कूरनके मनमानी कलिकी कहानी है ॥ २५ ॥

दोहा

यह अनित्यपचीसिके, दोहा कवित निहार ॥
भैया चेतहु आपको, जिनवानी उर धार ॥ २६ ॥

इति अनित्यपचीसिका

अथ अष्टकर्मकी चौपई लिख्यते।

दोहा

नमो देव सर्वज्ञको, वीतराग जस नाम ॥
मन वच शीस नवाइकें, करो त्रिविधिपरणाम ॥ १ ॥

चौपाई

एक जीव गुण धरै अनत । ताको कछु कहिये विरतत ॥
सव गुण कर्म अछादित रहैं । कैसें भिन्न भिन्न तिहँ कहैं ॥ २ ॥
तामें आठ मुख्य गुन कहे । तापें आठ कर्म लगि रहे ॥
तिन कर्मनकी अकथ कहान । निहचै तो जाने भगवान ॥ ३ ॥
कछु व्यवहार जिनागम साख । वर्णन करो यथारथ भाख ॥
ज्ञानावरन कर्म जब जाय । तव निज ज्ञान प्रगट सव थाय ४
ताके पच भेद विस्तार । तथा अनतानत अपार ॥
जैसें कर्म घटहि जिहँ थान । तैसो तहाँ प्रगट है ज्ञान ॥५॥

जैसो ज्ञान प्रगट है जहाँ। तैसी कछु जानै जिय तहाँ ॥
दूजो दर्शआवरण और। गये जीव देखहिं सब ठौर ॥ ६ ॥
ताकी नौ प्रकृती सब कही। तामें शक्ति सबहि दबि रही ॥
जैसो घटै आवरन जोय। तैसो तहँ देखै जिय सोय ॥७॥
निरावाध गुण तीजो अहै। ताहि वेदनी ढांके रहै ॥
साता और असाता नाम। तामहि गर्भित चेतन राम ॥८॥
जैसी द्वै प्रकृती घट जाय। तैसी तहँ निर्मलता थाय ॥
जवहि वेदनी सब खिर जाय। तव पंचमि गति पहुंचै आय ॥९
चौथो महा मोह परधान। सब कर्मनमें जो वलवान ॥
समकित अरु चारित गुणसार। ताहि ढकै नाना परकार ॥१०॥
जहँ जिम घटहि मोहकी चाल। तहँ तिम प्रगट होय गुणमाल ॥
ज्यों ज्यों घटै मोह जियपास। त्यों त्यों होय सत्य गुणवास ११
ताकी वीस आठ विधि कही। यथा योग्य थानक सरदही ॥
जगमें जंतु बसै चिरकाल। सो सब मोह अछादित बाल १२
मोह गये सब जानै मर्म। मोह गये प्रगटै निजधर्म ॥
मोह गये केवलिपद होय। मोह गये चिर रहै न कोय ॥१३॥
पंचम आयुकर्म जिन कहै। अवगाहन गुण रोके रहै ॥
जव वे प्रकृति आवरण जाहिं। तव अवगाहन थिर ठहराहिं १४
ताकी चार प्रकृति जगनाम। जाके गये लहै शिवधाम ॥
नाम कर्म षष्ठम विरतंत। करहि जीवको मूरतिवंत ॥१५॥
अमूरतीक गुण जीव अनूप। तापै लगी प्रकृति जड़रूप ॥
पुद्गल लगै कहावै जीव। एकेंद्र्यादिक पंच सदीव ॥१६॥
उदय योग नाना परकार। चेतन वसै शरीरमझार ॥
जैसें तनमें करहि निवास। तैसो नाम लहै जिय तास ॥१७॥

तनकी सगति कष्ट अपार । सहै जीव सकट वहु वार ॥
जामन मरन अनता करै । ताके दुख कहु को उच्चरै ॥१८॥
प्रकृति त्राणवै ताकी कही । जगत मूल येही वनि रही ॥
जब ये प्रकृति सवहि खिरजाहिं । तवहि अरूपी हस कहाहि ॥१९॥
सप्तम गोत करम जिय जान । ऊचनीच जिय यही वखान ॥
गुण जु अगुरु लघु ढॉके रहै । तातैं ऊचनीच सब कहै ॥ २० ॥
जब ये दोउ आवरन जाहिं । तव पहुचै पचमिगतिमाहिं ॥
अष्टम अन्तराय अरि नाम । वल अनत ढॉकै अभिराम॥२१॥
शकति अनती जीव सुभाय । जाके उदै न परगट थाय ॥
ज्यों ज्यों घटहि आवरण कही । त्यों त्यों प्रगट होय गुण सही २२
पाच जातिके निकट पहार । याकी ओट सवै सुख सार ॥
इन विन गये न पावै मूल । इन विन गये रह्यो जिय भूल २३
ये सबही सुखकै दरवान । येही सवकै आगेवान ॥
जब ये अतराय मिट जाहि । तव चेतन सव सुखके माहि॥२४॥

दोहा

येही आठों कर्ममल, इनमें गभित हस ॥
इनकी शकति विनाशकै, प्रगट करहि निज वस ॥ २५ ॥
इहिविधि जीव अनन्त सव, वसत यही जगमाहिं ॥
इनहिँ त्याग निर्मल भये, ते शिवरूप कहाहिं ॥ २६ ॥
'भैया' महिमा ब्रह्मकी, ऐसे वनी अनाद ॥
यथा शक्ति कछु वरणयी, जिन आगम परसाद ॥ २७ ॥

इति अष्टकर्मकी चौपई

अथ सुपंथकुपंथपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

केवल ज्ञान स्वरूपमें, राजत श्री जिनराय ॥
तास चरन वंदन करहुं, मन वच शीस नवाय ॥ १ ॥
कहूं सुपंथ कुपंथ के, कवित पचीस वखान ॥
जाके समुझत समझिये, पंथ कुपंथ निदान ॥ २ ॥

कवित्त.

तेरो नाम कल्पवृच्छ इच्छाको न राखै उर, तेरो नाम कामधेनु कामना हरत है । तेरो नाम चिन्तामन चिन्ताको न राखै पास, तेरो नाम पारस सों दारिद डरत है ॥ तेरो नाम अम्रत पियेतैं जरा रोग जाय, तेरो नाम सुखमूल दुःखको दरत है। तेरो नाम वीतराग धरै उर वीतरागा, भव्य तोहि पाय भवसागर तरत है॥३॥

सुन जिनवानी जिहँ प्रानी तज्यो राग द्वेष, तेई धन्य धन्य जिन आगममें गाये हैं । अमृतसमानी यह जिहँ नाहिं उर आनी, तेई मूढ प्रानी भवभाँवरि भ्रमाये हैं ॥ याही जिनवानीको सवाद सुख चाखो जिन, तेही महाराज भये करम नसाये हैं । तातैं दृग खोल 'भैया' लेहु जिनवानी लखि, सुखके समूह सव याहीमें वताये हैं ॥ ४ ॥

अपने स्वरूपको न जानै आप चिदानंद, वहै भ्रम भूलि वहै मिथ्या नाम पावै है। देव गुरु ग्रन्थ पंथ सांचको न जाने भेद, जहाँ तहाँ झूठे देख मान शीस नावै है ॥ चेतन अचेतन द्वै हिंसा करै ठौर ठौर, वापुरे विचारे जीव नाहक सतावै है। जलके न थलके

न पौन अग्नि फलके न, त्रसनि विराधि मूढ मिथ्याती कहावै है ॥ ५ ॥

केई भये शाह केई पातशाह पहुमिपैं, केई भये मीर केई वडे ही फकीर है। केई भये राव केई रंक भये विललात, केई भये कायर औ केई भये धीर हैं॥ केई भये इन्द्र केई चन्द्र छविवत लसैं, केई भये पौन अरु केई भये नीर हैं। एक चिदानद केई स्वागमें कलोल करै, धन्य तेही जीव जे भये तमासगीर हैं ॥ ६ ॥

सवैया

परमान सवै विधि जानत है, अरु मानत है मत जे छह रे।
किरिया कर कर्मनि जोरत है, नहि छोरत है भ्रमजे पहरे ॥
उपदेश करै व्रत नेम धरै, परभावनको उर नाहि हरे।
निज आतमको अनुभौ न करै, ते परे भवसागरमें गहरे ॥ ७ ॥

सवैया मात्रिक

दुर्भर पेट भरनके कारन, देखत हो नर क्यों विललाय।
झूठ साच वोलत याके हित, पाप करत नहि नेक डराय ॥
भक्ष्य अभक्ष्य कछु न विचारत, दिन अरु रात मिलै सो खाय।
उत्तम नरभव पाय अकारथ, खोवत वादि जनम सव आय ॥ ८ ॥

कवित्त

करता सवनके करमको कुलाल जिम, जाके उपजाये जीव जगतमें जे भये। सुर तिरजच नर नारकी सकल जतु, रच्यो ब्रह्माड सव रूपके नये नये ॥ तासों वैर करवेको प्रगटे कहासो आय, ऐसे महा वली जिहँ खातिरमें ना लये । ढूढै चहु ओर नहिं पावै कहू ताको ठौर, ब्रह्माजूकी सृष्टिको चुराय चोर लै गये॥९॥

चौपरके खेलमें तमासो एक नयो दीसे, जगतकी रीति सव

याहीमें वनाई है। चारों गति चारों दाव फिरवो दशा विभाव, कर्मवर्ती जीव सार मिल विछुराई है॥ तीनो योग पांसे परै ताके तैसे दाव परे, शुभ ओ अशुभ कर्म हार जीत गाई है। फिरवो न रह्यो जव कर्म खप जांहिं सव, पंचमि गति पावै ये 'भैया' प्रभुताई है॥ १०॥

देहके पवित्र किये आतमा पवित्र होय, ऐसे मूढ भूल रहे मिथ्याके भरममें। कुलके आचारको विचारै सोई जानै धर्म, कंद मूल खाये पुण्य पापके करममें॥ मूंडके मुंडाये गति देहके दगाये गति, रातनके खाये गति मानत धरममें। शस्त्रके धरैया देव शास्त्रको न जानै भेव, ऐसे हैं अवेव अरु मानत परम मैं॥११॥

नदीके निहारतही आतमा निहार्‍यो जाय, जो पै कोउ ज्ञानवंत देखै दृष्टि धरकें। एक नीर नयो आय एक आगें चल्यो जाय, इहां थिर ठहराय रह्यो पूर भरकें॥ ताहूमें कलोल कई भांतिकी तरंग उठै, विनसै पुनि ताहूमें अनेकधा उछरिकें। तैसें इह आतममें कई परिणाम होय, ऐसे परवान है अनंत शक्ति करकें१२

जगतके जीवन जिवावै जगदीश कोउ, वाकी इच्छा आवै तव मार डारियतु है। वाहीके हुकुम सेती काज सब करै जीव, विना वाके हुकम न तृण डारियतु है॥ करता सवनके करमनको वही आप, भोगता दुहूमें कौन जो विचारियतु है। करता सो भोगता कि करै और भुंजै और, याको कछु उत्तर न सूधो धारियतु है॥ १३॥

जोलों यह जीवके मिथ्यात्व दृष्टि लगि रही, तौलों सांच झूंठ सूझै झूंठ सूझै सांच है। राग द्वेष विना देव ताहि कहै रागी देव, जीवको न जाने भेव, मानै तत्त्व पांच है॥ वस्तुके स्वभावको

न जान्यो यह साचो धर्म, किरियाको धर्म मानै मदिराकी माच है। सत्यारथ वानी सरवज्ञने पिछानी 'भैया,' ताहि न पिछानी तोलों नाचे कर्म नाच है ॥ १४ ॥

कोऊ कहै सूर सोम देव है प्रत्यक्ष दोऊ, कोउ कहै रामचन्द्र राखै आवागौनसों। कोउ कहै ब्रह्मा वडो सृष्टिको करैया अहै, कोउ कहै महादेव उपज्यो न जौनसों॥ कोउ कहै कृष्ण सब जीव प्रतिपाल करै, कोउ लगि रहे हैं भवानी जू के भौनसों। वही उपाख्यान साचो देखिये जहान वीचि, वेश्याघर पूत भयो वाप कहै कौनसों ॥ १५ ॥

सवैया इकतुक्तिया

निश द्यौस यहै मन लाग्यो रहै, सु मुनिन्द्रके पाय कवै परसों।
जिन देवके देखनकी रटनाजु, कहों किम जाहु विना परसों॥
कवधों शिवलोकमें जाय वसों, सुख सधि रहों सजिकें परसो।
कव जोग मिलै इम इच्छित है भवि, आजके काल्हि किधों परसों १६

कवित्त

जाके कुल धर्म माहिं सरवज्ञ देव नाहि, पूछत ते कौन पाहि हिरदेकी वातको। सठे उर पूरि रहै ज्ञान गुण दूर रहै, महातम भूरि रहै लसै सार गातको॥ मिथ्याकी लहरि आवै साच कौ न पथ पावै, जहा तहा भूलि धावै करै जीव घातको।झूठो ही पुरान मानै झूठे देव देव ठानै, जैस जन्म अन्ध नर देखै ना प्रभातको ॥ १७॥

राजाके परजा सव वेटा वेटीकी समान, यह तो प्रत्यक्ष वात लोकमें कहान है। आप जगदीस अवतार धरयो धरनी पैं, कुजनिमें केल करी जाको नाम कान्ह है॥ परमेश्वर करै पर वधू सों

अनाचार, कहते न आवै लाज ऐसो ही पुरान है। अहो महाराज यह कौन काज मत कीनो, जगतके डोबिवेको ऐसो सरधान है ॥१८॥

स्त्रीरूपवर्णन—मात्रिक कवित्त.

वडी नीत लघु नीत करत है, वाय सरत वदवोय भरी ।
फोडा बहुत फुनगणी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी ॥
शोणित हाड मांस मय मूरत, तापर रीझत घरी घरी ।
ऐसी नारि निरखिकर केशव? 'रसिकप्रिया' तुम कहा करी १९

सवैया. (मत्तगयन्द)

जो जगको सव देखत है—तुम, ताहि विलोकिकें काहे न देखो ।
जो जगको सव जानतु है, तुम ताहि जु जानो तो सूधो है लेखो ॥
जो जगमें थिर ह्वै सुखमानत, सो सुख वेदत कौन विशेखो ॥
है घटमें प्रगटै तवही, जवही तुम आप निहारके पेखो ॥ २० ॥

कुपंथ वर्णनकवित्त.

सोई तो कुपंथ जहां द्रव्यको न जाने भेद,सोईतो कुपंथ जहां लागि रहे परसैं। सोई तो कुपंथ जहां हिंसामें वखाने धर्म, सोई तो कुपंथ जहाँ कहै मोक्ष घरसें॥ सोई तो कुपंथ जो कुशीली-पशु देव कहै, सोई तो कुपंथ जो कुलिंगी पूजै डरसें । सोई तो कुपंथ जो सुपंथ पंथ जानै नाहिँ, विना पंथ पाये मूढ कैसें मोक्ष दरसै ॥ २१ ॥

---

(१) दतकथामें प्रसिद्ध है कि केशवदासजी कवि जो किसी स्त्रीपर मोहित थे उन्होंनें उसके प्रसन्नार्थ 'रसिकप्रिया' नामका ग्रंथ बनाया. वह ग्रंथ समालोचनार्थ 'भैया' भगोतीदासजीके पास भेजा तो उसकी समालोचनामें यह कवित्त रसिकप्रियाके पृष्ठपर लिखकरकें वापिस भेज दिया था (२) गौ आदिक कुशीली पशुओंको देव मानते हैं.

झूठो पथ सोई जहा झूठे देव देव कहे, झूठे पथ सोई जहा झूठे गुरु मानिये । झूठो पथ सोई जहा ग्रथ सव झूठे वचें, झूठो पथ सोई जहा भ्रमको वखानिये॥ झूठो पथ सोई जहा दयाको न जाने भेद, झूठो पथ सोई जहा हिसाको प्रमानिये । झूठे पथ चले तव कर्मे मोक्ष पावें अरु, विना मोक्षपाये 'भैया' सुखी कैसे जानिये ॥ २२ ॥

सुपन्थवर्णन सवैया

पथ वहै सरवज्ञ जहा प्रभु, जीव अजीवके भेद वतैये ।
पथ वहै जु निग्रन्थ महामुनि, देखत रूप महासुख पैये ॥
पथ वहै जहँ ग्रथ विरोध न, आदि ओ अतलों एक लखैये ।
पथ वहै जहाँ जीवदयावृष, कर्म खपाइकैं सिद्धमें जैये ॥ २३ ॥
पथ वहै जहँ साधु चलै, सव चेतनकी चरचा चित लैये ।
पथ वहै जहँ आप विराजत, लोक अलोकके ईश जु गैये ॥
पथ वहै परमान चिदानद, जाके चलै भव भूल न ऐये ।
पथ वहै जहँ मोक्षको मारग, सूधे चले शिवलोकमें जैये ॥२४॥

कवित्त

केवलीके ज्ञानमें प्रमाण आन सव भासै, लोक ओ अलोकन की जेती कछु वात है । अतीत काल भई है अनागतमें होयगी, वर्तमान समैकी विदित यो विख्यात है ॥ चेतन अचेतनके भाव विद्यमान सवै, एक ही समैमें जो अनत होत जात है । ऐसी कछु ज्ञानकी विशुद्धता विशेष वनी, ताको धनी यहै हस कैसे विललात है ॥ २५ ॥

छ्यानवें हजार नार छिनकमें दीनी छार, अरे मन ता निहार

काहे तू डरत है। छहों खंडकी विभूति छाडत न वेर कीन्ही, चमू चतुरंगनसों नेह न धरत है ॥ नौ निधान आदि जे चउदह रतन त्याग, देह सेती नेह तोर वन विचरत है। ऐसी विभो त्यागत विलंब जिन कीन्हों नाहिं, तेरे कहो केती निधि सोच क्यों करत है ॥ २६ ॥

दोहा.

यहै सुपंथ कुपंथके, कवित पचीस प्रसिद्ध ॥
'भैया' पढत विवेकसों, लहिये आतमरिद्ध ॥ २७ ॥

इति सुपंथकुपंथपचीसिका.

अथ मोहभ्रमाष्टक लिख्यते।

दोहा.

परम पूज्य सर्वज्ञ है, तारन तरन त्रिकाल ॥
तासु चरन वंदन करों, छांडि सु आल जँजाल ॥ १ ॥
एक मोहकी मगनसों, भ्रमत सवहि संसार ॥
देखै अरु समझै नहीं, ऐसो गहल गँवार ॥ २ ॥

कवित्त.

मोहके भरमसों करम सब करै जीव, मोहकी गहलमें जगत सब गाइये। मोह धरै देह परनेह परसों जु करै, भरमकी भूलमें धरम कहां पाइये॥ चरमकी दृष्टिसों परम कहूं पेखियत, मोहहीकी भूल यह भरम भ्रमाइये। चेतन अचेतनकी जाति दोऊ भिन्न भिन्न, मोह एकमेक लखै 'भैया' यों बताइये ॥ ३ ॥

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों एक रूप, कहै परमेश्वरके अंशके बनाये हैं। विरंचि औ शंकरने आपुसमें युद्ध कीनो, खरशी-

स छेदन सु ग्रथनिमें गाये हे ॥ विष्णु आप आय अवतार लीनों जलमाहि, जल कहो काहे पै हो काहु न वताये है। सृष्टि रची पीछैंकर पहिले पौन पानी होंहि, इतनोहू ज्ञान नाहि ऐसे भरमाये है ॥ ४ ॥

कान्ह करी कुजनमें केलि परनारिनसो, ऐसे व्यभिचारिन को ईश कैसें कहिये । महादेव नागे होय नाचैं सो प्रसिद्ध वात, तऊ न लजात कहै ईश अश लहिये ॥ ब्रह्माने तिलोत्तमाको देख मुख चार कीन्हे, इतनो विचार नाहीं इन्है ऐसी चहिये । कहत है ईश जगदीश ए वनाये आप, इनहीके चरण त्रिकाल गहि रहिये ॥ ५ ॥

अर्जुनको तीनों लोक मुखमें दिखाये जिन, प्रद्युमन हरे सुधि कहू न लहत हैं । शकर जु शीस काट ढूढत गणेशहू को, तीन लोक मै न कहू गज ले गहत है॥ ब्रह्मा जू की सृष्टिको चुराय जन गये चोर, तीन लोक करे तापै ढूढत रहत है । रामचद्र सीता सुधि पूछै पशुपक्षीनपै, ताको लोक जगतके ईश्वर कहत हें ॥ ६ ॥

मच्छको स्वरूप धर गये जो पताल माहिं, चारों वेद चोर पास आन यहा धरे है । कच्छ है अठासी लक्ष योजनकी देह धरी, छोटेसे समुद्रमें मथान पीठ करे ह ॥ पृथ्वीको पताल तैं लै आये आप सूअर है, सिहको स्वरूप धार हिर्णाकुश हरे हैं । परमेश पर्मगुरु अविनाशी जोतरूप, ताहि कहैं पशु देह आय अवतरे है ॥ ७ ॥

राम औ परशुराम आपुसमें युद्ध कीनों, दोऊ अवतारी अश ईश्वरके लेरे है । कृष्ण अवतार माहिं तीन लोक राखत है, द्वा-

दूसरेसे सेन, आठवें दूसरेसे वन, नवमें दूसरेसे हो न, दशवे दूसरेसे सन, और ग्यारहवें दूसरेसे दान, वनकर सब प्रश्नोके उत्तर निकलते है।

अन्तर्लापिका—छप्पय।

कहो धर्म कब करै? सदा चितमें क्या धरिये?।
प्रभु प्रति कीजे कहा? दानको कहा उचरिये?॥
आस्रव सों किम जीत? पंच पदकों कहा गहिये?॥
गुरु शिक्षा किम रहै? इन्द्र जिनको कहा कहिये॥
सब प्रश्न वेद उत्तर कहत, निज स्वरूप मनमें धरो।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, सदा दया पूजा करो॥५॥

भावार्थ—सदा दया पूजा करो—इस पदके चार शब्दों मे तो पहिले चार प्रश्नोंका उत्तर मिलता है. जैसे धर्म कब करै? सदा, चित्तमें सदा क्या रक्खे? दया आदि, और अन्तके चार प्रश्नोंका उत्तर इन्हीं चार शब्दोंको उलटें पढनेंसे (रोक, जापु, याद, दास) से निकलता है.

अन्तर्लापिका छप्पय.—

मन्दिर वनवावो? मूर्ति, लाव—?सैना सिंगारहु?।
अम्बु आन? वासर प्रमाण,? पहुँची नग धारहु?॥
सिश्री मंगवा? कुमुद, लाव? सरसी तन पिक्खहु?।
तौल लेहु? दत लच्छि, देहु? मुनि मुद्रा सिक्खहु?॥
सब अर्थ भेद भैया कहत, दिव्य दृष्टि देखहु खरी।
आकृत्रिम प्रतिमा निरखतसु, करि न घरी न भरी धरी॥

भावार्थ—प्रथम द्वितीय और तृतीय प्रश्न के उत्तर 'करी न' इस शब्दके तीन अर्थ करने से निकलते है (१ कड़ी नही है २ बनवाई नहीं, ३ हाथी नहीं.) दूसरे पादके चौथे पांचवें छटवें प्रश्नके उत्तर 'घरी न' इस शब्दके

तीन अर्थ (१ वटा नहा, घडी (वाच) नहीं, ३ बनी नहीं) इस प्रकार करनेसे निकलते है तृतीय पादक तीन प्रश्नोंका उत्तर भरी न के तीन अर्थ (१ भरी नहीं गई २ भरी नहीं, ३ जलसे भरी नहीं) से निकलता है और चतुर्थ पादके प्रश्नोंका उत्तर ' धरी न ' के तीन अर्थ (१ पसेरी नहीं,२ रक्खी नहीं है ३ धारण नहीं की,) निकालनेसे मिलता है ॥ ६ ॥

प्रश्न दोहा

पूछत हैं जन जैनको, चिदानदसों वात ॥
आये हो किस देशतें, कहो कहा को जात ॥ ७ ॥

देश तो प्रसिद्ध है निगोद नाम सिंधुमहा, तीनसे तेताल राजु जाको परमान है। तहाके वसैया हम चेतनके वसवारे, वसत अनादिकाल वीत्यो विन ज्ञान है ॥ तहातें निकस कोऊ कर्म शुभ जोग पाय, आये हम इहा सुने पुरुष प्रधान है । ताके पाँय परवेको महाव्रत धरवेको, शिष्य सग करवेको चलिवो निदान है ॥ ८॥

एक दिन एकठौर मिले ज्ञान चारितसों, पूछी निज वात कहा रावरो निवास है। वोले ज्ञान सत्यरूप चिदानद नाम भूप, असख्यात परदेश ताके पुरवास हें ॥ एक एक देशमें अनत गुण ग्राम वसै, तहाके वसैया हम चरणोके दास हैं। तूहू चल मेरे सग दोऊ मिलि लूटें सुख, मेरे ऑख तेरे पाय मिलो योग खास है ॥ ९ ॥

लाल वस्त्र पहिरेसों देह तो न लाल होय, लाल देह भये हस लाल तौ न मानिये । वस्त्रके पुराने भये देह न पुरानी होय, देहके पुराने जीव जीरन न जानिये ॥ वसनके नाश भये देहको

न नाश होय, देहके न नाश हंस नाश न वखानिये। देह दर्व पुद्गलकी चिदानंद ज्ञानमयी, दोऊ भिन्न भिन्न रूप 'भैया' उर आनिये ॥ १० ॥

मात्रिक कवित्त.

ग्यारह अंग पढै नव पूरव, मिथ्या वल जिय करहिं वखान।
दे उपदेश भव्य समुझावत, ते पावत पदवी निर्वान ॥
अपने उरमें मोह गहलता, नहिं उपजै सत्यारथ ज्ञान।
ऐसे दरवश्रुतके पाठी, फिरहिं जगत भाखैं भगवान ॥ ११ ॥

प्रश्न कवित्त. (अर्द्धाली)

दर्शन भ्रष्ट भ्रष्ट सोई चेतन, दर्शन भ्रष्ट मुक्त नहिं होय।
चारित भ्रष्ट तरे भवसागर, यह अचरज पूछत शिशु कोय ॥१२

उत्तर चौपाई.

तेरह विधि चारित जो धरै। तिहँ विन तजे न भवदधि तरै ॥
जव ये भाव करहिं उर नाश। तव जिय लहै मोक्षपद वास॥१३

कवित्त.

मांस हाड़ लोहू सानि पूतरी वनाई काहु, चामसों लपेट तामें रोम केश लाये हैं। तामैं मलमूत भर कृमि केई कोटि धर, रोग संचै कर कर लोकमें ले आये हैं॥ वोलै वह खाउं खाउं खाये विना गिर जाऊं, आगेंको न धरों पाउं ताही पै लुभाये हैं। ऐसे भ्रम मोहने अनादिके भ्रमाये जीव, देखै परतक्ष तोउ चक्षु मानो छाये हैं ॥ १४ ॥

यह आश्चर्य चतुर्दशी, पढत अचंभो होय ॥
भैया लोचन ज्ञानके, खुलत लखै सव कोय ॥ १५ ॥

इति आश्चर्यचतुर्दशी.

अथ रागादिनिर्णयाष्टक लिख्यते ।

दोहा

सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम, केवल ज्ञान जिनद ॥
तासु चरन वदन करों, मन धर परमानद ॥ १ ॥

मात्रिक कवित्त

रागद्वेप मोहकी परणति, है अनादि नहि मूल स्वभाव ।
चेतन शुभ्र फटिक मणि जैसें, रागादिक ज्यो रग लगाव ॥
वाही रंग सकल जग मोहत, सो मिथ्यामति नाम कहाव ।
समदृष्टी सो लखै दुहू दल, यथायोग्य वरतै कर न्याव ॥ २ ॥

दोहा

जो रागादिक जीवके, हैं कहु मूल स्वभाव ॥
सो होते शिव लोकमें, देख चतुर कर न्याव ॥ ३ ॥
सवहि कर्मते भिन्न हैं, जीव जगतके माहि ॥
निश्चय नयसों देखिये, फरक रच कहु नाहि ॥ ४ ॥
रागादिकसो भिन्न जव, जीव भयो जिहँ काल ॥
तव तिहँ पायो मुकति पद, तोरि कर्मके जाल ॥ ५ ॥
ये हि कर्मके मूल है, राग द्वेप परिणाम ॥
इनहींसें सव होत ह, कर्म वन्धके काम ॥ ६ ॥

चान्द्रायण छन्द (२५ मात्रा)

रागी वाधै करम भरमकी भरनसों ।
वैरागी निर्वंध स्वरूपाचरनसों ॥
यहै वध अरु मोक्ष कही समुझायके ।
देखो चतुर सुजान ज्ञान उपजायके ॥ ७ ॥

कवित्त.

राग रु द्वेष मोहकी परणति, लगी अनादि जीव कहँ दोय ।
तिनको निमित पाय परमाणू, बंध होय वसु भेदहिं सोय ॥
तिनतैं होय देह अरु इन्द्रिय, तहाँ विषै रस भुंजत लोय ।
तिनमें राग द्वेष जो उपजत, तिहँ संसारचक्र फिर होय ॥ ८ ॥

दोहा.

रागादिक निर्णय कह्यो, थोरेमें समुझाय ॥
'भैया' सम्यक नैनतैं, लीज्यो सबहि लखाय ॥ ९ ॥

इति रागादिकनिर्णयाष्टक ।

अथ पुण्यपापजगमूलपचीसिका लिख्यते.

दोहा.

परमातम परतक्ष है, सिद्ध सकल अरहंत ॥
नितप्रति वंदों भावधर, कहूं जगत विरतंत ॥ १ ॥

कवित्त.

स्वामी श्रीमंधरजीके पाय पर ध्यान धर, वीनती करत भवि दोऊ कर जोरकें । तुम जगदीश जग ईश तिहुं लोकनके, भक्त जन संग किन लेहु अघ तोरकें ॥ देव सरवज्ञ सब जीवोंकी करत रक्षा, जीवनकी जाति हम कहैं मद छोरकें । सेव इहिविधि करैं नाम हिरदैमें धरैं, जपैं जिनदेव जिनदेव बल फोरकें ॥ २ ॥

आगे मद माते गज पीछें फोज रही सज, देखें अरि जाय भज वसै बन वनमें । ऐसे बल जाके संग रूप तो बन्यो अनंग, चमू चतुरंग लखि कहै धन धन मैं ॥ पुण्य जब खिस जाय पऱ्यो पऱ्यो विललाय, पेट हू न भऱ्यो जाय पाप उदै तनमें । ऐसी

ऐसी भांतिकी अवस्था कई धरै जीव, जगतके वासी देखे हासी आवै मनमें ॥ ३ ॥

चामके शरीर माहि वसत लजात नाहि, देखत अशुचि तोउ लीन होय तनमें । नारि वनी काहे की विचार कछू करै नाहि, रीझि रीझि मोह रहै चामके वदनमें ॥ लछमीके काज महाराज पद छाड देत, डोलत है रक जैसें लोभकी लगनमें । तनकसी आयुप उपाय कई कोटि करै, जगतके वासी देखे हासी आवै मनमें ॥ ४ ॥

छप्पय

पुण्य उदय जब होय, जीव नर देही पावै ।
पुण्य उदय जब होय, तवहिं घर लछमी आवै ॥
पुण्य उदय जब होय, सबै जिय हुकुम चलावै ।
पुण्य उदय जब होय, तवै शिर छत्र धरावै ॥
जब पुण्य उदय खिस जाय अरु, पाप उदय आवै निकट ।
तब परै नरकमें जीव यह, सहै घोर सकट विकट ॥ ५ ॥

पाप उदय परतच्छ, इच्छ नहिं पूजै मनकी ।
पाप उदय परतच्छ, विथा बहु बाढै तनकी ॥
पाप उदय परतच्छ, लच्छ घरमें नहिं आवै ।
पाप उदय परतच्छ, जीव बहु सकट पावै ॥
जब पाप उदय मिट जाय अर, पुण्य उदय आवै प्रबल ।
तब वही जीव सुख भोगवे, उथल पथल इम जगत चल ॥ ६ ॥

कवित्त.

पापके कियेसों हंस मलिन निकृष्ट होय, यह तौ न बूझै कोई पाप ही करत हैं। जल थल जीवमयी कहै वेद स्मृति माहिं पाँय तल जीव वसै छूयेतैं मरत हैं॥ छोटे वडे देहधारी सबमें विराजै विष्णु, ताके तौ विनासे पाप कैसे न भरत हैं। इतनों विचार नाहिं पाप किये मुक्ति जाँय, ताहीतैं अज्ञानी जीव नर्कमें परत हैं॥ ७॥

नागरिन[1] संग केई सागरन केलि करी, राग रंग नाटक सों तोऊ न अघाये हो॥ नर देह पाय तुम आयु पल्य तीन पाई, तहांहू विषै किलोल नानाभाँति गाये हो॥ जहां गये तहां तुम विषैसों विनोद कीन्हों, ताहीतैं नरकमें अनेक दुख पाये हो। अजहूं सम्हारि विषै डार क्यों न चिदानंद, जाके संग दुःख होय ताहीसों लुभाये हो॥ ८॥

जहां तोहि चलवो है साथ तू तहां को ढूंढि, इहां कहां लोगनसों रह्यो तू लुभाय रे। संग तेरे कौन चलै देख तू विचार हिये, पुत्र कै कलत्र धन धान्य यह काय रे॥ जाके काज पाप कर भरत है पिंड निज, ह्वै है को सहाय तेरे नर्क जव जाय रे। तहां तौ अकेलो तूही पाप पुण्य साथी दोय, तामें भलो होय सोई कीजे हंसराय रे॥ ९॥

जौलों तेरे ज्ञान नैन खुले नाहिं चिदानंद, तौलों तुम मोह वश सूरदास ह्वै रहे। हरके पराये प्रान पोषत हो देह निज, कहो यह कौन धर्म कौन पंथ लै रहे॥ पापके कियेसों कछु पुण्य

(१) देवांगनावोंके २ अर्थ

नाही ह्वै है तोहि, एतो हू विचार नाही ऐसे ज्ञान ख्वै रहे। नर्कमें परेंगो कान ? सकट सहैगो कौन, अजहू सम्हारो क्यो न कौन नींद स्वै रहे ॥ १० ॥

सरवज्ञ देवजूकी सेव करै सत्र इन्द्र, तिनहूके कवला अहार नाहीं लीजिये। मुनि होंय लब्धिधारी ते चलें अकाश माहिं, केवलीको भूमचारी ऐसे क्यों कहीजिये ॥ जाके देखे वैरभाव जाहिं सब जीवनके, ताके आगें साधु जरै कैसें के पतीजिये। ऐसो मिथ्यावन्तने वनाय कहू तन्त लिखो, सत ह्वै सचेत यों विवेक हिये कीजिये ॥ ११ ॥

पचमें जो गुण थान भाव जो विशुद्ध होंय, चढै जिय सातवें प्रसिद्ध यह वात है। छट्टो गुण थानक जा तियको न होय कहू, नगन न रहि सकै लज्जावत गात है ॥ मनपर्जय ज्ञान हू, मनैं कियो सरवज्ञ, ध्यानहूको योग नाहीं चढि कैसें जात है। तासों कहै तीर्थकर पद पाय मुक्ति भई, ऐसे मिथ्यावादिनसों कैसके वसात है ॥ १२ ॥

सोवत अनादि काल वीत्यो तोहि चिदानद, अजहू सम्हार किन मोह नींद खोयकें। सोयो तू निगोद माहि ज्ञान नैन मूद आप, सोयो पच थावरमें शक्तिको समोयंके ॥ विकलत्रै देह पाय तहा तूही सोय रह्यो, सोयो न प्रमान धर वाही रूप होयके॥ पच इन्द्री विषै माहिं मग्न होय सोय रह्यो, खोयो तैं अनतो काल याही भाँति सोय कैं ॥ १३ ॥

(१) सकोचकें

चांद्रायण. छन्द ।

पुण्यपापको खेल, जगतमें वनि रह्यो ।
इनहीके परसाद, सुखी दुखिया कह्यो ॥
दोउ जगतके मूल, विनाशी जानिये ।
इनहीतें जो भिन्न, सुखी सो मानिये ॥ १४ ॥

मोह मगन संसार, विषय सुखमें रहै ।
करै न आप सम्हार, परिग्रह संग्रहै ॥
जाने यह थिर वास, नाश नहिं होयगो ।
पाके मानुष जन्म, अकारथ खोयगो ॥ १५ ॥

देवधर्म परतीति, परीक्षा सांच की ।
सीखै नाहिं सुदृष्टि, रतन अरु कांचकी ॥
जन्म अकारथ जाय, सुनो मन वावरे ।
पीछें फिर पछताय, वहुर नहिं दावरे ॥ १६ ॥

पुण्य पाप परतक्ष, दोउ जगमूल है ॥
इनहीसें संसार, भरमकी भूल है ॥
केवल शुद्ध स्वभाव, लखै नहिं हंसको ।
ताही तैं द्रुम होय, करमके वंशको ॥ १७ ॥

शुद्ध निरंजन देव, सदा निज पास है ।
ताको अनुभव करो, यही अरदास है ॥
कवहू भूल न जाहु, पुण्य अरु पापमें ।
केवल ज्ञान प्रकाश, लहोगे आपमें ॥ १८ ॥

---

१ न जानें सव प्रतियोंमें इसको 'अरिल्ल' क्यों लिखा है अरिल्ल १६ मात्राका होता है और इसमें २१ मात्रा हैं, इसे 'तिलोकी' भी कहते हैं.

पुण्य पाप निन जीव, न कोई पाइये।
औरनकी कहा चली, जिनेश्वर गाइये ॥
येही जगके मूल, कहे समुझायके।
जो इनसेती भिन्न, बसे शिव जायके ॥ १९ ॥

कवित्त

कर्मनके हाथ ये निकाये जग जीव सबै, कर्म जोई करे सोई इनके प्रमान है। वैक्रिय शरीर पाय देव आप मान रहे, देवनकी रीति करै सुनै गीत गान है ॥ औदारिक देह पाय नर नारी रूप भये, कीन्हीं वह रीति मानों पिये मद पान है। नरकमें गये तहा नारकी कहाये आप, ऐसो चिदानद भैया देख्यो ज्ञानवान है ॥ २० ॥

दोहा

राम श्याम कित होत है, सो गति लहै न मूढ ॥
धोय चामकी देहको, शुचि मानत है मूढ ॥ २१ ॥
कहा चर्मकी देहमें, परम परे हो आन ॥
देखो धर्म सभारिकें, छाड भरमकी वान ॥ २२ ॥
करम करत है भरमतें, धरम तुम्हारो नाहिं ॥
परम परीक्षा कीजिये, शरम कहा इहि माहिं ॥ २३ ॥
करन भरनतें होयगो, परन नरकके माहिं ॥
ज्ञान चरनके धरन विन, तरन तुम्हारो नाहिं ॥ २४ ॥
सरन सदा ढूढत रहै, मरन बचावहि कोय ॥
टरन प्रान निकसे परे, तरन कहांसों होय ॥ २५ ॥

(१) इन्द्रिय

जीव कौन पुद्गल कहा, को गुण को परजाय ॥
जो इतनो समुझै नहीं, सो मूरख शिरराय ॥ २६ ॥
पुण्य पाप वश जीव सब, वसत जगतमें जान ॥
'भैया' इनतैं भिन्न जो, ते सब सिद्ध समान ॥ २७ ॥

इति पुण्यपापजगमूलपचीसिका.

अथ बावीस परीसहनके कवित्त लिख्यते ।

दोहा.

पंच परम पद प्रणमिके, प्रणमों जिनवर वानि ॥
कहों परीसह साधुकी, विंशति दोय वखानि ॥ १ ॥

कवित्त.

धूप सीत क्षुधाजीत तृषा डंस भयभीत, भूमिसैन वधवंध सहै सावधान है । पंथत्रास तृणफांस दुरगंध रोगभास, नगनकी लाज रति जीते ज्ञानवान है ॥ तीय मानअपमान थिर कुवचनवान, अजाची अज्ञान प्रज्ञा सहित सुजान है । अदर्शन अलाभ ये परीसह हैं वीस द्वै, इन्है जीतै सोई साधु भाखे भगवान है ॥२॥

१. ग्रीष्मपरीसह.

ग्रीषमकी ऋतुमाहिं जलथल सूख जांहिं, परतप्रचंड धूप आगिसी वरत है । दावाकीसी ज्वाल माल वहत बयार अति, लागत लपट कोऊ धीर न धरत है ॥ धरती तपत मानों तवासी तपाय राखी, बड़वा अनल सम शैल जो जरत है । ताके शृंग शिलापर जोर जुग पांव धर, करत तपस्या मुनि करम हरत है ॥ ३ ॥

२. शीतपरीसह.

शीतकी सहाय पाय पानी जहां जम जाय, परत तुषार आय

हरे वृक्ष झाढे हैं । महा कारी निशा माहिं घोर घन गरजाहिं, चपलाह चमकाहिं तहा दृग गाढे हैं ॥ पौनकी झकोर चलै पाथ र हैं तेहू हिलें, ओरानके ढेर लगे तामें ध्यान वाढे हैं। कहा लों वखान कहों हेमाचलकी समान, तहा मुनिराय पाय जोर दृढ ठाढे हैं ॥ ४ ॥

जोग देके जोगीश्वर जगलमें ठाढे भये, वेदनीके उदैत परीसहै सहत हैं । कारी घन घटा लागे भारी भयानक अति, गाज बिज्जु देखे धीर कोऊ न गहत हे ॥ मेहकी भरन परै मूसरसी धार मानो, पौनकी झकोर किधों तीर से वहत हैं । ऐसी ऋतु पावसमें पावत अनेक दु ख, तऊ तहाँ सुख वेद आनद लहत हैं ॥ ५ ॥

३ क्षुधापरीसह

जगतके जीव जिन्हैं जेर जीतराखे अर, जाके जोर आगें सव जोरावर हारे हैं । मारत मरोरे नहि छोरे राजारक कहू, आखिन अधेरी ज्यर सन दे पछारे हैं। दावाकीसी ज्वाला जो जराय डारै छाती छनि, देवनको लागै पशुपछी को निचारे हैं । ऐसी क्षुधा जोर भैया कहित कहा लों और, ताहि जीत मुनिराज ध्यान थिर धारे हैं ॥ ६ ॥

४ तृपापरीसह

धूपकी धखनि परै आगसो शरीर जरै, उपचार कौन करै दई द्वार आनके । पानीकी पियास जेती कहे को वखान तेती, तीनों जोग थिरसेती सहै कष्ट जानके ॥ एक छिन चाह नाहिं

पानीके परीसे माहिं, प्रान किन नाश जाहिं रहै सुख मानके। ऐसी प्यास मुनि सहै तब जाय सुख लहै, 'भैया इहिभाँति कहै वंदिये पिछानके ॥ ७ ॥

५. डँस मस्कादिपरीसह.

सिंह सांप ससा स्याल सूअर ओ स्वान भालु, वाघ वीछी वा नर सु वाजने सताये हैं। चीता चील्ह चरख चिरैया चूहा चेंटी चैंटा, गज गोह गाय जो गिलहरी वताये हैं॥ मृग मोर मांकरी सु मच्छर ओ मांखी मिल, भौंरा भौंरी देख कै खजूरा खरे धाये हैं। ऐसे डंस मसकादि जीव हैं अनेक दुष्ट, तिनकी परीसे जीते साधुजू कहाये हैं ॥ ८ ॥

६. शय्यापरीसह.

शुद्ध भूमि देख रहै दिनसेती योग गहै, आसन सु एक लहै धरै यह टेक है। कैसो किन कष्ट परै ध्यानसेती नाहिं टरै, देहको ममत्व हरै हिरदै विवेक है ॥ तीनों योग थिरसेती सहत परीसे जेती, कहै को वखान तेती होंय जे अनेक हैं। ऐसे निशि शैन करै अचल सु अंग धरै, भव्य ताकें पाँय परै धन्य मुनि एक हैं ॥ ९ ॥

७. वधबंधपरीसह.

कोऊ बांधो कोऊ मारो कोऊ किन गहडारो, सबनके संकट सुबोधतैं सहतु है। कोऊ शिर आग धरो कोऊ पील प्रान हरो, कोऊ काट टूक करो द्वेष न गहतु है ॥ कोऊ जल माहिं बोरो कोऊ लेके अंग तोरो, कोऊ कह चोर मोरो दुख दे दहतु है। ऐसे वधबंधके परीसहको जीतै साधु, 'भैया' ताहि बार बार वंदना कहतु है ॥ १० ॥

८ चर्यापरीसह—छप्पय ।

जब मुनि करहि विहार, पथ पग धरहि परक्खत ।
ऊंठ हाथ परवान, दृष्टि जुग भूमि परक्खत ॥
चलत ईरज्या समिति, पच इन्द्रिय वश कीनें ।
दशहु दिशा मन रोक, एक करुणारस भीनें ॥
इम चलत पूज्य मुनिराज जब, होय खेद सकट विकट ।
तिहँ सहहि भाव थिर राखके, तब धारें भव उदधितट ॥ ११ ॥

९ तृणफासपरीसह—छप्पय ।

परत आखि महँ कछुक, काढि नहिं डारत तिनको ।
चुभत फास तन माहि, सार नहि करते जिनको ॥
लागत चोट प्रचड, खेद नहि कहू जनावत ।
बाणादिक बहु शस्त्र, कहत कहु पार न आवत ॥
इम सहत सकल दुख देह दमि, रागादिक नहि धरत मन ।
भैया त्रिकाल वदत चरन, धन्य धन्य जग साधु वन ॥ १२ ॥

१० ग्लानिपरीसह—छप्पय

लगत देहमें मैल, धोय नहि तिनको झारत ।
देहादिकतें भिन्न, शुद्ध निज रूप विचारत ॥
जल थल सब जिय जत, सत हैं काहि सताऊ ।
सबही मोहि समान, देत दुख मैं दुख पाऊ ॥
इम जान महत दुरगध दुख, तन गिलान विजयी भनत ।
'भैया' त्रिकाल तिहँ साधु के, इद्रादिक चरनन नमत ॥ १३ ॥

(१) साढ तीन हाथ ।

११. रोगपरीसह—छप्पय.

वात पित्त कफ कुष्ट, स्वास अरु खाँस खैण गनि ।
शीत ताप शिरवाय, पेट पीड़ा जु शूल भनि ॥
अतीसार अधशीस, अरश जो होय जलंधर ।
एकांतर अरु रुधिर, वहुत फोड़ा जु भगंदर ॥
इम रोग अनेक शरीरमहिं, कहत पार नहिं पाइये ।
मुनिराज सवन जीते रहैं, औषधि भाव न भाइये ॥ १४ ॥

दोहा.

ये एकादश वेदिनी, कर्म परीसह जान ।
मोहसहित वलवान हैं, मोह गये वलहान ॥ १५ ॥

१२. नग्नपरीसह—कवित्त.

नगनके रहिवेको महा कष्ट सहवेको, कर्मवन दहवेको वडे महाराज हैं । देह नेह तोरवेको लोक लाज छोरवेको, पर्म प्रीति जोरवेको जाको जोर काज हैं ॥ धर्म थिर राखवेको परभाव नाखवेको, सुधारस चाखवेको ध्यानकी समाज हैं । अंवरके त्यागेसों दिगम्बर कहाये साधु, छहों कायके आराध यातैं शिरताज हैं १६

१३. रतिअरतिपरीसह—कवित्त.

आंखनिकी रति मान दीपक पतंग परै, नासिकाकी रतिमान भ्रमर भुलाने हैं । काननकी रतिमृग खोवत है प्राण निज, फरसकी रति गज भये जो दिवाने हैं ॥ रसनाकी रति सव जगत सहत दुख, जानत है यह सुख ऐसैं भरमाने हैं ॥ इँद्रिनकी रति मान गति सव खोटी करै, ताहि मुनिराज जीत आप सुख माने हैं ॥ १७ ॥

छप्पय

प्रकृति विरोध अहार, मिले मुनि जो दुख पावै।
सोहि अरति परिणाम, तहाँ समता रस भावै॥
औरहु परसयोग, होत दुख उपजै तनमें।
तहा अरति परनाम, त्याग थिरता धरै मनमें॥
इम सहत साधु दुख पुज बहु, तबहु क्षमा नहिं उर टरत।,
'भैया' त्रिकाल मुनिराज सो अरतिजीत शिवपद वरत॥१८॥

१४ स्त्रीपरीसह–कवित्त

नारिके निहारत विचार सब भूलि जाय, नारीके निहारे परिणाम फिरे जात है। नारिके निहारत अज्ञान भाव आय झुकै, नारिके निहारत ही शील गुणघात है॥ नारिके निहारत न सूरवीर धीर धरै, लोहनके मार जे अडिग ठहरात हे। ऐसी नारि नागनिके नैनको निमेप जीत, भये हैं अजीत मुनि जगत निख्यात हैं॥ १९॥

१५ मानअपमान परीसह–कवित्त

जहाँ होय मान तहाँ मानत महान सुख, अपमान होय तहाँ मृत्युके समान है। मानके गुमान आप महाराज मान रहे, होत अपमान मूढ हरै दशों प्रान हैं। मानहीकी लाज जग सहत अनेक दुख, अपमान होत धरै नरक निदान हैं॥ ऐसे मान अपमान दोऊ दुष्ट भाव तज, गनत समान मुनि रहै सावधान हैं॥ २०॥

१६ थिरपरीसह–छप्पय

जब थिर होहिं मुनिंद, एक आसन दृढ धरई।
जब थिर होहिं मुनिंद, अग एको नहिं टरई॥

जब थिर होहिं मुनिंद, कष्ट किन आवहिं केते ।
जब थिर होहिं मुनिंद, भावसों सहैं जु तेते ॥
इम सहत कष्ट मुनिराज अति, रोगदोष नहिं धरत मन ।
उतकृष्ट होहिं इक वेर जो, सब उनईस परीस भन ॥ २१ ॥

१७. कुवचनपरीसह–छप्पय.

कुवचन बान समान, लगैं तिहिं मार गिरावहिं ।
कुवचन अगनि समान, पैठि गुन पुंज जलावहिं ॥
कुवचन वज्र विशाल, भाव गिरि ढाहैं पलमें ।
कुवचन विषकी झाल, मोह दुख दैं बहु कलमें ॥
कुवचन महान दुख पुंज यह, लगे वचैं नहिं जगत जन ।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत लहैं निज अखय धन ॥२२

१८. अजाचीपरीसह घनाक्षरी (३२ वर्ण)

अजाची धरत व्रत जाचना करत नाहिं, इंद्री उमंग हरत महा संतोष करकें । रागादि टरत भाव क्रोधादिबंध गरत, वरत स्वभाव शुद्ध मनोविकार हरकें ॥ मरनसों डरत न करत तपस्या जोर, दरत अनेक कष्ट क्षमा खड्ग धरकें । दया भंडार भरत वरत सु साधु ऐसें, 'भैया' प्रणाम करत त्रिकाल पांय परकें ॥ २३ ॥

१९. अज्ञानपरीसह–छप्पय ।

सम्यक ज्ञान प्रमान, होहिं मुनि कोय तुच्छ मति ।
सुनहिं जिनेश्वर वैन, याद नहिं रहै हृदय अति ॥
ज्ञानावरण प्रसाद, बुद्धि नहिं प्रगटै जाकी ।
पूरव भव थिति बंध, इहाँ कछु चलत न ताकी ॥

इम सहत कष्ट मुनि ज्ञानके, होहिं परीसह प्रबलजिय।
तिहँ जीत प्रीति निजरूपसों, लहत शुद्ध अनुभूत हिय ॥ २४ ॥

२० प्रज्ञापरीसह—छप्पय।

प्रज्ञा बल नहिं होय, तहाँ विद्या नहि आवै।
प्रज्ञा बल नहि होय, तहा नहिं पढै पढावै ॥
प्रज्ञा प्रबल न होय, तहाँ चर्चा नहिं सूझै।
प्रज्ञा प्रबल न होय, तहाँ कछु अर्थ न बूझै ॥
इम बुद्धि विशेष न होय जित, तित अनेक परिसह सहत।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत शुद्ध अनुभौ लहत ॥ २५॥

२१ अदर्शनपरीसह—छप्पय।

समय प्रकृति मिथ्यात, जासु उदैत नहि टरई।
सो जिय है गुनवत, तथा वेदक पद धरई ॥
दर्शन निर्मल नाहि, मोहकी प्रकृति लखावै।
वहै अदर्शन कष्ट, कहत कैसें बन आवै ॥
परिणाम खेद बहुविधि करत, तौ हू निर्मल होय नहि।
'भैया त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत रहै निज आप महिँ ॥२६

२२ अलाभपरीसह—कवित्त

अतराय कर्मके उदैत जो अलाभ होय, ताके भेद दोय कहे निश्चै व्यवहार है। निश्चै तो स्वरूपमें न थिरता विशेप रहै, वह अतराय जो रहै न एक बार है ॥ व्यवहार अतराय मिलै न अहार योग, और हू अनेक भेद अकथ अपार है। ऐसें तौ अलाभ की परीसहको जीत साधु, भये हैं अतीत 'भैया' वंदे निरधार है ॥ २७ ॥

बाईसपरीसहविजयी मुनिराजकी स्तुति

कुंडलिया.

महा परीसह बीस द्वय, तिहँ जीतनको धीर ।
धन्य साधु संसार में, वडे सूरवर वीर ॥
वडे सूरवर वीर, भीर भवकी जिहँ टारी ।
कर्म शत्रुको जीत, भये शिवके अधिकारी ॥
धारी निजनिधि संच, पंच पदकोजिहँ लहा ।
भैया करहि प्रणाम, परीसह विजयी सु महा ॥ २८ ॥

छप्पय.

सत्रहसे उनचास मास, फागुण सुख कारी ।
सुदि वारस गुरुवार, सार मुनि कथा सवाँरी ॥
विकट परीसह जीत, होत जे शिवपदगामी ।
ते त्रिभुवनके नाथ, प्रगट जग अंतरजामी ॥
तिहँ चरन नमत हिरदै हरखि, कहत गुननकी माल यह ।
कवि भैया द्वैकर जोरके, वंदन करहिं त्रिकाल लह ॥ २९ ॥
हृदयराम उपदेशतैं, भये कवित्त ये सार ।
मुनिके गुण जे सरदहैं, ते पावहिं भव पार ॥ ३० ॥

इति बाईस परीसह कवित्तबंध.

अथ मुनिके छियालीसदोषवर्जितआंहारवि-धिवर्णन लिख्यते.

दोहा.

अरहँत सिद्ध चितारचित, आचारज उवझाय ।
साधुसहित वंदन करों, मनवच शीस नवाय ॥ १ ॥

दोष छियालिस टारकें, मुनि जो लेहिं अहार ॥
नाम कथन ताके कहू, जिन आगम अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई

अस्थि चर्म सूखे अरु हरे । दृष्टि देख भोजन परिहरे ॥
उखली खोटै चक्की चलै । शिलापिसती देखत टलै ॥ ३ ॥
गोवर थापै माटी छुवै । कोरे वस्त्र भीट जो हुवै ॥
चूल्हो जरतो नयन निहार । ता घर मुनि नहि लेहिं अहार॥ ४ ॥
शिरहिं नहाती दीखे कोय । सीस कथही करती होय ॥
कच्चे पानी परसै अंग । ता घरतें मुनि फिरहि अभंग ॥५ ॥
करवो खाडो दीसै कहीं । छन्नो फाटो है जो तहीं ॥
देत बुहारी दृष्टिहि परै । ताघर मुनि आयेतें फिरै ॥ ६ ॥
अन्नादिक सूकनको धरै । मिथ्याती भेटै तिहँ घरै ॥
औंटे कोय कपास निहार । ताघर मुनि फिर जाहिं विचार॥ ७ ॥
भींटै पाक स्वान मजार । रोमकँवल परसन परिहार ॥
अग्निदाह जो दृष्टिहि परै । रोवत सुनै अहार न करै ॥ ८ ॥
प्रतिमा भंग सुनै जे कान । शास्त्र जरै इम सुनै सुजान ॥
प्रतिमा हरी भयो भयजोर । ता घर आये फिरहि किशोर॥ ९॥
विनधोये पट पहिरे होय । पडिगाहै श्रावक जो कोय ॥
ता कर लेय अहार न साध । अशुचिदोष लागै अपराध ॥ १० ॥
कर्कश वचन सुनहिं विकराल । विनयहीन जो हो अदयाल ॥
लागै चोट ललाटहिं पेख । फिरहिं साधु छर्दित नर देख॥ ११ ॥
विकलत्रय आवै तिहँ ठौर । नख केशादि अपावन और ॥
पानी बूंद परै आकास । ताघर मुनि फिरजाहि विमास॥ १२॥

खाज सहित रोगी नर देख । पीव वहत पीड़ित पुनि पेख ॥
लोहू दृष्टि परै जो कहीं । तो मुनि असन लेनके नहीं ॥१३॥
मांसादिक मल दृष्टिहि परै । कंद रु मूल मृतक परिहरै ॥
फल अरु वीज होंय तिहँ ठौर । तो मुनिलेहि न एको कौर ॥१४॥
विना वीज ऊगो जो डार । ता निरखत नहिं लेय अहार ॥
ऐसे दोष छियालिस हीन । तजहिं ताहि संयमि परवीन॥१५॥
उत्तम कुल श्रावकको जान । द्वारापेखन शुद्ध प्रमान ॥
विनयवंत प्राशुक कर नीर । वोलै तिष्ठ स्वामि जगवीर॥ १६ ॥
ताघर दृष्टि विलोकहिं साध । यहां न कोउ लागै अपराध ॥
तव तिहँ मंदिरमें अनुसरै । प्राशुक भूमि निरख पग धरै॥१७॥
श्रावक जो प्राशुक आहार । कीन्हों दोष छियालिस टार ॥
निजहित पोषनको परवार । ता महितें कछु भिन्न निकार॥१८
द्वै करजोर मुनीश्वर लेहिं । श्रावक निजकरसों तिहँ देहिं ॥
पुनि कर फेर नीरको धरै । प्राशुकजल तिहँ करमें करै ॥ १९ ॥
लेय अहार नीर तिहँ ठौर । जिनकल्पी उत्तम शिरमौर ॥
थिवरकल्पिकी हू यह चाल । दोऊं मुनिवर दीनदयाल ॥ २० ॥
दोऊं वनवासी निर्ग्रन्थ । दोऊं चलहिं जिनेश्वर पंथ ॥
दोऊं जपतप किरिया करैं । दोऊं अनुभव हिरदै धरैं ॥ २१॥
जिनकल्पी एकाकी रहै । थिवरकल्पि शिष्यशाखा गहै ॥
अट्ठाईस मूलगुण सार । आपसाधु पालहिं निरधार ॥ २२ ॥
षष्टम अरु सप्तम गुण थान । दोऊं रहैं परम परधान ॥
पूरब कोटि वरष वसु घाट । उतकृष्टै वरतै यह बाट ॥ २३ ॥
केवलज्ञान दोऊं उपजाय । पंचमि गतिमें पहुंचें जाय ॥
सुख अनंत विलसै तिहँ ठौर । तातैं कहैं जगत शिरमौर ॥२४॥

संवत सत्रहसै पचास । जेठशुदी पंचमि परकाश ॥
भैया वंदत मनहुलास । जयजय मुकतिपंथ सुखवास ॥ ७५ ॥
इति छियालीसदोषरहित आहारशुद्धि चौपई

अथ जिनधर्मपचीसिका लिख्यते ।

दोहा

प्रगट देव परमातमा, चिदानंद भगवान ॥
वंदत हों तिनके चरन, नाय शीस धर ध्यान ॥ १ ॥

छप्पय

धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमें दया उभयविधि ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमहिं लखै आपनिधि ॥
धन्य धन्य जिनधर्म, पंथशिवको दरसावै ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जहॉं केवल पद पावै ॥
पुनि धन्य धन्य जिनधर्म यह, सुख अनंत जहॉं पाइये ।
'भैया' त्रिकाल निजघटविषैं, शुद्ध दृष्टि धर ध्याइये ॥ २ ॥
जैनधर्मको मर्म, दृष्टि समकिततैं सूझैं ।
जैनधर्मको मर्म, मूढ कैसें कर बूझैं ॥
जैनधर्मको मर्म, जीव शिवगामी पावै ।
जैनधर्मको मर्म, नाथ त्रिभुवन को गावै ॥
यह जैनधर्म जगमें प्रगट, दया दुहू जग पेखिये ।
'भैया'सुविचक्षन भविक जन, जैनधर्म निज लेखिये ॥ ३ ॥
जैनधर्म जयवंत, अंत जाको नहिं कबहू ।
जैनधर्म जयवंत, संत प्राणी है अबहू ॥
जैनधर्म जयवंत, जंत सबको सुखकारी ॥
जैनधर्म जयवंत, तंत सबको अधिकारी ॥

सत जैनधर्म जयवंत जग, प्रगट परम पद पेखिये।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतैं, सुख अनंत सब लेखिये ॥ ४ ॥

कलपवृक्ष जिनधर्म, इच्छ सब पूरै मनकी।
चिंतामन जिनधर्म, चिंत सब टारै जनकी ॥
पारस सो जिनधर्म, करै लोहादिक कंचन।
काम धेनु जिनधर्म, कामना रहती रंच न ॥
जिनधर्म परमपद एक लख, सुख अनंत जहां पाइये।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतैं, मुक्तिनाथ तोहि गाइये ॥ ५ ॥

उदित तेजपरताप, होत दिनदिन जयकारी।
तम अज्ञान विनाश, आश निज पर अधिकारी ॥
सबको शीतल करै, उष्ण क्रोधादिक टारै।
सदा अमिय बरषंत, शांत रस अति विस्तारै ॥
'भैया' चकोर अंबुज भविक, सब प्राणिनको सुख करै।
सो जैनधर्म जग चंद सम, सेवत दुख संकट टरै ॥ ६ ॥

जैनधर्म विन जीव! जीत ह्वै है नहिं तेरी।
जैनधर्म विन जीव! रीत किन करै घनेरी ॥
जैनधर्म विन जीव! ज्ञान चारित कहुँ नाहीं।
जैनधर्म विन जीव! प्रकृति पर जाह न गाही ॥
इहि जैनधर्म विन जीव! तुहै, दया उभय सूझै न दृग।
'भैया' निहार निज घट विषै, जैनधर्म सोई मोक्षमग ॥ ७ ॥

जैनधर्म विन जीव! तोहि शिवपंथ न सूझै।
जैनधर्म विन जीव! आप परको नहिं बूझै ॥
जैनधर्म विन जीव! मर्म निजको नहिं पावै।
जैनधर्म विन जीव! कर्मगति दृष्टि न आवै ॥

इहि जैनधर्म विन जीव तुहँ, केवलपद कितहू नहीं ।
अजहू सभारि चिरकाल भयो, चिदानद[1] चेतो कहीं ॥ ८ ॥

जैनधर्मको जीव, आप परको सब जानै ।
जैनधर्मको जीव, वध अरु मोक्ष प्रमानै ॥
जैनधर्मको जीव, स्याद्वादी परत्यागी ।
जैनधर्मको जीव, होय निश्चय वैरागी ॥
इहि जैनधर्मको जीव जग, अजरामरपदवी लहै ।
'भैया' अनत सुख भोगवै, आचारज इहविधि कहै ॥ ९ ॥

कवित्त

पापनके कूट जे अटूट भरे घट माहि, होते चिरकालनके सबै निघटत हैं । लागे जो मिथ्यातभाव भूलिके सुभावनिज, तिनहूके पटल प्रभात ज्यों फटत है ॥ अपनी सुदृष्टि होत प्रगटै प्रकाश ज्योत, तिहू लोकमें उद्योत सत्य प्रगटत है । ऐसो जिनधर्मके प्रसादतें प्रकाश होय, अजहू सभार भैया काहेको रटत है॥१०॥

छप्पय

जो अरहत सुजीव, जीव सब सिद्ध भणिज्जे ।
आचारज पुन जीव, जीव उवझाय गणिज्जे ॥
साधु पुरुष सब जीव, जीव चेतन पद राजै ।
सो तेरे घट निकट, देख निज शुद्ध विराजै ॥
सवजीव द्रव्यनय एकसे, केवलज्ञान स्वरूप मय ।
तस ध्यान करहु हो भव्यजन, जो पावहु पदवी अखय ॥ ११॥

सवैया

जो जिनदेवकी सेव करै जग, ताजिनदेवसो आप निहारै ।
जो शिवलोक वसै परमातम, तासम आतम शुद्ध विचारै ॥

आपमें आप लखै अपनो पद, पाप रु पुण्य दुहूं निरवारै ।
सो जिनदेवको सेवक है जिय, जो इहि भांति क्रिया करतारै ॥१२॥

कवित्त.

एक जीवद्रव्यमें अनंत गुण विद्यमान, एक एक गुणमें अनंत शक्ति देखिये । ज्ञानको निहारिये तो पार याको कहूं नाहिं, लोक ओ अलोक सव याहीमें विशेखिये ॥ दर्शनकी ओर जो विलोकिये तो वहै जोर, छहों द्रव्य भिन्न भिन्न विद्यमान पेखिये । चारितसों थिरता अनंतकाल थिररूप, ऐसेही अनंत गुण भैया सव लेखिये १३

छप्पय.

राग दोष अरु मोहि, नाहिं निजमाहिं निरक्खत ।
दर्शन ज्ञान चरित्र, शुद्ध आतम रस चक्खत ॥
परद्रव्यनसों भिन्न, चिह्न चेतनपद मंडित ।
वेदत सिद्ध समान, शुद्ध निज रूप अखंडित ॥
सुख अनंत जिहि पदवसत, सो निहचै सम्यक महत ।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, श्रीजिनंद इहि विधि कहत १४

व्यवहार सम्यक लक्षण. छप्पय.

छहों द्रव्य नव तत्त्व, भेद जाके सव जानै ।
दोष अठारह रहित, देव ताको परमानै ॥
संयम सहित सुसाधु, होय निरग्रंथ निरागी ।
मति अविरोधी ग्रन्थ, ताहि मानै परत्यागी ॥
वरकेवल भाषित धर्मधर, गुण थानक बूझै मरम ।
'भैया' निहार व्यवहार यह, सम्यक लक्षण जिन धरम ॥१५॥

व्यवहार निश्चयनय वर्णन—मात्रिक कवित्त.

जाके निहचै प्रगट भये गुण, सम्यक दर्शन आदि अपार ।

ताके हिरदै गई विकलता, प्रगट रही करनी व्यवहार ॥
जहँ व्यवहार होय तहँ निहचै, होय न होय उभय परकार ।
जहँ व्यवहार प्रगट नहि दीखै, तहा न निश्चय गुण निरधार१६

कवित्त

आख देखे रूप जहा दौड तूही लागै तहा, सुने जहा कान तहा तूही सुनै बात है। जीभ रस स्वाद धरै ताको तू विचार करै, नाक सूघे वास तहाँ तू ही विरमात है ॥ फर्सकी जु आठ जाति तहा कहो कौन भाति, जहा तहाँ तेरो नाव प्रगट विख्यात है। याही देह देवलमें केवलि स्वरूपदेव, ताकी कर सेव मन कहाँ दौंडे जात है ॥ १७॥

जासौं कहै घर तामै डर तौ कईक तोहि, सवन विसार हस विपैरस लाग्यो है। गिरवेको डर अरु डर आगि पानीहूको, वस्तु राखवेको डर चौर डर जाग्यो है ॥ पेट भरवेको डर रोग शोक महाडर, लोकनिकी लाज डर राजडर पाग्यो है। डर जमराजहूको डारि तू निशक भयो, जैसें मोह राजाने निवाज तोहि दाग्यो है ॥ १८ ॥

रागी द्वेषी देख देव ताकी नित करसेव, ऐसो है अवेन ताको कैसें पाप खपनो ?। राग रोग क्रीडा सग विषैकी उठै तरग, ताही में अभग रैन दिना करै जपनो ॥ आरति ओ रौद्र ध्यान दोऊ किये आगेवान, एतैपै चहै कल्यान देके दृष्टि ढपनो। अरे मिथ्या चारी तैं विगारी मति गति दोऊ, हाथ ले कुल्हारी पाँय मारत है अपनो ॥ १९ ॥

छप्पय

जन्म जरा अरु मरन, पाप सताप विनासै ।
रोग शोक दुख हरै, सर्व चिता भय नासै ॥

ऋद्धि सिद्धि अनुसरै, विविध विद्या परकासै ।
निजनिधि लहै प्रकाश, ज्ञान प्रभुता गुण भासै ॥
अरु कर्म शत्रु सब जीतके, केवलि पद महिमा वरै ।
सो जैनधर्म जयवंत जग, जास हृदय ध्रुव संचरै ॥ २० ॥

जैनधर्म परसाद, जीव मिथ्यामति खंडै ।
जैनधर्म परसाद, प्रकृति उर सात विहंडै ॥
जैनधर्म परसाद द्रव्यपटको पहिचानै ।
जैनधर्म परसाद, आप परको ध्रुव ठानै ॥
जैनधर्म परसाद लहि, निजस्वरूप अनुभव करै ।
'भैया' अनंत सुख भोगवै, जैन धर्म जो मन धरै ॥ २१ ॥

जैनधर्म परसाद, जीव सब कर्म खपावै ।
जैनधर्म परसाद, जीव पंचमि गति पावै ॥
जैनधर्म परसाद, बहुरि भवमें नहिं आवै ।
जैनधर्म परसाद, आप परब्रह्म कहावै ॥
श्री जैनधर्म परसादतैं, सुख अनंत विलसंत ध्रुव ।
सो जैनधर्म जयवंत जग, भैया जिहँ घट प्रगट हुव ॥ २२ ॥

कवित्त.

सुन मेरे मीत तू निचिंत ह्वैके कहा बैठो, तेरे पीछे काम शत्रु लागे अति जोर हैं । छिन छिन ज्ञान निधि लेत अति छीन तेरी , डारत अंधेरी भैया किये जात भोर हैं ॥ जागवो तो जाग अब कहत पुकारें तोहि, ज्ञान नैन खोल देख पास तेरे चोर हैं । फोरके शकति निज चोरको मरोर वांधि, तोसे बलवान आगें चोर ह्वैकै को रहैं ॥ २३ ॥

छप्पय

चहु गतिमें नर वडे, वडे तिनमें समदृष्टी ।
समदृष्टीतें वडे, साधुपदवी उतकृष्टी ॥
साधुनतें पुन वडे, नाथ उवझाय कहावें ।
उवझायनतें वडे, पच आचार वतावें ॥
तिन आचार्यनतें जिन वडे, वीतराग तारन तरन ।
तिन कह्यो जैनवृष जगतमें, भैया तस वदत चरन ॥ २४ ॥

दोहा

जैनधर्म सव धर्म पें, शोभत मुकुर समान ॥
जाके सेवत भव्यजन, पावत पद निर्वान ॥ २५ ॥
ज्यों दीपक सयोगतें, वत्ती करै उदोत ॥
त्यों ध्यावत परमातमा, जिय परमातम होत ॥ २६ ॥
श्री जिनधर्म उदोत है, तिहू लोक परसिद्ध ॥
'भैया' जे सेवहिं सदा, ते पावहिं निजरिद्ध ॥ २७ ॥
सत्रहसै पचासके, उत्तम भादव मास ॥
सुदि पूनम रचना कही, जैजिनधर्मप्रकाश ॥ २८ ॥

इति जिनधर्मपचीसिका

अथ अनादिबत्तीसिका लिख्यते ।

दोहा

अष्टकर्म अरि जीतकें, भये निरजन देव ॥
मन वच शीस नवायके, कीजे ताकी सेव ॥ १ ॥
छहों सु द्रव्य अनादिके, जगत माहि जयवत ॥
को किस ही कर्त्ता नहीं, यों भाखै भगवत ॥ २ ॥

अपने गुण परजायमें, वरतै सव निरधार ॥
को काहू भेटै नहीं, यह अनादि विस्तार ॥ ३ ॥
द्रव्य एक आकाश है, गुण जाको अवकास ॥
परणामी पूरन भर्यो, अंत न वरण्यों जास ॥ ४ ॥
दूजो पुद्गल द्रव्य है, वर्ण गन्ध रस फांस ॥
छाया आकृति तेज द्युति, ये सब जास विलास ॥ ५ ॥
तीजो धर्म सुद्रव्य है, चलत सहायी होय ॥
पुद्गल अरु पुन जीवको, शुद्ध स्वभावी जोय ॥ ६ ॥
चौथो द्रव्य अधर्म है, जब थिर तबहिं सहाय ॥
देय जीव पुद्गलनको, लोक हदलों भाय ॥ ७ ॥
पंचम काल प्रसिद्ध है, वर्त्तन जासु स्वभाय ॥
समय महूरत जाहि जो, सो कहिये परजाय ॥ ८ ॥
षष्ठम चेतन द्रव्य है, दर्शन ज्ञान स्वभाय ॥
परणामी परयोगसों, शुद्ध अशुद्ध कहाय ॥ ९ ॥
है अनादि ब्रह्मण्ड यह, छहों द्रव्यको वास ॥
लोकहद इनतें भई, आगें एक अकास ॥ १० ॥
सूर चंद निशदिन फिरैं, तारागण बहु संग ॥
यही अनादि स्वभाव है, छिन्न इक होय न भंग ॥ ११ ॥
कहा ज्ञान है नाज पैं, ऋतुविन उपजै नाहिं ॥
सबहि अनादि स्वभाव है, समुझ देख मनमाहिं ॥ १२ ॥
वोवत है जिहँ बीजको, उपजत ताको वृक्ष ॥
ताहीको रस बढत है, यहै बात परतक्ष ॥ १३ ॥
को वोवत वन वृक्षको, को सींचत नित जाय ॥
फलफूलनिकर लहलहे, यहै अनादि स्वभाय ॥ १४ ॥

वनस्पती फूलै फलै, ऋतु वसतके होत ॥
को सिखवत है वृक्षको, इहि दिन करो उदोत ॥ १५ ॥
वर्षत है जल धरनिपर, उपजत सब वनराय ॥
अपने अपने रस वढैं, यहै अनादि स्वभाय ॥ १६ ॥
जो पहिले कहो वृक्ष है, तौ न बनै यह वात ॥
विना वीज उपजै नहीं, यह तो प्रगट विख्यात ॥ १७ ॥
जो पहिले कहो वीज है, वीज भयो किहँ ठौर ॥
यहै वात नहिं सभवै, है अनादि की दौर ॥ १८ ॥
को सिखवत है नीरको, नीचेको ढर जाय ॥
अग्निशिखा ऊची चलै, यहै अनादि स्वभाय ॥ १९ ॥
कहो मीनके वालको, को शिखवत है वीर ! ॥
जन्मत ही तिरवो तहा, महा उदधिके नीर ॥ २० ॥
कौन सिखावत वालको, लागत मा तन धाय ॥
क्षुद्धित पेट भरै सदा, यहै अनादि स्वभाय ॥ २१ ॥
पछी चलै अकाशमें, कौन सिखावन हार ॥
यहै अनादि स्वभाव है, वन्यो जगत विस्तार ॥ २२ ॥
कोन सापके वदनमें, विष उपजावत वीर ! ॥
यहै अनादि स्वभाव है, देखो गुण गभीर ॥ २३ ॥
कहो सिहके वालको, सूरपनो कव होत ॥
कोटि गजनके पुजको, मार भगावै पोत ॥ २४ ॥
पृथिवी पानी पौन पुन, अग्नि अन्न आकास ॥
है अनादि इहि जगतमें, सर्व द्रव्यको वास ॥ २५ ॥
अपने अपने सहज सव, उपजत विनशत वस्त ॥
है अनादिको जगत यह, इहि परकार समस्त ॥ २६ ॥

चौपाई. (१६ मात्रा)

मूरख कहै ग्रन्थ पहिचानों। सांच झूठको भेद न जानों ॥
जो कुछ लिख्यो सोई मै मानों। मेरे हृदय यहै ठहरानो ॥३॥
धूप मांहि जो कहै अन्धेरा। सूरज अथवतं[1] होय सवेरा ॥
हिंसा करत पुण्य वहु होई। ऐसो लिख्यो सत्य मुहि सोई ॥४॥
मा कहिकैं जो वांझ वखाने। कर्म न होय प्रकृति परमाने ॥
जो मोको उपदेशहि ऐसो। तो मैं कहूं सत्य सव तैसो ॥ ५ ॥
सांच त्याग जो झूठ अलापै। झूठे वचन सत्य कहि थापै ॥
हिरदै सून्य सुन्यों मैं सवही। नैक विवेक धरों नहिं कवही॥६॥
ऐसे शून्य हिये जे प्रानी। ते कलियुगकी वनी निशानी ॥
तिनको देख दया मन धरिये। वाद विवाद कछू नहिं करिये॥७

दोहा.

ज्ञानवंत सुन वीनती, परसों नाही काम ॥
अनुभव आतम रामको, 'भैया' लख निजधाम ॥ ८ ॥

इति मूढाष्टकं।

अथ सम्यक्त्वपचीसिका लिख्यते।

सम्यक[2] आदि अनंत गुण, सहित सु आतम राम ॥
प्रगट भये जिहँ कर्म तज, ताहि करों प्रणाम ॥ १ ॥
उपशम वेदक क्षायकी, सम्यक तीन प्रकार ॥
ताहीके नव भेद हैं, कहों ग्रंथ अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई. (१५ मात्रा)

उपसम समकित कहिये सोय। सात प्रकृति उपसम जहँ होय।
दर्शन मोह तीन परकार। अनतानुवंधीकी चार ॥ ३ ॥

---

१ डुवते २ सम्यक्त्व वा सम्यग्दर्शन

क्षय उपसमके तीन प्रकार । तिनके नाम कहू निरधार ॥
अनतानुबधी चौकरी । जिहँ जिय शक्ति फोरके खरी ॥ ४ ॥
महा मिथ्यात मिश्र मिथ्यात । समै[1] प्रकृति उपशम विख्यात ॥
क्षय उपशम समकित तस नाम । अब दूजो वरनों इहि ठाम ॥५॥
अनतानु जे चार कपाय । महा मिथ्यात्व मिले क्षय जाय ॥
दोय प्रकृति उपसम है रहै । तासों क्षय उपसम पुनि कहै ॥६॥
क्षय पद जाहिं प्रकृति जिहँ ठाम । समै प्रकृति उपसम तिहँ नाम ॥
ये क्षय उपशम तिहँ विधि कहे । अब वेदक वरनों सरदहे ॥७॥
जहाँ चार प्रकृति खप रहै । द्वै उपशम इक वेदक लहै ॥
क्षयउपसमवेदक तिहँ नाव । कहे ग्रथमें है बहु ठाव ॥ ८ ॥
पाच खप उपशम है एक । समैप्रकृति वेदै गहि टेक ॥
दूजो भेद यहै सिरदार । अब तीजेको सुनहु विचार ॥९॥
छहो प्रकृति जामे क्षय जाहिं । समै मिथ्यात्व मिटै तहँ नाहि ॥
क्षायक वेदक लच्छन एह । कहे ग्रथमें नहिं संदेह ॥ १० ॥
उपशमवेदक कहिये तहाँ । छह उपशम इक वेदै जहा ॥
क्षायकसमकित तब जिय लहै । सातों प्रकृति मूलसों दहै ॥११॥
जब लग ये प्रकृति नहिं जाती । तब लग कहिये जीव मिथ्याती ॥
तिनके दूर कियेतै जीव । सम्यक दृष्टी कहे सदीव ॥१२॥
उनकी थिति पूरी जब होय । तब वे खिर फिर नहिं सोय ॥
सिरकें निजगुण परगट लहै । सो गुण काल अनन्तो रहै १३
जे गुण प्रगट भये तज कर्म । ते सब जानो जियको धर्म ॥
जैसो प्रभु देखा भगवान । तैसो है इनके सरधान ॥ १४॥
सम्यकवत जीव वैरागी । भावन सो सबही का त्यागी ॥
निमत पक्ष कर व्रत नाही । अप्रत्याख्यान उदै घटमाही ॥१५॥

(१) सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व (२) उदयरूप

मनवचकाय जोग त्रिक डोलै । लखै आपनी कर्म कलोलैं ॥
जितनी कर्म प्रकृति क्षय गई । तितनी कछु निर्मलता भई ॥१६
प्रकटी शक्ति ताहि पहिचानै । अरु जिनवरकी आज्ञा मानै ॥
अक्षर एक विरोधै कोय । ताको भ्रमन वहुत जग होय १७
तातैं व्रत पचखान न करै । जिनवरकी आज्ञासों डरै ॥
लेकैं व्रत जो भंजै जीव । ते महा पापी कहे सदीव ॥१८
अप्रत्याख्यान जाय नहिं जहाँ । व्रत पचखान पलै नहिं तहाँ ।
सम्यकदृष्टी परम सुजान । धरहिं शुद्ध अनुभवको ध्यान १९
अनुभवमें आतमरस लसै । आतमरसमें शिव सुख वसै ॥
आतम ध्यान धरयो जिनदेव । तातैं भये मुक्ति स्वयमेव ॥२०॥
मुक्ति होनको वीज निहार । आतम ध्यान धरै अरिटार ॥
ज्यों ज्यों कर्म विलयको जाहिं । त्यों त्यों सुख प्रगटै घट माहिं २१
प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान । कर चकचूर चढहिं गुण थान ॥
आगें महा ध्यान धर धीर । कर्म शत्रु जीतै वल वीर ॥२२॥
प्रगट करै निज केवल ज्ञान । सुख अनंत विलसै तिहँ थान ॥
लोक अलोक सवहि झलकंत । तातैं सव भाखै भगवंत ॥२३॥
चारों कर्म अघाती हार । तव वे पहुँचै मुकति मँझार ॥
काल अनंतहि ध्रुव ह्वै रहै । तास चरन भवि वंदन कहै २४

सुख अनंत की नीव यह, सम्यक दर्शन जान ॥
याहीतैं शिवपद मिलै, 'भैया' लेहु पिछान ॥ २५ ॥
सत्रहसै पंचासके, मारगसिर सित पक्ष ॥
तिथि लच्छन मुनिधर्मकी[1], मृगपति वार[2] प्रत्यक्ष ॥ २६॥

इति सम्यक्त्वपचीसिका ।

१ दशमी. २ सोमवार.

अथ वैराग्यपचीसिका लिख्यते ।

दोहा

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव ॥
मन वच शीस नवायकै, कीजे तिनकी सेव ॥ १ ॥
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ॥
मूल दुहुनको यह कह्यो, जाग सकै तो जाग ॥ २ ॥
क्रोधमान माया धरत, लोभ सहित परिणाम ॥
येही तेरे शत्रु हैं, समुझो आतमराम ॥ ३ ॥
इनही च्यारों शत्रुको, जो जीतै जगमाहिं ॥
सो पावहि पथ मोक्षको, यामें धोखो नाहिं ॥ ४ ॥
जा लच्छीके काज तू, खोवत है निजधर्म ॥
सो लच्छी सग ना चलै, काहे भूलत भर्म ॥ ५ ॥
जा कुटुबके हेत तू, करत अनेक उपाय ॥
सो कुटब अगनी लगा, तोको देत जराय ॥ ६ ॥
पोषत है जा देहको, जोग त्रिविधिके लाय ॥
सो तोकों छिन एकमें, दगा देय खिर जाय ॥ ७ ॥
लच्छी साथ न अनुसरै, देह चलै नहिं सग ॥
काढ काढ सुजनहि करै, देख जगतके रग ॥ ८ ॥
दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय ॥
विषय सुखनके कारनें, सर्वस चले गमाय ॥ ९ ॥
जगहिं फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार ॥
चेतन अब किन चेतहू, नरभव लहि अतिसार ॥ १० ॥
ऐसें मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय ॥
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ११ ॥

पीतो सुधा स्वभावकी, जी ! तो कहूं सुनाय ॥
तू रीतो क्यों जातु है, वीतो नरभव जाय ॥ १२ ॥
मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट ॥
भ्रष्ट करत है सिष्टको, शुद्ध दृष्टि दै पिष्ट ॥ १३ ॥
चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेषको संग ॥
ज्यों प्रगटै परमातमा, शिव सुख होय अभंग ॥ १४ ॥
ब्रह्म कहूं तो मै नहीं, क्षत्री हू पुनि नाहिं ॥
वैश्य शूद्र दोऊ नहीं, चिदानंद हूं माहिं ॥ १५ ॥
जो देखै इहि नैनसों, सो सब विनस्यो जाय ॥
तासों जो अपनो कहै, सो मूरख शिरराय ॥ १६ ॥
पुद्गलको जो रूप है, उपजै विनसै सोय ॥
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय ॥ १७ ॥
देख अवस्था गर्भकी, कौन कौन दुख होंहि ॥
बहुर मगन संसारमें, सौ लानत है तोहि ॥ १८ ॥
अधो शीस ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार ॥
थोरे दिनकी बात यह, भूलि जात संसार ॥ १९ ॥
अस्थि चर्म मलमूत्रमें, रैन दिनाको बास ॥
देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥ २० ॥
रोगादिक पीड़ित रहै, महाकष्ट जो होय ॥
तबहू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥ २१ ॥
मरन समय विललात है, कोऊ लेहु बचाय ॥
जानै ज्यों त्यों जीजिये, जोर न कछू बसाय ॥ २२ ॥
फिर नरभव मिलिबो नहीं, किये हु कोट उपाय ॥
तातैं बेगहि चेत हू, अहो जगतके राय ॥ २३ ॥

भैयाकी यह वीनती, चेतन चितहि विचार ॥
ज्ञानदर्श चारित्रमें, आपो लेहु निहार ॥ २४ ॥
एक सात पचासके, सवत्सर सुखकार ॥
पक्ष शुकल तिथि धर्मकी, जै जै निशिपतिवार ॥ २५ ॥

इति वैराग्यपचीसी

अथ परमात्माछत्तीसी लिख्यते।

दोहा

परम देव परमातमा, परम ज्योति जगदीश ॥
परम भाव उर आनके, प्रणमत हों नमि शीश ॥ १ ॥
एक जु चेतन द्रव्य है, तिनमें तीन प्रकार ॥
बहिरातम अन्तर तथा, परमातम पदसार ॥ २ ॥
बहिरातम ताको कहैं, लखै न ब्रह्म स्वरूप ॥
मग्न रहै परद्रव्यमें, मिथ्यावत अनूप ॥ ३ ॥
अतर आतम जीव सो, सम्यग्दृष्टी होय ॥
चौथै अरु पुनि बारवें, गुणथानक लौं सोय ॥ ४ ॥
परमातम पद ब्रह्मको, प्रगट्यो शुद्ध स्वभाय ॥
लोकालोक प्रमान सब, झलकै जिनमें आय ॥ ५ ॥
बहिरातमास्वभाव तज, अतरातमा होय ॥
परमातम पद भजत है, परमातम है सोय ॥ ६ ॥
परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय ॥
परमातमको ध्यावते, यह परमातम होय ॥ ७ ॥
परमातम यह ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश ॥
परसों भिन्न निहारिये, जोइ अलख सोइ ईश ॥ ८ ॥

जो परमातम सिद्धमें, सो ही या तन माहिं ॥
मोह मैल दृग लगि रह्यो, तातें सूझै नाहिं ॥ ९ ॥
मोह मैल रागादिको, जा छिन कीजे नाश ॥
ता छिन यह परमातमा, आपहि लहै प्रकाश ॥ १० ॥
आतम सो परमातमा, परमातम सो सिद्ध ॥
वीचकी दुविधा मिटगई, प्रगट भई निज रिद्ध ॥ ११ ॥
मैंहि सिद्ध परमातमा, मैं ही आतमराम ॥
मैं ही ज्ञाता ज्ञेयको, चेतन मेरो नाम ॥ १२ ॥
मै अनंत सुखको धनी, सुखमय मोर स्वभाय ॥
अविनाशी आनंदमय, सो हों त्रिभुवन राय ॥ १३ ॥
शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान ॥
गुण अनंतकर संजुगत चिदानंद भगवान ॥ १४ ॥
जैसो शिव खेतहि वसै, तैसो या तनमाहिं ॥
निश्चय दृष्टि निहारतें, फेर रंच कहुँ नाहिं ॥ १५ ॥
कर्मनके संयोगतें, भये तीन परकार ॥
एक आतमा द्रव्यको, कर्म नचावन हार ॥ १६ ॥
कर्म संघाती आदिके, जोर न कछू बसाय ॥
पाई कला विवेककी, राग द्वेष विन जाय ॥ १७ ॥
कर्मनकी जर राग है, राग जरे जर जाय ॥
प्रगट होत परमातमा, भैया सुगम उपाय ॥ १८ ॥
काहे को भटकत फिरै, सिद्ध होनके काज ॥
राग द्वेष को त्यागदे, 'भैया' सुगम इलाज ॥ १९ ॥
परमातम पदको धनी, रंक भयो विललाय ॥
राग द्वेषकी प्रीतिसों, जनम अकारथ जाय ॥ २० ॥

राग द्वेपकी प्रीति तुम, भूलि करो जिन रच ॥
परमातम पद ढाकके, तुमहिं किये तिरजच ॥ २१ ॥
जप तप सयम सब भलो, राग द्वेप जो नाहि ॥
राग द्वेपके जागते, ये सव सोये जाहि ॥ २२ ॥
राग द्वेपके नागतें, परमातम परकाश ॥
राग द्वेपके भासतें, परमातम पद नाश ॥ २३ ॥
जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार ॥
देख सयोगी स्वामिको, अपने हिये विचार ॥ २४ ॥
लाख वातकी वात यह, तोको दई वताय ॥
जो परमातम पद चहै, राग द्वेप तज भाय ॥ २५ ॥
राग द्वेपके त्याग विन, परमातम पद नाहि ॥
कोटिकोटि जपतप करो, सवहि अकारथ जाहिं ॥ २६ ॥
दोप आतमाको यहै, राग द्वेपके सग ॥
जैसें पास मजीठके, वस्त्र और ही रग ॥ २७ ॥
तैसें आतम द्रव्यको, राग द्वेपके पास ॥
कर्म रग लागत रहै, कैसें लहै प्रकाश ॥ २८ ॥
इन कर्मनको जीतिवो, कठिन वात है मीत ॥
जड खोदे विन नहि मिटै, दुष्टजाति विपरीत ॥ २९ ॥
लैल्लोपत्तोके किये, ये मिटवेके नाहि ॥
ध्यान अग्नि परकाशकें, होम देहु तिहि माहिं ॥ ३० ॥
ज्यों दारूके गजको, नर नहि सकै उठाय ॥
तनक आग सयोगतें, छिन इकमें उडि जाय ॥ ३१ ॥
देह सहित परमातमा, यह अचरजकी वात ॥

(१) टालटूल (२) ढेरको

राग द्वेषके त्यागतैं, कर्म शक्ति जर जात ॥ ३२ ॥
परमातमके भेद द्वय, निकल सकल परमान ॥
सुख अनंतमें एकसे, कहिवेको द्वय थान ॥ ३३ ॥
भैया वह परमातमा, सो ही तुममें आहि ॥
अपनी शक्ति सम्हारिके, लखो वेग ही ताहि ॥ ३४ ॥
राग द्वेषको त्यागके, धर परमातम ध्यान ॥
ज्यों पावे सुख संपदा, भैया इम कल्यान ॥ ३५ ॥
संबत विक्रम भूपको, सत्रहसे पंचास ॥
मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुति जास ॥ ३६ ॥

इति परमात्माछत्तीसी ।

अथ नाटकपचीसी लिख्यते ।

कर्म नाट नृत तोरके, भये जगत जिन देव ॥
नाम निरंजन पद लह्यो, करूं त्रिविधि तिहिं सेव ॥ १ ॥
कर्मनके नाटक नटत, जीव जगतके माहिं ॥
तिनके कछु लच्छन कहूं, जिन आगमकी छाहिं ॥ २ ॥
तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावनहार ॥
नाचत है जिय स्वांगधर, करकर नृत्य अपार ॥ ३ ॥
नाचत है जिय जगतमें, नाना स्वांग वनाय ॥
देव नर्क तिरजंचमें, अरु मनुष्य गति आय ॥ ४ ॥
स्वांग धरै जव देवको, मानत है निज देव ॥
वही स्वांग नाचत रहै, ये अज्ञानकी टेव ॥ ५ ॥
औरनसों औरहि कहै, आप कहै हम देव ॥
गहिके स्वांग शरीरको, नाचत है स्वयमेव ॥ ६ ॥

भये नरकमें नारकी, लागे करन पुकार ॥
छेदन भेदन दुख सहै, यही नाच निरधार ॥ ७ ॥
मान आपको नारकी, त्राहि त्राहि नित होय ॥
यह स्वाग निर्वाह है, भूलपरो मति कोय ॥ ८ ॥
नित निगोदके स्वागकी, आदि न जाने जीव ॥
नाचत है चिरकालके, भव्य अभव्य सदीव ॥ ९ ॥
इत्तर नाम निगोद है, तहाँ वसत जे हस ॥
ते सव स्वागहि खेलकें, वहुर धर्‍यो यह वस ॥ १० ॥
उछरि उछरिकें गिरपरें, ते आवै इहि ठौर ॥
मिथ्यादृष्टि स्वभाव धर, यह स्वाग शिरमौर ॥ ११ ॥
कवह पृथिवी कायमें, कवह अग्नि स्वरूप ॥
कवह पानी पौन ह्वै, नाचत स्वाग अनूप ॥ १२ ॥
वनस्पतीके भेद वहु, स्वास अठारह वार ॥
तामें नाच्यो जीवयह, धर धर जन्म अपार ॥ १३ ॥
विकलत्रयके स्वागमें, नाचे चेतन राय ॥
उसीरूप ह्वै परणये, वरनें कर्म जाय ॥ १४ ॥
उपजे आय मनुष्यमें, धरे पंचेंद्री स्वाग ॥
अष्ट मदनि मातो रहै, मानो खाई भाग ॥ १५ ॥
पुण्य योग भूपति भये, पापयोग भये रक ॥
सुख दुख आपहि मानिके, नाचत फिरे निशक ॥ १६ ॥
नारि नपुमक नर भये, नाना स्वाग रमाहिं ॥
चेतनसों परिचय नहीं, नाच नाच खिर जाहिं ॥ १७ ॥
ऐसे काल अनत हुव, चेतन नाचत तोहि ॥
अजहू आप सभारिये, सावधान किन होहि ॥ १८ ॥

सावधान जे जिय भये, ते पहुंचे शिव लोक ॥
नाचभाव सब त्यागके, विलसत सुखके थोक ॥ १९ ॥
नाचत हैं जग जीव जे, नाना स्वांग रमंत ॥
देखत हैं तिह नृत्यको, सुख अनंत विलसंत ॥ २० ॥
जो सुख देखत होत है, सो सुख नाचत नाहिं ॥
नाचनमें सब दुःख है, सुख निजदेखन माहिं ॥ २१ ॥
नाटकमें सब नृत्य है, सारवस्तु कछु नाहिं ॥
ताहि विलोको कौन है, नाचन हारे माहिं ॥ २२ ॥
देखै ताको देखिये, जानैं ताको जान ॥
जो तोको शिव चाहिये, तो ताको पहचान ॥ २३ ॥
प्रगट होत परमातमा, ज्ञान दृष्टिके देत ॥
लोकालोक प्रमान सब, छिन इकमें लखलेत ॥ २४ ॥
'भैया' नाटक कर्मतें, नाचत सब संसार ॥
नाटक तज न्यारे भये, ते पहुंचे भव पार ॥ २५ ॥

इति नाटकपचीसी।

अथ उपादाननिमित्तका संवाद लिख्यते।

दोहा.

पाद प्रणमि जिनदेवके, एक उक्ति उपजाय ॥
उपादान अरु निमितको, कहुं संवाद वनाय ॥ १ ॥
पूछत है कोऊ तहाँ, उपादान किह नाम ॥
कहो निमित्त कहिये कहा, कबके हैं इह ठाम ॥ २ ॥
उपादान निजशक्ति है, जियको मूल स्वभाव ॥
है निमित्त परयोगतें, वन्यो अनादि वनाव ॥ ३ ॥

निमित कहै मोको सबै, जानत है जग लोय ॥
तेरो नाव न जानहीं, उपादान को होय ॥ ४ ॥
उपादान कहै रे निमित, तू कहा करै गुमान ॥
मोकों जाने जीव वे, जो है सम्यकवान ॥ ५ ॥
कहै जीव सव जगतके, जो निमित्त सोइ होय ॥
उपादानकी वातको, पूछै नाहीं कोय ॥ ६ ॥
उपादान विन निमित तू, कर न सकै इक काज ॥
कहा भयो जग ना लखै, जानत है जिनराज ॥ ७ ॥
देव जिनेश्वर गुर यती, अरु जिन आगम सार ॥
इहि निमित्ततें जीव सब, पावत है भवपार ॥ ८ ॥
यह निमित्त इह जीवको, मिल्यो अनती वार ॥
उपादान पलट्यो नहीं, तौ भटक्यो ससार ॥ ९ ॥
कै केवली कै साधु कै, निकट भव्य जो होय ॥
सो क्षायक सम्यक लहै, यह निमित्तवल जोय ॥ १० ॥
केवलि अरु मुनिराजके, पास रहैं वहु लोय ॥
पै जाको सुलट्यो धनी, क्षायक ताको होय ॥ ११ ॥
हिसादिक पापन किये, जीव नर्कमें जाहि ॥
जो निमित्त नहि कामको, तो इम काहे कहाहि ॥ १२ ॥
हिंसामें उपयोग जिहँ, रहै ब्रह्मके राच ॥
तेई नर्कमें जात हैं, मुनि नहि जाहि कदाच ॥ १३ ॥
दया दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय ॥
जो निमित्त झूठो कहो, यह क्यों मानै लोय ॥ १४ ॥
दया दान पूजा भली, जगतमाहिं सुखकार ॥
जहँ अनुभवको आचरन, तहँ यह वध विचार ॥ १५ ॥

यह तो बात प्रसिद्ध है, शोच देख उरमाहिं ॥
नरदेहीके निमितविन, जिय क्यों मुक्ति न जाहिं ॥ १६ ॥
देह पींजरा जीवको, रोकै शिवपुर जात ॥
उपादानकी शक्तिसों, मुक्ति होत रे भ्रात ॥ १७ ॥
उपादान सब जीवपै, रोकन हारो कौन ॥
जाते क्यों नहिं मुक्तिमें, विन निमित्तके होन ॥ १८ ॥
उपादान सु अनादिको, उलट रह्यो जगमाहिं ॥
सुलटतही सूधे चले, सिद्ध लोकको जाहिं ॥ १९ ॥
कहुं अनादि विन निमितही, उलट रह्यो उपयोग ॥
ऐसी बात न संभवै, उपादान तुम जोग ॥ २० ॥
उपादान कहै रे निमित, हमपै कही न जाय ॥
ऐसे ही जिन केवली, देखै त्रिभुवन राय ॥ २१ ॥
जो देख्यो भगवान ने, सोही सांचो आहि ॥
हम तुम संग अनादिके, वली कहोगे काहि ॥ २२ ॥
उपादान कहै वह वली, जाको नाश न होय ॥
जो उपजत विनशत रहै, वली कहांतें सोय ॥ २३ ॥
उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार ॥
परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार ॥ २४ ॥
जो अहारके जोगसों, जीवत है जगमाहिं ॥
तो वासी संसारके, मरते कोऊ नाहिं ॥ २५ ॥
सूर सोम मणि अगिनके, निमित लखैं ये नैन ॥
अंधकारमें कित गयो, उपादान दृग दैन ॥ २६ ॥
सूर सोम मणि अग्नि जो, करैं अनेक प्रकाश ॥
नैन शक्ति विन ना लखै, अन्धकार सम भास ॥ २७ ॥

कहै निमित्त वे जीव को? मो विन जगके माहिं ॥
सब हमारे वश परे, हम विन मुक्ति न जाहि ॥२८॥
उपादान कहै रे निमित्त, ऐसे बोल न बोल ॥
तोको तज निज भजत हैं, तेही करैं किलोल ॥ २९ ॥
कहै निमित्त हमको तजे, ते कैसें शिव जात ॥
पचमहाव्रत प्रगट है, और हु क्रिया विख्यात ॥ ३० ॥
पचमहाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार ॥
परको निमित्त खपायके, तब पहुचें भवपार ॥ ३१ ॥
कहै निमित्त जग मै बडो, मोतै बडो न कोय ॥
तीन लोकके नाथ सब, मो प्रसादतें होय ॥ ३२ ॥
उपादान कहै तू कहा, चहु गतिमें ले जाय ॥
तो प्रसादतै जीव सब, दुखी होहि रे भाय ॥ ३३ ॥
कहै निमित्त जो दुख सहै, सो तुम हमहि लगाय ॥
सुखी कौन ते हौत है, ताको देहु बताय ॥ ३४ ॥
जा सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं ॥
ये सुख, दुखके मूल हैं, सुख अविनाशी माहि ॥ ३५ ॥
अविनाशी घट घट वसै, सुख क्यों विलसत नाहिं? ॥
शुभनिमित्तके योगविन, परे परे विललाहि ॥ ३६ ॥
शुभनिमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार ॥
पै इक सम्यक दर्श विन, भटकत फिर्‌यो गॅवार ॥ ३७ ॥
सम्यक दर्श भये कहा, त्वरित मुकतिमें जाहि ॥
आगें ध्यान निमित्त हैं, ते शिवको पहुँचाहिं ॥ ३८ ॥
छोर ध्यानकी धारना, मोर योगकी रीति ॥
तोर कर्मके जालको, जोर लई शिवप्रीति ॥ ३९ ॥

तब निमित्त हार्यो तहाँ, अब नहिं जोर बसाय ॥
उपादान शिव लोकमें, पहुँच्यो कर्म खपाय ॥ ४० ॥
उपादान जीत्यो तहाँ, निजबल कर परकास ॥
सुख अनंत ध्रुव भोगवै, अंत न बरन्यो तास ॥ ४१ ॥
उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवनपै वीर ॥
जो निजशक्ति संभारहीं, सो पहुँचै भवतीर ॥ ४२ ॥
भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे बरनी जाय ॥
वचनअगोचर वस्तु है, कहिबो वचन बनाय ॥ ४३ ॥
उपादान अरु निमितको, सरस बन्यो संवाद ॥
समदृष्टीको सुगम है, मूरखको बकवाद ॥ ४४ ॥
जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद ॥
साख जिनागमसों मिलै, तो मत कीज्यो खेद ॥ ४५ ॥
नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको वास ॥
तिहँ थानक रचनाकरी, 'भैया' स्वमति प्रकास ॥ ४६ ॥
संवत विक्रम भूप को, सत्रहसै पंचास ॥
फाल्गुण पहिले पक्षमें, दशों दिशा परकाश ॥ ४७ ॥

इति उपादाननिमित्तसंवाद ।

अथ चतुर्विंशतितीर्थंकरजयमाला लिख्यते ।

दोहा.

वीस चार जगदीशको, बंदों शीस नवाय ॥
कहूं तास जयमालिका, नामकथन गुण गाय ॥ १ ॥

पद्धरिछन्द. (१६ मात्रा)

जय जय प्रभु ऋषभ जिनेन्द्रदेव । जय जय त्रिभुवनपति

करहिं सेव ॥ जय जय श्री अजित अनंत जोर । जय जय जि
हँ कर्म हरे कठोर ॥ २ ॥ जय जय प्रभु सभव शिवसरूप । जय
जय शिवनायक गुण अनूप ॥ जय जय अभिनंदन निर्विकार ।
जय जय जिहिं कर्म किये निवार ॥ ३ ॥ जय जय श्री सुमति
सुमति प्रकाश । जय जय सब कर्म निकर्म नाश ॥ जय जय
पदमप्रभ पदम जेम । जय जय रागादि अलिप्त नेम ॥ ४ ॥
जय जय जिनदेव सुपार्श्व पास । जय जय गुणपुंज कहैं नि
वास ॥ जय जय चंद्रप्रभ चन्द्रकांति । जय जय तिहुं पुरजन
हरन भ्रांति ॥ ५ ॥ जय जय पुष्पदंत महंत देव । जय जय
षट द्रव्यनि कहन भेव ॥ जय जय जिन शीतल शीलमूल ।
जय जय मनमथ मृग शारदूल ॥ ६ ॥ जय जय श्रेयांस अन
त वच्छ । जय जय परमेश्वर हो प्रतच्छ ॥ जय जय श्री जिनवर
वासुपूज । जय जय पूज्यनके पूज्य तूंज ॥ ७ ॥ जय जय प्र-
भु विमल विमल महंत । जय जय सुख दायक हो अनंत ॥ जय
जय जिनवर श्री अनंत नाथ । जय जय शिवरमणी ग्रहण हा-
थ ॥ ८ ॥

जय जय श्री धर्म जिनेन्द्र धन्न । जय जय जिन निश्चल करन
मन्न ॥ जय जय श्रीजिनवर शांतिदेव । जय जय चक्री तीर्थंकरेव
॥ ९ ॥ जय जय श्रीकुंथु कृपानिधान । जय जय मिथ्यातमहरन
भान ॥ जय जय अरिजीतन अरहनाथ । जय जय भवि जीवन
मुक्ति साथ ॥ १० ॥ जय जय मल्लि नाथ महा अभीत । जय
जय जिन मोहनरेन्द्र जीत ॥ जय जय मुनिसुव्रत तुम सु-
ज्ञान । जय जय त्रिभुवनमें दीप भान ॥ ११ ॥ जय जय नमि-

(१) तू ही

नाथ निवास सुक्ख । जय जय तिहुं भवननि हरन दुःख ॥ जय जय श्री नेम कुमारचंद । जय जय अज्ञानतमके निकंद ॥ १२ ॥ जय जय श्रीपार्श्व प्रसिद्ध नाम । जय जय भविदायक मुक्तिधाम ॥ जय जय जिनवर श्रीवर्द्धमान । जय जय अनंत सुखके निधान ॥ १३ ॥ जय जय अतीत जिन भये जेह । जय जय सु अनागत ह्वै हैं तेह ॥ जय जय जिन हैं जे विद्यमान ॥ जय जय तिन वंदों धर सु ध्यान ॥१४॥ जय जय जिनप्रतिमा जिन स्वरूप । जय जयसु अनंत चतुष्ट भूप ॥ जय जय मन वच निज सीसनाय । जय जय जय 'भैया' नमै सुभाय ॥ १५ ॥

घत्ता.

जिनरूप निहारे आप विचारे, फेर न रंचक भेद कहै ॥
'भैया' इम वंदै ते चिरनंदै, सुख अनंत निजमाहिं लहै ॥ १६ ॥

दोहा.

रागभाव छूट्यो नहीं, मिट्यो न अंतर दोख ॥
संतति बाढै बंधकी, होय कहांसों मोख ॥ १७ ॥

इति चतुर्विंशतितीर्थंकरजयमाला.

अथ पंचेन्द्रियसंवाद लिख्यते ।

दोहा.

प्रथम प्रणामि जिनदेवको, बहुरि प्रणामि शिवराय ॥
साधु सकलके चरनको, प्रणमों सीस नवाय ॥ १ ॥
नमहुं जिनेश्वर बैनको, जगत जीव सुखकार ॥
जस प्रसाद घटपट खुलै, लहिये बुद्धि अपार ॥ २ ॥

इक दिन इक उद्यानमें, वैठे श्री मुनिराज ॥
धर्म देशना देत हैं, भवि जीवनके काज ॥ ३ ॥
समदृष्टी श्रावक तहा, और मिले वहु लोक ॥
विद्याधर क्रीडा करत, आय गये वहु थोक ॥ ४ ॥
चली वात व्याख्यानमें, पाचों इन्द्रिय दुष्ट ॥
त्यो त्यों ये दुख देत हैं, ज्यों ज्यो कीजे पुष्ट ॥ ५ ॥
विद्याधर वोले तहॉ, कर इन्द्रिनको पक्ष ॥
स्वामी हम क्यों दुष्ट हैं, देखो वात प्रत्यक्ष ॥ ६ ॥
हमहीतैं सव जगलखे, यह चेतन यह नाउ ॥
इक इन्द्रिय आदिक सवै, पच कहे जिहँ ठाउ ॥ ७ ॥
हमतैं जप तप होत हैं, हमतै क्रिया अनेक ॥
हमहीतै सयम पलै, हम विन होय न एक ॥ ८ ॥
रागी द्वेपी होय जिय, दोप हमहि किम देहु ॥
न्याय हमारो कीजिये, यह विनती सुन लेहु ॥ ९ ॥
हम तीर्थंकर देव पै, पाचों हैं परतच्छ ॥
कहो मुक्ति क्यों जात हैं, निजभावन कर स्वच्छ ॥ १०॥
स्वामि कहै तुम पाच हो, तुममें को सिरदार ॥
तिनसों चर्चा कीजिये, कहो अर्थ निरधार ॥ ११ ॥
नाक कान नैना कहै, रसना फरस विख्यात ॥
हम काहू रोकै नहीं, मुक्ति लोकको जात ॥ १२ ॥
नाक कहै प्रभु मैं वडो, मोतै वडो न कोय ॥
तीन लोक रक्षा करै, नाक कर्मी जिनै होय ॥ १३ ॥

(१) मा

नाक रहेतैं सव रह्यो, नाक गये सव जाय ॥
नाक वरोवर जगतमें, और न वडो कहाय ॥ १४ ॥
प्रथम वदन पर देखिये, नाक नवल आकार ॥
सुंदर महा सुहावनो, मोहे लोक अपार ॥ १५ ॥
सीस नवत जगदीसको, प्रथम नवत है नाक ॥
तौही तिलक विराजतो, सत्यारथ जग वाक ॥ १६ ॥

ढाल "दान सुपात्रन दीजिये" एदेशी भाषा गुजराती.

नाक कहै जग हूं वडो, वात सुनो सव कोई रे ॥
नाक रहे पत लोकमें, नाक गये पत खोई रे, नाक० ॥ १७ ॥
नाक रखनके कारणे, वाहूवलि वलवंतौ रे ॥
देश तज्यो दीक्षा ग्रही, पण न नम्यों चक्रवंतो रे, नाक० ॥१८॥
नाक रहनके कारनै, रामचन्द्र जुध कीधो रे ॥
सीता आणी वलकरी, वलि ते संयम लीधो रे, नाक० ॥१९॥
नाक राखण सीता सती, अगनी कुंडमें पैठी रे ॥
सिंहासन देवन रच्यो, तिहँ ऊपर जा वैठी रे, नाक० ॥२०॥
दशार्णभद्र महा मुनि, नाक राखण व्रत लीधो रे ॥
इन्द्र नम्यो चरणे तिहाँ, मान सकल तज दीधोरे, नाक०॥२१
सगर थयो सौरो धणी, छलथी दीक्षा लीधीरे ॥
नाक तणी लज्जा करी, फिर नवि मनसा कीधीरे, नाक०॥२२
अभय कुंवर श्रेणिक तणों, बेटो आज्ञाकारीरे ॥
तूंकारो तातहि दियो, ततछिन दीक्षा धारीरे, नाक०॥२३॥
नास कहूँ केता तणां, जीव तरचा जगमाहीरे ॥
नाक तणे परसादथी, शिव संपति विलसाईरे, नाक०॥२४॥

(१) इज्जत

सुख विल्में ससारना, ते सहु मुझ परसादेरे ॥
नाना वृक्ष सुगधता, नाक सकल आस्वादेरे, नाक कहे० ॥२५॥
तीर्थंकर त्रिभुवन धणी, तेहना तनमा वासोरे ॥
परम सुगधो घणी लस, ते सुख नाक निवासोरे, नाक कहे०॥२६
और सुगधो अनेक छे, ते सब नाकज जाणेरे ॥
आनदमा सुख भोगवे, 'भैया' एम वखाणेरे, नाक कहे० ॥२७॥

दोहा

कान कहे रे नाक सुन, तू कहा करे गुमान ॥
जो चाकर आगें चले, तो नहिं भूप समान ॥ २८ ॥
नाक सुरनि पानी झरे, वहे मलेष्म अपार ॥
गृघनि कर पूरित रहे, लाजे नही गॅवार ॥ २९ ॥
तेरी छींक सुने जिते, करे न उत्तम काज ॥
मूंदे तुह दुर्गंधमें, तऊ न आवे लाज ॥ ३० ॥
वृषभ उट नारी निरख, और जीव जग माहि ॥
जित तित तोको छेदिये, ताऊ लजानो नाहि ॥ ३१ ॥
कान कहे जिन वैनको, सुने सदाचित लाय ॥
जस प्रसाद इह जीवको, सम्यग्दर्शन थाय ॥ ३२ ॥
कानन कुडल झलकता, मणि मुक्ता फल सार ॥
जगमग जगमग ह्वे रहे, देखे सब ससार ॥ ३३ ॥
सातों सुरको गायनो, अद्भुत सुखमय स्वाद ॥
इन कानन कर परखिये, मीठे मीठे नाद ॥ ३४ ॥
कानन सुन श्रावक भये, कानन सुनि मुनिराज ॥
कान सुनहि गुण द्रव्यके, कान बडे शिरताज ॥ ३५ ॥

राग काफी धमालमें०

कानन सुन ध्यानन ध्याइये हो, चिन्मूरत चेतन पाइये हो, कानन०टेक ।

कानन सरभर को करे हो, कान बड़े सिरदार ॥
छहों द्रव्यके गुण सुणै हो, जाने सकल विचार, कानन० ॥३६॥

संघ चतुर्विध सब तरे हो, कानन सुनि जिन वैन ॥
निज आतम सुख भोगवै हो, पावत शिवपद ऐन, कानन० ॥३७॥

द्वादशांग वानी सुनै हो, काननके परसाद ॥
गणधर तो गुरुवा कह्या हो, द्रव्य सूत्र सब याद, कानन०॥ ३८॥

कानन सुनि भरतेश्वरे हो, प्रभुको उपज्यो ज्ञान ॥
कियो महोच्छव हरखसें हो, पायो है पद निर्वान, कानन०॥३९॥

विकट वैन धन्ना सुने हो, निकस्यो तज आवास ॥
दीक्षा गह किरिया करी हो, पायो शिवगति वास, कानन० ॥४०॥

साधु अनाथीसों सुन्यो हो, श्रेणिक जीव विचार ॥
क्षायक सम्यक तब लह्यो हो, पावैगो भवदधि पार, कानन०॥४१॥

नेमनाथवानी सुनी हो, लीनो संयम भार ॥
ते द्वारिकके दाहसों हो, उबरे हैं जीव अपार, कानन० ॥ ४२ ॥

पार्श्वनाथके वैन सुने हो, महामन्त्र नवकार ॥
धरणेंधर पद्मावती हो, भये हैं जु तिहि वार, कानन० ॥ ४३॥

कानन सुनि कानन गये हो, भूपति तज बहु राज ॥
काज सवारे आपने हो, केवलि ज्ञान उपाज, कानन० ॥ ४४ ॥

जिनवानी कानन सुने हो, जीव तरे जग मांहि ॥
नाम कहां लों लीजिये हो, 'भैया' जे शिवपुर जांहि, कान० ४५

दोहा.

आंख कहै रे कान तू, इस्यो करै अहँकार ॥
मैलनिकर मूंद्यो रहै, लाजै नहीं लगार ॥ ४६ ॥

भली बुरी सुनतो रहै, तोरै तुरत सनेह ॥
तो सम दुष्ट न दूसरो, धारी ऐसी देह ॥ ४७ ॥
दुष्टवचन सुन तो जरै, महा क्रोध उपजत ॥
तो प्रसादतै जीव बहु, नरकन जाय परत ॥ ४८ ॥
पहिले तुमको वेधिये, नरनारीके कान ॥
तोहू नहीं लजात है, बहुर धरै अभिमान ॥ ४९ ॥
काननकी वातै सुनी, साची झूठी होय ॥
आँखिन देखी बात जो, तामें फेर न कोय ॥ ५० ॥
इन आखिनसों देखिये, तीर्थंकरको रूप ॥
सुख असख्य हिरदै लसै, सो जानै चिद्रूप ॥ ५१ ॥
आँखिन लख रक्षा करै, उपजै पुण्य अपार ॥
आँखिनके परसादसों, सुखी होत ससार ॥ ५२ ॥
आँखिनतें सब देखिये, तात मात सुत भ्रात ॥
देव गुरू अरु ग्रन्थ सब, आँखिनतें विख्यात ॥ ५३ ॥

ढाल—"वनमालीके वाग चपो मोहि रहोरी" ए देशी ।

आखिनके परसाद, देखे लोक सबैरी ॥
आवै निजपद याद, प्रतिमा पेखत वेरी, आखनके० ॥ ५४ ॥
देखू दृग सिद्धान्त, ग्रन्थ अनेक कथारी ॥
जे भाख्या भगवत, दरसित तेह ख्यारी, आखन० ॥ ५५ ॥
समवसरणकी रिद्धि, देखत हर्ष घनोरी ॥
प्रभु दर्शन फलसिद्धि, नाटक कौन गिनोरी, आँखन०॥५६॥
जिन मदिर जयकार, प्रतिमा परम बनीरी ॥
देखत हर्ष अपार, थुति नहिं जाहि भनीरी, आँखन० ॥५७॥

ईर्य्या समिति निहार, साधु चलै जु भलेरी ॥
ते पावैं शिवनार, सुखकी कीर्ति फलेरी, आँखिन० ॥ ५८ ॥
आँखिन विंव निहार, सम्यक शुद्ध लह्योरी ॥
गोत तीर्थंकर धार, रावन नाम कह्योरी, आँखिन० ॥ ५९ ॥
चारों परतेक बुद्ध, देखत भाव फिरेरी ॥
लहि निज आतमशुद्ध, भवजल वेग तिरेरी, आँखिन० ॥ ६० ॥
पूरव भव आहार, देते दृष्टि परयोरी ॥
इहि चौवीसी सार, अंस कुमर जु तरयोरी, आँखिन० ॥६१॥
वाघिनि साधु विदार, दंतहि दृष्टि धरीरी ॥
पूरव भवहि निहार, त्यागन देह करीरी, आँखिन० ॥ ६२ ॥
शालिभद्र सुकुमार, श्रेणिक दृष्टि परयोरी ॥
गहि संयमको भार, आतम काज करयोरी, आँखिन० ॥ ६३ ॥
देख्यो जुद्ध अकाज, दीक्षा वेग गहेरी ॥
पांडव तज सव राज, निज निधि वेग लहेरी, आंखन० ॥ ६४॥
कहूं कहाँलों नाम, जीव अनेक तरेरी ॥
'भैया' शिवपुर ठाम, आंखितैं जाय बरेरी, आँखन० ॥ ६५ ॥

दोहा.

जीभ कहै रे आँखि तुम, काहे गर्व करांहि ॥
काजल कर जो रंगिये, तो हू नाहिं लजांहि ॥ ६६ ॥
कायर ज्यों डरती रहै, धीरज नहीं लगार ॥
वातवातमें रोयदे, वोलै गर्व अपार ॥ ६७ ॥
जहाँ तहाँ लागत फिरै, देख सलौनो रूप ॥
तेरे ही परसाद तैं, दुख पावै चिद्रूप ॥ ६८ ॥

कहा कहूं दृगदोषको, मोपै कहे न जाहि ॥
देख विनाशी वस्तुको, बहुर तहाँ ललचाहिं ॥ ६९ ॥
जीभ कहै मोतैं सबै, जीवत है ससार ॥
षटरस भुजों स्वाद ले, पालो सब परिवार ॥ ७० ॥
मोविन आपन खुल सकै, कान सुनै नहिं बैन ॥
नाक न सूंघै वासको, मो विन कहीं न चैन ॥ ७१ ॥
मत्र जपत इह जीभसों, आवत सुरनर धाय ॥
किंकर है सेवा करै, जीभहिके सुपसाय ॥ ७२ ॥
जीभहितैं जपत रहैं, जगत जीव जिन नाम ॥
जसु प्रसादतैं सुख लहैं, पावैं उत्तम ठाम ॥ ७३ ॥

ढाल—"रे जीया तो विन घडीरे छ मास" ए देशी ।

यतीश्वर जीभ वडी ससार, जपै पच नवकार,
जतीश्वर० ॥ टेरु ॥

द्वादशागवाणी श्रवैजी, बोलै वचन रसाल ॥
अर्थ करै सूत्रन सबजी, सिखवै धर्म विशाल, यतीश्वर०॥७४॥
दुरजनतैं सज्जन करैजी, बोलत मीठे बोल ॥
ऐसी करा न औरपैजी, कौन आग किह तोल, यतीश्वर० ॥७५॥
जीभहितैं सब जीतिये जी, जीभहितैं सब हार ॥
जीभहितैं सब जीवसेंजी, कीजतु है उपकार, यतीश्वर०॥७६॥
जीभहितैं गणधर भयेजी, भव्यनि पथ दिखाय ॥
आपन ये शिवपुर गयेजी, कर्मकलक खपाय, यतीश्वर०॥७७॥
जीभहितैं उवझायजूजी, पावै पद परधान ॥
जीभहितैं समकित लयो जु, परदेशी परवान, यतीश्वर०॥७८॥

मथुरा नगरीमें हुवोजी, जंबूनाम कुमार ॥
कहिकैं कथा सुहावनीजी, प्रति बोध्यो परिवार, यतीश्वर०॥७९॥
रावनसों विरचे भलेजी, वाल महामुनि वाल ॥
अष्टापद मुक्त गयाजी, देखहु ग्रंथ निहाल, यतीश्वर०॥ ८० ॥
मिटै उरझ उरकी सबैजी, पूछत प्रश्न प्रतक्ष ॥
प्रगट लहै परमात्माजी, विनसे भ्रमको पक्ष, यतीश्वर०॥ ८१ ॥
तीन लोकमें जीभही जी, दूर करै अपराध ॥
प्रतिक्रमणकिरिया करैजी, पढै सिझाये साध, यतीश्वर ॥८२॥
जीभहि तैं सब गाइयेजी, सातों सुरके भेद ॥
जीभहितैं जस जंपियेजी, जीभहि पढिये वेद, यतीश्वर, ॥८३॥
नाम जीभतैं लीजियेजी, उत्तर जीभहि होय ॥
जीभहि जीव खिमाइयेजी, जीभ समौ नहि कोय, यतीश्वर॥८४॥
केते जिय मुक्ति गयेजी, जीभहिके परसाद ॥
नाम कहांलों लीजियेजी, भैया वात अनादि, जतीश्वर ॥ ८५ ॥

दोहा.

फर्स कहैरे जीभ तू, एतो गर्व करंत ॥
तो लागै झूंठो कहै, तो हू नाहि लजंत ॥ ८६ ॥
कहै वचन कर्कस बुरे, उपजै महा कलेश ॥
तेरे ही परसादतैं, भिड़ भिड़ मरै नरेश । ८७ ॥
तेरे ही रस काजको, करत अरंभ अनेक ॥
तोहि तृपति क्यों ही नही, तोतैं सबै उदेक ॥ ८८ ॥
तोमै तो अवगुण घने, कहत न आवै पार ॥
तो प्रसादतैं सीसको, जात न लागै वार ॥ ८९ ॥
झूंठे ग्रंथ न तू पढ़ै, दै झूंठो उपदेश ॥

जियको जगत फिरावती, और हु करै कलेश ॥ ९० ॥
जा दिन जिय थावर वसत, ता दिन तुममें कौन ॥
कहा गर्व खोटो करो, नाक आँख मुख श्रौन ॥ ९१ ॥
जीव अनंते हम धरैं, तुम तौ सख असखि ॥
तितहू तो हम विन नही, कहा उठत हो झखि ॥ ९२ ॥
नाक कान नैना सुनो, जीभ कहा गर्वाय ॥
सब कोऊ शिरनायकैं, लागत मेरे पाय ॥ ९३ ॥
झूठी झूठी सब कहै, साची कहै न कोय ॥
विन काया के तप तपे, मुक्ति कहासो होय ॥ ९४ ॥
सहै परीसह वीस द्वै, महा कठिन मुनि राज ॥
तब तौ कर्म खपाइकैं पावत है शिवराज ॥ ९५ ॥

ढाल–" मोरी महियोरी लाल न आवेगो" ए देशी ।

मोरासाधुजी फरस घटो ससार, करै कइ उपकार, मोरा
दक्षिण करत दीजिये जी, दान अनेक प्रकार ॥
तो तिहँ भवशिवपद लहैजी, मिटै मरनकी मार, मोरा०॥९६॥
दान देत मुनिराजको जी, पावै परमानद ॥
सुरनर कोटि सेवा करैजी, प्रतपै तेज दिनद, मोरा० ॥ ९७ ॥
नरनारी कोउ धरोजी, शील व्रतहिं शिरदार ॥
सुख अनेक सो जी लहैजी, देखो फरस प्रकार, मो० ॥ ९८ ॥
तपकर काया कृश करैजी, उपजै पुण्य अपार ॥
सुख विलसै सुरलोककेजी, अथवा भवदधि पार, मोरा०॥ ९९ ॥
भाव जु आतम भावतोजी, सो वैठो मो माहि ॥
काया विन किरिया नहीं जी, किरिया विन सुख नाहिं मो ॥१००॥

गज सुकुमार गिरयो नहीं जी, फरस तपत भई जोर ॥
केवल ज्ञान उपायकैंजी, पहुँच्यो शिवगति ओर, मोरा० ॥१०१॥
खंदक ऋषिकी खाल उतारी; सह्यो परीसह जोर ॥
पूर्व बंध छूटै नहीजी, घट गये कर्म कठोर, मोरा० ॥१०२॥
देखहु मुनि दमदंतको जी, कौरों करी उपाधि ॥
ईटनसें गर्भित भयोजी, तऊन तजीय समाधि, मोरा० ॥ १०३ ॥
सेठ सुदर्शनको दियोजी, राजा दंड प्रहार ॥
सह्यो परीसह भावस्योंजी, प्रगट्यो पुण्य अपार, मोरा०॥१०४॥
प्रसन्न चन्द्र शिर फरसियोजी, फिर जगये सब भाव ॥
नरकहि तज शिवगति लहीजी, देखहु फरस उपाव, मोरा०१०५
जेते जिय मुकते गयेजी, फरसहिके उपगार ॥
पंच महाव्रत विनधरेजी, कोऊ न उतरयो पार, मोरा०॥१०६॥
नांव कहांलों लीजियजी, वीत्यो काल अनंत ॥
'भैया' मुझ उपकारकोजी, जानै श्रीभगवंत, मोरा० ॥१०७॥

सोरठा.

मन बोल्यो तिहँ ठौर, अरे फरस संसारमें ॥
तू मूरख शिरमौर, कहा गर्व झूठो करै ॥ १०८ ॥
इक अंगुल परमान, रोग छानवें भर रहे ॥
कहा करै अभिमान, देख अवस्था नरककी ॥ १०९ ॥
पांचों अव्रत सार, तिनसेती नित पोषिये ॥
उपजै कई विकार, एतेपैं अभिमान यह ॥ ११० ॥
छिन इकमें खिर जाय, देखत दृष्ट शरीर यह ॥
एतेपैं गर्वाय, तोसम मूरख कौन है ॥ १११ ॥

दोहा

मन राजा मन चक्रि है, मन सबको सिरदार ॥
मनसों वडो न दूसरो, देख्यो इहि ससार ॥ ११२ ॥
मनते सवको जानिये, जीव जिते जगमाहि ॥
मनते कर्म खपाइये, मनसरभर कोउ नाहि ॥ ११३ ॥
मनते करुणा कीजिये, मनते पुण्य अपार ॥
मनते आतमतत्त्वको, लखिये सर्व विचार ॥ ११४ ॥
मनहि सयोगी स्वामिपे, सत्य रह्यो ठहराय ॥
चार कर्मके नाशतें, मन नहि नाश्यो जाय ॥ ११५ ॥
मन इन्द्रिनको भूप है, इन्द्रिय मनके दास ॥
यह तो वात प्रसिद्ध है, कीन्हीं जिनपरकाश ॥ ११६ ॥
तव वोले मुनिरायजी, मन क्यो गर्व करत ॥
देख हु तदुल मच्छको, तुमत नर्क परत ॥ ११७ ॥
पाप जीव कोई करो, तू अनुमोदे ताहि ॥
तासम पापी तू कह्यो, अनरथ लेहि निसाहि ॥ ११८ ॥
इन्द्रिय तो वैठी रहें, तू दौरे निशदीश ॥
छिन छिन वाधे कर्मको, देखत हे जगदीश ॥ ११९ ॥
वहुत वात कहिये कहा, मन सुनि एक विचार ॥
परमातमको ध्याइये, ज्यों लहिये भवपार ॥ १२० ॥
मन वोल्यो मुनि राजसो, परमातम है कोन ॥
स्वामी ताहि वताइये, ज्यो लहिये सुख भौन ॥ १२१ ॥
आतमको हम जानते, जो राजत घट माहि ॥
परमातम किह ठौर है, हम तो जानत नाहिं ॥ १२२ ॥

परमातम इहि ठौर है, रागद्वेष जिहिं नाहिं ॥
ताको ध्यावत जीव ये, परमातम ह्वै जाहिं ॥ १२३ ॥
परमातम द्वै विधि लसै, सकल निकल परमान ॥
तिसमें तेरे घट बसै, देखि ताहि धर ध्यान ॥ १२४ ॥

ढाल—"कपूर हुवै अति उजलो रे मिरियासेती रंग" ए देशी.।

प्राणी आतम धरम अनूपरे, जगमें प्रगट चिद्रूप, प्राणी० टेक।

इन्द्रिनकी संगति कियेरे, जीव परै जग माहिं ॥
जन्म मरन वहु दुख सहैरे, कबहू छूटै नाहिं, प्राणी० ॥१२५॥
भौंरो पर्‍यो रस नाकके रे, कमलमुदित भये रैन ॥
केतकी कांटन वाँधियोरे, कहूं न पायो चैन, प्राणी० ॥१२६॥
काननकी संगत कियेरे, मृग मार्‍यो वन माहिं ॥
अहि पकर्‍यो रस कानकेरे, कितहू छूट्यो नाहिं, प्राणी० ॥१२७॥
आँखनिरूप निहारकैरे, दीप परत है धाय ॥
देखहु प्रगट पतंगकोरे, खोवत अपनो काय, प्राणी० ॥१२८॥
रसनारस मच्छ मारियोरे, दुर्जन कर विसवास ॥
यातैं जगत विगूचियोरे, सहै नरकदुख वास, प्राणी० ॥१२९॥
फरसहितैं गज वसपर्‍योरे वंध्यो सांकल तान ॥
भूख प्यास सब दुखसहैरे, किहँविधिकहहिं बखान प्राणी० १३०॥
पंचेन्द्रियकी प्रीतिसोंरे, जीव सहै दुख घोर ॥
काल अनंतहिं जग फिरैरे, कहूँ न पावे ठोर, प्राणी ॥१३१॥
मन राजा कहिये वडोरे, इंद्रिनको सिरदार ॥
आठ पहर प्रेरत रहैरे, उपजै कई विकार, प्राणी० ॥१३२॥
मन इंद्री संगति कियेरे, जीव परै जग जोय ॥
विषयनकी इच्छा बढैरे, कैसें शिवपुर होय, प्राणी० ॥१३३॥

इन्द्रिनतें मन मारियेरे, जोरिये आतम माहिं ॥
तोरिये नातो रागसोंरे, फोरिये वल श्यौं थाहि, प्राणी०॥१३४॥
इन्द्रिन नहे निवारियेरे, टारिये क्रोध कपाय ॥
धारिये संपति शास्वतीरे, तारिये त्रिभुवन राय प्राणी० ॥१३५॥
गुण अनंत जामें लसैरे, केवल दर्शन आदि ॥
केवल ज्ञान विराजतोरे, चेतन चिह्न अनादि, प्राणी०॥१३६॥
थिरता काल अनादिलोंरे, राजै जिहँ पद माहि ॥
सुख अनंत स्वामी वहैरे, दूजो कोऊ नाहि, प्राणी० ॥१३७॥
शक्ति अनंत विराजतीरे, दोप न जामहि कोय ॥
समकित गुणकर सोभितोरे, चेतन लखिये सोय, प्राणी० १३८॥
वढै घटै कबहू नहीरे, अविनाशी अविकार ॥
भिन्न रहै परद्रव्यसोंरे, सो चेतन निरधार, प्राणी० ॥१३९॥
पंच वर्णमें जो नहींरे, नही पंच रस माहि ॥
आठ फरसतैं भिन्नहैरे, गंध दोऊ कोउ नाहिं, प्राणी० ॥१४०॥
जानत जो गुण द्रव्यकेरे, उपजन विनसन काल ॥
सो अविनाशी आतमारे, चिह्नहु चिह्न दयाल, प्राणी०॥१४१॥
गुण अनंत या ब्रह्मकेरे, कहिये किहँविधि नाम ॥
'भैया' मनवचकायसोंरे, कीजे तिहंपरिणाम, प्राणी० ॥१४२॥

दोहा

परद्रव्यनसों भिन्न जो, स्वकिय भाव रसलीन ॥
सो चेतन परमातमा, देख्यो ज्ञान प्रवीन ॥१४३॥
जो देखै गुण द्रव्यके, जानै सबको भेद ॥
सो या घटमें प्रगट है, कहा करत है खेद ॥१४४॥
सुख अनंतको नाथ वह, चिदानंद भगवान ॥

दर्शन ज्ञान विराजतो, देखो घर निज ध्यान ॥ १४५॥
देखनहारो ब्रह्म वह, घट घटमें परतच्छ ॥
मिथ्यातमके नाशतैं, सूझै सबको स्वच्छ ॥१४६॥
जैसो शिव तैसो इहाँ, भैया फेर न कोय ॥
देखो सम्यक नयनसों, प्रगट विराजै सोय ॥१४७॥
निकट ज्ञानदृग देखतैं, विकट चर्मदृग होय ॥
चिकट कटै जब रागकी, प्रगट चिदानंद जोय ॥ १४८॥
जिनवानी जो भगवती, दास तास जो कोय ॥
सो पावहि सुखसास्वते, परम धर्म पद होय ॥१४९॥
संवत सत्र इक्यावने, नगर आगरे माहिं ॥
भादों सुदि सुभ दोजको, बालख्याल प्रगटाहिं ॥१५०॥
सुरसमाहिं सब सुख बसै, कुरससाहिं कछु नाहिं ॥
दुरस बात इतनी यहै, पुरुष प्रगट समझांहिं ॥१५१॥
गुण लीजे गुणवंत नर, दोष न लीज्यो कोय ॥
जिनवानी हिरदै बसे, सबको मंगल होय ॥१५२॥

इति पचेन्द्रियसंवाद ।

अथ ईश्वरनिर्णयपचीसी लिख्यते ।

दोहा.

परमेश्वर जो परमगुरु, परमज्योति जगदीस ॥
परमभाव उर आनकें, वंदत हों नमि सीस ॥ १ ॥
ईश्वर ईश्वर सब कहै, ईश्वर लखै न कोय ॥
ईश्वर तो सो ही लखै, जो समदृष्टी होय ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश जे, ते पाये नहिं पार ॥
ता ईश्वरको और जन, क्यों पावै निरधार ॥ ३ ॥

ईश्वरकी गति अगम है, पार न पायी जाय ॥
वेदस्मृति सब कहत है, नाम भजोरे भाय ॥ ४ ॥

कवित्त

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों पच हारे, काहु न निहारे प्रभु कैसे जगदीस है। दशों अवतार माहि कौनैंधौं जनम लीन्हों, तिन हू न पाये परब्रह्म ऐसे ईस है। ध्रुव प्रहलाद दुरवासा लोम ऋषि भये, किन हू न कहे ऐसे आप बिस्वाबीस है। आवत अचभो इह धावत सकल जग, पावत न कोऊ ताहि नांव काहि सीस है ॥ ५ ॥

एक मतवारे कहैं अन्य मतवारे सब, मेरे मतवारे परवारे मत सारे है। एक पचतत्त्ववारे एक एकतत्त्व वारे, एक भ्रममतवारे एक एक न्यारे है ॥ जैसैं मतवारे बकैं तैसैं मतवारे बकैं, तासों मतवारे तकैं विना मतवारे हैं ॥ शातिरसवारे कहैं मतको निवारे रहैं, तेई प्रानप्यारे लहैं और सब वारे है ॥ ६ ॥

अनङ्गशेखर

अरे अज्ञान आतमा लखै न तू महातमा, लग्यो है तो महातमा निजातमा न सूझई। प्रसिद्ध जो विख्यातमा विराजै गात गातमा, कहावै पात पातमा चिदातमा न बूझई ॥ मिथ्यात्व मोह मातमा लग्यो तु जीव घातमा, क्रोधादि वातवातमा अज्ञातमा है झूझई। अनत शक्ति जातमा उद्योत ज्यों प्रभातमा, सु सूझै साध आतमा तू बंधमें अरूझई ॥ ७ ॥

कवित्त

हिंसाके करैया जोपै जैंहै सुरलोक मध्य, नर्कमाहि कहो बुध

(१) विसन २ भाते

कौन जीव जावेंगे ? । लेकैं हाथ शस्त्र जेई छेदत पराये प्रान, ते नहीं पिशाच कहो और को कहावेंगे ? ॥ ऐसे दुष्ट पापी जे संतापी पर जीवनके, ते तो सुख संपतिसों कैसें के अघावेंगे ॥ अहो ज्ञानवंत संत तंतकै विचार देखो, बोवें जे वंबूर ते तौ आम कैसें खांवेंगे ? ॥ ८ ॥

कुंडलिया ।

सुख जो तुमको चाहिये, सो सुख सबको चाह ।
खान पान जीवत रहै, धन सनेह निरवाह ॥
धन सनेह निरवाह, दाह दुख काहि न व्यापै ।
थावर जंगम जीव, मरन भय धार जु कांपै ॥
आपै देह विचार, होयकैं आपहि सनमुख ।
'भैया' घटपट खोल, वोल कहि कौन चहै सुख ॥ ९ ॥

कवित्त.

वीतराग वानीकी न जानी वात प्रानी मूढ, ठानी तैं क्रिया अनेक आपनी हठाहठी । कर्मनके वंध कौन अन्ध कछू सूझै तोहि, रागदोष पर्णितसों होत जो गठागठी ॥ आतमाके जीतकी न रीत कहू जानै रंच, ग्रन्थनके पाठ तू करै कहा पठापठी । मोहको न कियो नाश सम्यक न लियो भास, सूत न कपास करै कोरीसों[1] लठालठी ॥ १० ॥

हाथी घोरे पालकी नगारे रथ नालकी न, चकचोल चालकी न चढि रीझियतु है । स्वेतपट चालकी न मोती मन मालकी न, देख द्युति भाल की न मान कीजियतु है ॥ शैल बाग ताल कीन जल जंतु जालकी न, दया वृद्ध वालकी न दंड दीजियतु है ।

(१) कपड़ा बुननेवालेसों

देख गति कालकी न ताह कौन हालकी न, चाबिचूर गालकी न वीन लीजियतु है ॥ ११ ॥

जैसें कौउ स्वान परयो काचके महलवीच, ठौर ठौर स्वान देख भूँस भूँस मर्यो है । वानर ज्यों मूठी बाध परयो है पराये वश, कूयेमें निहार सिंह आप कूद पर्यो है ॥ फटिककी शिलामें विलोक गज जाय अर्‍यो, नलिनीके सुवटाको कौनैधों पकर्‍यो है । तैसें ही अनादिको अज्ञानभाव मान हस, आपनो स्वभाव भूलि जगतमें फिर्‍यो है ॥ १२ ॥

दोहा

ईश्वरके तो देह नहि, अविनाशी अविकार ॥
ताहि कहै शठ देह धर, लीन्हों जग अवतार ॥ १३ ॥
जो ईश्वर अवतार ले, मरै बहुर पुन सोय ॥
जन्म मरन जो धरतु है, सो ईश्वर किम होय ॥ १४ ॥
एकनकी घा होय कै, मरै एकही आन ॥
ताको जे ईश्वर कहे, ते मूरख पहचान ॥ १५ ॥
ईश्वरके सव एकसे, जगतमाहि जे जीव ॥
काहूपै नहिं द्वेष है, सवपै शांति सदीव ॥ १६ ॥
ईश्वरसों ईश्वर लरै, ईश्वर एक कि दोय ॥
परशुराम अर रामको, देखहु किन जगलोय ॥ १७ ॥
रौद्र ध्यान वत जहा, तहा धर्म किम होय ॥
परम वध निर्दय दशा, ईश्वर कहियेसोय ॥ १८ ॥
ब्रह्माके खरशीस हो, ता छेदन कियो ईस ॥
ताहि सृष्टिकर्त्ता कहै, रख्यो न अपनो सीस ॥ १९ ॥

जो पालक सब सृष्टिको, विष्णु नाम भूपाल ॥
सो मारयो इक वानतैं, प्रान तजे ततकाल ॥ २० ॥
महादेव वर दैत्यको, दीनों होय दयाल ॥
आपन पुन भाजत फिरयो, राख लेहु गोपाल ॥ २१ ॥
जिनको जग ईश्वर कहै, ते तो ईश्वर नाहिं ॥
ये हू ईश्वर ध्यावते, सो ईश्वर घट माहिं ॥ २२ ॥
ईश्वर सो ही आतमा, जाति एक है तंत ॥
कर्म रहित ईश्वर भये, कर्म सहित जगजंत ॥ २३ ॥
जो गुण आतम द्रव्यके, सो गुण आतम माहिं ॥
जड़के जड़में जानिये, यामै तो भ्रम नाहिं ॥ २४ ॥
दर्शन आदि अनंत गुण, जीव धरै तिहुं काल ॥
वर्णादिक पुद्गल धरै, प्रगट दुहूंकी चाल ॥ २५ ॥
सत्यारथ पथ छोड़के, लगै मृषाकी ओर ॥
ते मूरख संसारमें, लहै न भवको छोर ॥ २६ ॥
'भैया' ईश्वर जो लखै, सो जिय ईश्वर होय ॥
यों देख्यो सर्वज्ञने, यामें फेर न कोय ॥ २७ ॥

इति ईश्वरनिर्णयपचीसी ।

अथ कर्त्ताअकर्त्तापचीसी लिख्यते ।

दोहा.

कर्मनको कर्त्ता नहीं, धरता सुद्ध सुभाय ॥
ता ईश्वरके चरन को, बंदों सीस नवाय ॥ १ ॥
जो ईश्वर करता कहैं, भुक्ता कहिये कौन ॥
जो करता सो भोगता, यहै न्यायको भौन ॥ २ ॥

दुहू दोषतें रहित है, ईश्वर ताको नाम ॥
मनवचशीस नवाइकें, करू ताहि परणाम ॥ ३ ॥
कर्मनको करता वहै, जापै ज्ञान न होय ॥
ईश्वर ज्ञानसमूह है, किम कर्त्ता है सोय ॥ ४ ॥
ज्ञानवत ज्ञानहि करै, अज्ञानी अज्ञान ॥
जो ज्ञाता कर्त्ता कहै, लगै दोष असमान ॥ ५ ॥
ज्ञानीपै जडता कहा, कर्त्ता ताको होय ॥
पडित हिये विचारकैं, उत्तर दीजे सोय ॥ ६ ॥
अज्ञानी जडतामयी, करै अज्ञान निशक ॥
कर्त्ता भुगता जीव यह, यों भाखै भगवत ॥ ७ ॥
ईश्वरकी जिय जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान ॥
जो इह नै कर्त्ता कहो, तौ है वात प्रमान ॥ ८ ॥
अज्ञानी कर्त्ता कहैं, तौ सव वनै वनाव ॥
ज्ञानी है जडता करै, यह तौ वनै न न्याव ॥ ९ ॥
ज्ञानी करता ज्ञानको, करै न कछु अज्ञान ॥
अज्ञानी जडता करै, यह तो वात प्रमान ॥ १० ॥
जो कर्त्ता जगदीश है, पुण्य पाप किहँ होय ॥
सुख दुख काको दीजिये, न्याय करहु बुध लोय ॥ ११ ॥
नरकनमें जिय डारिये, पकर पकरकें वॉह ॥
जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह ॥ १२ ॥
ईश्वरकी आज्ञा विना, करत न कोऊ काम ॥
हिसादिक उपदेशको, कर्त्ता कहिये राम ॥ १३ ॥
कर्त्ता अपने कर्मको, अज्ञानी निर्धार ॥
दोष देत जगदीशको, यह मिथ्या आचार ॥ १४ ॥

ईश्वर तौ निर्दोष है, करता भुक्ता नाहिं ॥
ईश्वरको कर्त्ता कहै, ते मूरख जगमाहिं ॥ १५ ॥
ईश्वर निर्मल मुकुरवत, तीनलोक आभास ॥
सुख सत्ता चैतन्यमय, निश्चय ज्ञान विलास ॥ १६ ॥
जाके गुन तामें वसै, नहीं औरमें होय ॥
सूधी दृष्टि निहारतैं, दोष न लागै कोय ॥ १७ ॥
वीतरागवानी विमल, दोपरहित तिहुंकाल ॥
ताहि लखै नहिं मूढ जन, झूठे गुरुके वाल ॥ १८ ॥
गुरु अंधे शिष्य अंधकी, लखै न वाट कुवाट ॥
विना चक्षु भटकत फिरै, खुलै न हिये कपाट ॥ १९ ॥
जोलों मिथ्यादृष्टि है, तोलों कर्त्ता होय ॥
सो हू भावित कर्मको, दर्वित करै न कोय ॥ २० ॥
दर्व कर्म पुद्गल मयी, कर्त्ता पुद्गल तास ॥
ज्ञानदृष्टिके होत ही, सूझे सव परकाश ॥ २१ ॥
जोलों जीव न जान ही, छहों कायके वीर ॥
तौलों रक्षा कौनकी, कर है साहस धीर ॥ २२ ॥
जानत है सव जीवको, मानत आप समान ॥
रक्षा यातैं करत है, सवमें दरसन ज्ञान ॥ २३ ॥
अपने अपने सहजके, कर्त्ता हैं सव दर्व ॥
यहै धर्मको मूल है, समझ लेहु जिय सर्व ॥ २४ ॥
'भैया, वात अपार है, कहै कहांलों कोय ॥
थोरेहीमें समझियो, ज्ञानवंत जो होय ॥ २५ ॥

(१) स्वभावके

सत्रहसे इक्यावनै, पोष शुकल तिथि चार ॥
जो ईश्वरके गुण लखैं, सो पावे भवपार ॥ २६ ॥

इति कर्त्ताअकर्त्तापचीसी

अथ दृष्टातपचीसी लिख्यते ।

दोहा

केवल ज्ञान स्वरूपमें, वसै चिदातम देव ॥
मन वच शीस नवायकैं, कीजे तिनकी सेव ॥ १ ॥
एक शुद्ध परमातमा, दुविधि तास पद जान ॥
त्रिविधि नमत हो जोर कर, चहु निक्षेपन वान ॥ २ ॥
सुरसति वर्षति मेघ जिम, जिन मुख अम्रत धार ॥
पीवत है भवि जीव जे, ते सुख लहै अपार ॥ ३ ॥
जिय हिंसा जगमें बुरी, हिंसा फल दुख देत ॥
मकरी माखी भक्ष्यती, ताहि चिरी भख लेत ॥ ४ ॥
जिय हिंसा करते नहीं, धरते शुद्ध स्वभाय ॥
तौ देखो मुनिराजके, सेवत सुरनर पाय ॥ ५ ॥
झूठ भलो नहि जगतमें, देखहु किन दृग जोय ॥
झूठी तूती बोलती, ता ढिग रहै न कोय ॥ ६ ॥
साच वडो ससारमें, मानत सव परमान ॥
साच सूआ कहै रामको, सुनत सवै धर कान ॥ ७ ॥
विन दीनों जे लेत है, ताहि लगै वहु पाप ॥
चौरहि सूरी दीजिये, देखहु जग सताप ॥ ८ ॥

---

(१) सप्तमी

लेत नहीं परद्रव्यको, देत सकल परत्याग ॥
तौ लच्छी भगवानके, रहत चरन ढिग लाग ॥ ९ ॥
शीलव्रत पालै नहीं, भालै परतिय रूप ॥
पेख हु रावन आदि वहु, परत नर्कके कूप ॥ १० ॥
मन वच काया योगसों, शीलव्रतहिं ठहराय ॥
सेठ सुदर्शन देखिये, सुरगण भये सहाय ॥ ११ ॥
परिग्रह संग्रह ना भलो, परिग्रह दुखको मूल ॥
माखी मधुको जोरती, देखहु दुखको शूल ॥ १२ ॥
जिनके परिग्रह रंच नहिं, मातजात जिम वाल ॥
तिह मुनिवरके इंद्र हू, सेवत चरन त्रिकाल ॥ १३ ॥
मन वच काया योगसों, सव त्यागी मुनिराज ॥
कछु त्यागी जिय अणुव्रती, तेहू हैं सिरताज ॥ १४ ॥
राग न कीजे जगतमें, राग किये दुख होय ॥
देखहु कोकिल पींजरै, गहि डारत हैं लोय ॥ १५ ॥
देख संडासी पकरिये, अहिरण ऊपर डार ॥
आगहि घनसों पीटिये, लोहैं संग निवार ॥ १६ ॥
नेहन कीजै आनसों, नेह किये दुख होय ॥
नेह सहित तिल पेलिये, डार जंत्रमें जोय ॥ १७ ॥
परसंगति कीजे नहीं, परहि मिले दुख पेख ॥
पानी जैसें पीटिये, वस्त्र मिले दुख देख ॥ १८ ॥
पवन जु पोषै मसकको, मसक थूल ह्वै जाय ॥
देखहु संगति दुष्टकी, पौनहि देह जराय ॥ १९ ॥
चेतन चंदन वृक्षसों, कर्म साँप लपटाहिं ॥
वोलत गुरुवच मोरके, सिथल होय दुर जाहिं ॥२०॥

(१) लुहारकी धोकनी.

कुगुरु कुगतिके सारथी, मूढनको ले जाहि ॥
हिसाके उपदेश दे, धर्म कहे तिहमाहि ॥ २१ ॥
दक्षनके हित दक्षसो, गठकै शठसो प्रीत ॥
अलि अम्बुजपे देखिये, दर्दुर कर्दम मीत ॥ २२ ॥
परभावनसो विरचकें, निज भावनको ध्यान ॥
जो इह मारग अनुसरे, सो पावे निर्वान ॥ २३ ॥
बहुत बात कहिये कहा, थोरे ही दृष्टन्त ॥
जो पावे निज आतमा, सो पावे भव अन्त ॥ २४ ॥
'भैया' निज पाये विना, भ्रमन अनते कीन ॥
तेई तरे ससारमें, जिहँ आपो लखि लीन ॥ २५ ॥
एक सात पण दोय हे, अश्विन दिशां प्रकास ॥
यह दृष्टात पचीसिका, कही भगोतीदास ॥ २६ ॥

इति दृष्टान्तपचीसी

अथ मनवत्तीसी लिख्यते ।

दोहा

दर्शन ज्ञान चरित्र जिहँ, सुख अनत प्रतिभास ॥
वदत हो तिहँ देवको, मन धर परम हुलास ॥ १ ॥
मनसों वदन कीजिये, मनसो धरिये ध्यान ॥
मनसों आतम तत्त्वको, लखिये सिद्ध समान ॥ २ ॥
मन खोजत हे ब्रह्मको, मन सब करे विचार ॥
मनविन आतम तत्त्वको, करे कौन निरधार ॥ ३ ॥
मनसम खोजी जगतमें, और दूसरो कौन ॥
खोज गहे शिवनाथको, लहे सुखनको भौन ॥ ४ ॥

(१) दगमी

जो मन सुलटै आपको, तौ सूझै सब सांच ॥
जो उलटै संसारको, तौ मन सूझै कांच ॥ ५ ॥
सत असत्य अनुभय उभय, मनके चार प्रकार ॥
दोय झुकै संसारको, द्वै पहुंचावै पार ॥ ६ ॥
जो मन लागै ब्रह्मको, तो सुख होय अपार ॥
जो भटकै भ्रम भावमें, तौ दुख पार न वार ॥ ७ ॥
मनसो बली न दूसरो, देख्यो इहि संसार ॥
तीन लोकमें फिरत ही, जातन लागै वार ॥ ८ ॥
मन दासनको दास है, मन भूपनको भूप ॥
मन सब बातनि योग्य है, मनकी कथा अनूप ॥ ९ ॥
मन राजाकी सैन सब, इन्द्रिनसे उमराव ॥
रात दिना दौरत फिरै, करै अनेक अन्याव ॥ १० ॥
इन्द्रियसे उमराव जिहँ, विषय देश विचरंत ॥
भैया तिह मन भूपको, को जीतै विन संत ॥ ११ ॥
मन चंचल मन चपल अति, मन बहु कर्म कमाय ॥
मन जीते विन आतमा, मुक्ति कहो किम थाय ॥ १२ ॥
मनसो जोधा जगतमें, और दूसरो नाहिं ॥
ताहि पछारै सो सुभट, जीत लहै जग माहिं ॥ १३ ॥
मन इन्द्रिनको भूप है, ताहि करै जो जेर ॥
सो सुख पावे मुक्तिके, यामें कछू न फेर ॥ १४ ॥
जब मन मूंद्यो ध्यानमें, इंद्रिय भई निराश ॥
तब इह आतम ब्रह्मने, कीने निज परकाश ॥ १५ ॥
मनसो मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय ॥
सुख समुद्रको छाडकें, विषके वनमें जाय ॥ १६ ॥

विप भक्षनतै दुख बढै, जानै सब ससार ॥
तबहू मन समझै नही, विपयन सेती प्यार ॥ १७ ॥
छहों खडके भूप सब, जीत किये निजदास ॥
जो मन एक न जीतियो, सहै नर्क दुख वास ॥ १८ ॥
छॉड तनकसी झूपरी, और लगोटी साज ॥
सुख अनत विलसत है, मन जीतै मुनिराज ॥ १९ ॥
कोटि सताइस अपछरा, बत्तिस लक्ष विमान ॥
मन जीते विन इन्द्र हू, सहै गर्भ दुख आन ॥ २० ॥
छॉड घरहि बनमें बसै, मन जीतनके काज ॥
तौ देखो मुनिराजजू , विलसत शिवपुर राज ॥ २१ ॥
अरि जीतनको जोर है, मन जीतनको खाम ॥
देख त्रिखडी भूपको, परत नर्कके धाम ॥ २२ ॥
मन जीतै जे जगतमें, ते सुख लहे अनत ॥
यह तौ बात प्रसिद्ध है, देख्यो श्रीभगवत ॥ २३ ॥
देख वडे आरभसो, चक्रवर्ति जग माहि ॥
फेरत ही मन एकको, चले मुक्तिमें जाहि ॥ २४ ॥
बाहिज परिगह रच नांहि, मनमें धरै विकार ॥
तदुल मच्छ निहारिये, पडै नरक निरधार ॥ २५ ॥
भावनहीतै बध है, भावनहीतैं मुक्ति ॥
जो जानै गति भावकी, सो जानै यह युक्ति ॥ २६ ॥
परिग्रह कारन मोहको, इम भाख्यो भगवान ॥
जिहॅ जिय मोह निवारियो, तिहि पायो कल्यान ॥ २७ ॥

अरिल्ल

कहा भयो बहु फिरे तीर्थ अडसट्ठका ॥
कहा होय तन दहे, रैन दिन कट्ठका ॥

कहा होय नित रटै राम मुख पठ्ठका ।
जो वस नाही तोहि पंसेरी अठ्ठका ॥ २८ ॥
कहा मुंडाये मूंड वसे कहा मठ्ठका ।
कहा नहाये गंग नदीके तट्टका ॥
कहा कथाके सुने वचनके पठ्ठका ।
जो वस नाही तोहि पसेरी अठ्ठका ॥ २९ ॥

चौपाई १६ मात्रा.

कहा कहों जियकी जड़ताई । मोपैं कछु वरनी नहिं जाई ॥
आरज खंड मनुष्यभव पायो । सो विपयनसँग खेल गमायो ॥३०॥
आगें कहो कौन गति जैहो । ऐसे जनम वहुर कहाँ पैहो ॥
अरे तू मूरख चेत सवेरे । आवत काल छिनहि छिन नेरे ॥३१॥
जवलों जमकी फौज न आवै । तवलों जो मनको समुझावै ॥
आतम तत्त्व सिद्धसम राजै । ताहि विलोक मर्नभय भाजै ॥३२
वहुत वात कहिये कहु केती । कारज एक ब्रह्म ही सेती ॥
ब्रह्म लखै सो ही सुख पावै । भैया सो परब्रह्म कहावै ॥ ३३ ॥

चौपाई १५ मात्रा.

नगर आगरे जैनी वसै । गुण मणिरिद्ध वृद्धि कर लसै ॥
तिहँ थानक मन ब्रह्म प्रकाश। रचना कही 'भगोतीदास' ३४

इति मनवत्तीसी ।

अथ स्वप्नवत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

स्वपनेवत संसारमें जागे श्रीजिनराय ॥
तिनके चरन चितारकें, वंदत हों मन लाय ॥ १ ॥

---

(१) आठ पसेरीका मन ।

मोह नींदमें जीवको, वीत गयो चिरकाल ॥
जाग न कवहू आपकी, कीन्ही सुध सभाल ॥ २ ॥
जानत है सब जगतमें, यह तन रहवो नाहिं ॥
पोपत है किहँ भावसों, मोह गहलता माहिं ॥ ३ ॥
मेरे मीत नचीत तू, है वैठ्यो किहँ ठोर ॥
आज काल जम लेत है, तोहि सुपन भ्रम ओर ॥ ४ ॥
देखत देखत आखसों, यह तन विनस्यो जाय ॥
एतेपर थिर मानिये, यही मूढ शिरराय ॥ ५ ॥
जो प्रभातको देखिये, सो सध्याको नाहिं ॥
ताहि साच कर मानिये, भ्रम अरु कहा कहाहिं ॥ ६ ॥
ज्यों सुपनेमें देखिये, त्यों देखत परतच्छ ॥
सर्व विनाशी वस्तु है, जात छिनकमें गच्छ ॥ ७ ॥
सुपनेमें भ्रम देखिये, जागत ह भ्रम मूल ॥
ताहि साच शठ मानके, रह्यो जगतमें फूल ॥ ८ ॥
सुपनेमें अरु जागतें, फेर कहा है वीर ॥
वाहूमें भ्रम भूल है, वाहूमें भ्रम भीर ॥ ९ ॥
सुपनेवत ससार है, मूढ न जाने भेव ॥
आठ पहर अज्ञानमें, मग्न रहै अहमेव ॥ १० ॥
सुपनेको कहै झूठ है, जाग कहै निजगेह ॥
ते मूरख ससारमें, लहै न भवको छेह ॥ ११ ॥
कहा सुपनमें साच है? कहा जगतमें साच[१] ॥
भूल मूढ थिरमानकें, नाचत डोलै नाच ॥ १२ ॥
ऑख मूद खोलै कहा, जागत कोउ नाहि ॥
सोवत सव ससार है, मोह गहलता माहिं ॥ १३ ॥

(१) बर्ष

मोह नींदको त्यागकें, जे जिय भये सचेत ॥
ते जागे संसारमें, अविनाशी सुख लेत ॥ १४ ॥
अविनाशी पद ब्रह्मको, सुख अनंतको मूल ॥
जाग लह्यो जिहँ जगतमें, तिहँ पायो भवकूल॥ १५ ॥
अविनाशी घट घट प्रगट, लखत न कोऊ ताहि ॥
सोय रहे भ्रम नींदमें, कहि समुझावैं काहि ॥ १६ ॥
आप कहै हम दक्ष हैं, और न कहै अज्ञान ॥
अहो सुपनकी भूलमें, कहा गहै अभिमान ॥ १७ ॥
मान आपको भूपती, औरनसों कहै रंक ॥
देख सुपनकी संपदा, मोहित मूढ निशंक ॥ १८ ॥
देख सुपनकी साहिवी, मूरख रह्यो लुभाय ॥
छिन इकमें छय जायगी, धूम महलके न्याय ॥ १९ ॥
कहा सुपनकी साहिबी, मूरख हिये विचार ॥
जम जोधा छिन एकमें, लेहैं तोहि पछार ॥ २० ॥
सोवतमें इह जीवको, सुरति रहै नहिं रंच ॥
आप कछू मानै कछू, सबहि भरम परपंच ॥ २१ ॥
मूरख है यह आतमा, क्यों ही समझत नाहिं ॥
देख सुपनवत आंखसों, बहुर मगन तिह माहिं ॥ २२ ॥
जानत है जमराजकी, आवत फौज प्रचंड ॥
मार करै इह देहको, छिनक माहिं शत खंड ॥ २३ ॥
ऐसे जमको भय नहीं, पोषत तन मन लाय ॥
तिनसम मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय ॥ २४ ॥
मूरख सोवत जगतमें, मोह गहलतामाहिं ॥
जन्म मरन बहु दुख सहै, तो हू जागत नाहिं ॥ २५ ॥

जन ऊपर जम जोर है, जिनसों जम हु डराय ॥
तिनके पद जो सेइये, जमकी कहा वसाय ॥ २६ ॥
जिनके पदको सेवते, निजपद परगट होय ॥
तिनतें वडो न दूसरो, और जगतमें कोय ॥ २७ ॥
निजपद परगट होत ही, शिवपद मिलै सुभाय ॥
जनम मरन बहु दुख मिटै, जम विलख्यो ह्वै जाय ॥ २८ ॥
जम जीतेतै जीवको, सुख अनत ध्रुव होय ॥
वहुर न कबहू, सोयबो, जगे कहावें सोय ॥ २९ ॥
जम जीते जीते नेह, जागे वहै प्रमान ॥
वहै सबन शिरमुकट है, चेतन धर तिहँ ध्यान ॥ ३० ॥
ध्यान धरत परब्रह्मको, तोहि परमपद होय ॥
तुहू कहावै सिद्धमय, और कहै कहा कोय ॥ ३१ ॥
चेतन ढील न कीजिये, धरहु ब्रह्मको ध्यान ॥
सुख अनत शिवलोकमें, प्रगटै महा कल्यान ॥ ३२ ॥
इह विधि जो जागे पुरुष, निज दृग कर परकास ॥
तिहँ पायो सुखशास्वतो, कहै 'भगोतीदास ॥ ३३ ॥
उग्रसेनपुर अवनिप, शोभत मुकट समान ॥
तिह थानक रचना कही, समुझ लेहु गुणवान ॥ ३४ ॥

इति सुपनबत्तीसी ।

अथ सूवाबत्तीसी लिख्यते ।

दोहा

नमस्कार जिन देवको, करों दुहू करजोर ॥
सुवा बतीसी सुरस मैं, कहूं अरिनिदलमोर ॥ १ ॥

आतम सुआ सुगुरु वचन, पढत रहै दिन रैन ॥
करत काज अघरीतिके, यह अचरज लखि नैन ॥ २ ॥
सुगुरु पढावे प्रेमसों, यहू पढत मनलाय ॥
घटके पट जो ना खुलै, सवहि अकारथ जाय ॥ ३ ॥

चौपाई.

सुवा पढायो सुगुरु वनाय । करम वनहि जिन जइयो भाय ॥ भूले चूके कवहु न जाहु । लोभनलिनिपैं दगा न खाहु ॥ ४ ॥ दुर्जन मोह दगाके काज । वांधी नलनी तर धर नाज ॥ तुम जिन वैठ हु सुवा सुजान । नाज विषयसुख लहि तिहँ थान ॥ ५ ॥ जो वैठहु तो पकरि न रहियो । जो पकरो तो दृढ जिन गहियो ॥ जो दृढ गहो तो उलटि न जइयो । जो उलटो तौ तजि भजि धइयो ॥ ६ ॥ इह विधि सूआ पढायो नित्त । सुवटा पढिकें भयो विचित्त ॥ पढत रहै निशदिन ये वैन । सुनत लहै सव प्रानी चैन ॥ ७ ॥ इक दिन सुवटै आई मनै । गुरु संगत तज भज गये वनै ॥ वनमें लोभ नलिन अति वनी । दुर्जन मोह दगाको तनी ॥ ८ ॥ ता तरु विषयभोग अन धरे । सुवटै जान्यो ये सुख खरे ॥ उतरे विषयसुखनके काज । वैठ नलिनपैं विलसै राज ॥ ९ ॥ वैठो लोभ नलिनपैं जवै । विषय स्वाद रस लटके तवै ॥ लटकत तैं उलटि गये भाव । तर मूंडी ऊपर भये पांव ॥ १० ॥ नलिनी दृढ पकरै पुनि रहै । मुखतैं वचन दीनता कहै कोउ न वनमें छुडावनहार । नलनी पकरहि करहि पुकार ॥११॥ पढत रहै गुरुके सब वैन । जे जे हितकर सिखये ऐन ॥ "सुवटा वनमें उड जिन जाहु । जाहु तो भूल खता जिन खाहु ॥ १२ ॥

नलनीके जिन जइयो तीर । जाहु तो तहा न वेठहु नीर ॥ जो वैठो तो दृढ जिन गहो । जो दृढ गहो तो पकरि न रहो॥१३॥ जो पकरो तो चुगा न खइयो । जो तुम खावो तो उलटन जइयो ॥ जो उलटो तो तज भज धइयो । इतनी सीख हृदय मैं लहियो" ॥ १४ ॥ ऐसे वचन पढत पुन रहैं । लोभ नलनि तज भज्यो न चहै ॥ आयो दुर्जन दुर्गति रूप । पकडे सुवटा सुदर भूप ॥ १५ ॥ डारे दुखके जाल मझार । सो दुख कहत न आवे पार ॥ भूख प्यास वहु सकट सहै । परवस परे महा दुख लहै ॥ १६ ॥ सुवटाकी सुधि बुधि सब गई । यह तो बात आर कछु भई ॥ आय परे दुख सागर माहिं । अब इततैं कितको भज जाहिं ॥ १७ ॥ केतो काल गयो इह ठौर । सुवटै जियमें ठानी औंर ॥ यह दुख जाल कटे किहँ भाँति । ऐसी मनमें उपजी खाँति ॥ १८ ॥ रात दिना प्रभु सुमरन करै । पाप जाल काटन चित धरे ॥ क्रम क्रम कर काट्यो अघजाल । सुमरन फल भयो दीनदयाल ॥ १९ ॥ अब इततैं जो भजकें जाउ । तौ नलनीपर वैठ न खाउ ॥ पायो दाव भज्यो ततकाल । तज दुर्जन दुर्गति जजाल ॥ २० ॥ आये उडत वहुर वनमाहि । वैठे नरभव द्रुमकी छाहि ॥ तित इक साधु महा मुनिराय । धर्म देशना देत सुभाय ॥ २१ ॥ यह ससार कर्मवनरूप । तामहि चेतन सुआ अनूप ॥ पढत रहै गुरु वचन विशाल । तौ हू न अपनी करे सभाल ॥ २२ ॥ लोभ नलिनपै वैठे जाय । विषय स्वाद रस लटके आय ॥ पकरहि दुर्जन दुर्गति परै । तामें दुख वहुत जिय भरै ॥ २३ ॥ सो दुख कहत न आवे पार । जानत

जिनवर ज्ञानमझार ॥ सुनतैं सुवटा चौंक्यो आप । यह तो मोहि पर्‌यो सब पाप ॥ २४ ॥ ये दुख तैं सब मैं ही सहे । जो मुनिवरने मुखतैं कहे ॥ सुवटा सोचै हिये मझार । ये गुरु सांचे तारनहार ॥ २५ ॥ मैं शठ फिर्‌यो करमवन माहिं । ऐसे गुरु कहुँ पाये नाहिं ॥ अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो । सांचे गुरुको दर्शन लयो ॥ २६ ॥ गुरुकी गुणस्तुति वारंवार । सुमिरै सुवटा हिये मझार ॥ सुमरत आप पाप भज गयो । घटके पट खुल सम्यक थयो ॥ २७ ॥ समकित होत लखी सब बात । यह मैं यह परद्रव्य विख्यात ॥ चेतनके गुण निजमहि धरे । पुद्गल रागादिक परिहरे ॥ २८ ॥ आप मगन अपने गुण माहिं । जन्म मरण भय जियको नाहिं ॥ सिद्ध समान निहारत हिये । कर्म कलंक सबहि तज दिये ॥ २९ ॥ ध्यावत आप माहिं जगदीश । दुहुंपद एक विराजत ईश ॥ इहविधि सुवटा ध्यावत ध्यान । दिनदिन प्रति प्रगटत कल्यान ॥ ३० ॥ अनुक्रम शिवपद जियको भया । सुख अनंत विलसत नित नया ॥ सतसंगति सबको सुख देय । जो कछु हियमें ज्ञान धरेय ॥ ३१ ॥ केवलिपद आतम अनुभूत । घट घट राजत ज्ञान संजूत ॥ सुख अनंत विलसै जिय सोय । जाके निजपद परंगट होय ॥ ३२ ॥ सुवा बतीसी सुनहु सुजान । निजपद प्रगटत परम निधान ॥ सुख अनंत विलसहु ध्रुव नित्त । 'भैयाकी' विनती धर चित्त ॥ ३३ ॥ संवत सत्रह त्रेपन माहिं । अश्विन पहिले पक्ष कहाहिं ॥ दशमी दशों दिशा परकास । गुरु संगति तैं शिव सुखभास ॥ ३४ ॥

इति सूवावत्तीसी ।

अथ ज्योतिषके छन्द लिख्यते।

छप्पय।

दिन करके दिन बीस, चद्र पचास प्रमानहु।
मगल विशति आठ, बुद्ध छप्पन शुभ ठानहु॥
शनिके गण छत्तीस, देव गुरु दिनहि अठावन।
राहु बियालिस लहिय, शुक्र सत्तर मन भावन॥
इम गनहु दशा निजराशिते, सूरज जित सक्रमहि तित।
शुभफलहि विचारहु भविक जन, परम धरम अवधार चित॥ १॥

मेष वृछिक पति भौम, वृषभ तुलनाथ शुक्र सुर।
मीनराशि धनराशि ईश, तस कहल देव गुरु॥
कन्या मिथुन बुधेश, कर्क स्वामी श्री चद गणि॥
मकर कुभ नृप शनी, सिह राशिहि प्रभु रवि भणि॥
ये राशी द्वादश जगतमें, ज्योतिष ग्रथ बखानिये।
तस नाथ सात लख भविकजन, परम तत्त्व उर आनिये॥ २॥

मेष सूर वृष चद्र, मकर मगल गण लिज्जै।
कन्या बुध अति शुद्ध, कर्क सुरगुरुहि भणिज्जै॥
मीन शुक्र सुख करन, तुलहि दुख हरन शनीश्वर॥
मिथुन राहु जय करय, भरय भडार धनीश्वर॥
इह विधि अनेक गुण उच्च महि, रिद्ध सिद्धि सपति भरय॥
तस नाथ सात लखि भविक जन, पर्म धर्म जिय जय करय॥ ३॥

दोहा

तुल सूरज वृश्चिक शशी, कर्क भौम बुध मीन॥
मकर बृहस्पति कन्य भृगु, मेष शनिश्चर दीन॥ ४॥

राहु होय धन राशि जो, ए सब कहिये नीच ॥
परमारथ इनमें इतो, रहिये निज सुख वीच ॥ ५ ॥

इति ज्योतिपछन्द ।

अथ पद राग प्रभाती ।

साहिब जाके अमर है सेवक सब ताके ॥
दीप और पर दीपमें भर रहे सदाके, साहिब० ॥ १ ॥
जामे तीर्थंकर भये चक्री बसु देवा ॥
काल अनन्तहु एकसे, घट वढ नहि टेवा, साहिब० ॥ २ ॥
जाकी उत्पति नित्य है नित होय विनाशा ॥
जीव विना पुद्गल विना सागर सम वासा, सहिब० ॥ ३ ॥
अर्थ कहो याको कहा विनती सौ वारा ॥
नाव कह्यो या पदविषै, तुम लेहु विचारा, साहिब० ॥ ४ ॥

पुनः

कहा तनकसी आयुपैं, मूरख तू नाचै ॥
सागरथितिधर खिर गये, तू कैसें वांचै, कहा० ॥ १ ॥
देख सुपनकी संपदा, तू मानत सांचै ॥
वे जु नर्ककी आपदा, जर है को आंचै, कहा० ॥ २ ॥
धर्मकर्ममें को भलो परखो मणि काचै ॥
भैया आप निहारिये परसों मति मांचै, कहा० ॥ ३ ॥

इति पद.

अथ फुटकर कविता लिख्यते ।

कवित्त.

तेरो ही स्वभाव चिनमूरति विराजत है, तेरो ही स्वभाव सुख सागरमें लहिये। तेरो ही स्वभाव ज्ञान दरसन राजत है, तेरो ही

स्वभाव ध्रुव चारितमें कहिये ॥ तेरो ही स्वभाव अविनाशी सदा दीसत है तेरो ही स्वभाव परभावमें न गहिये । तेरो ही स्वभाव सव आन लसै ब्रह्ममाहिं यातें तोहि जगतको ईश सरदहिये ॥१॥

मोह मेरे सारेले विगारे आन जीव सब, जगतके वासी तैसे वासी कर राखे हे ॥ कर्मगिरिकदरामें वसत छिपाये आप, करत अनेक पाप जात कैसे भाखे हैं ॥ विपैवन जोर तामे चोरको निवास सदा, परधन हरवेके भाव अभिलाखे हे । तापै जिनराज जूके वैन फौजदार चढे, आन आन मिले तिन्हें मोक्ष देश दाखे हे ॥ २ ॥

जोलों तेरे हिये भर्म तोलों तू न जानें मर्म, कौन आप कौन कर्म कोन धर्म साच है । देखत शरीर चर्म जो न सहे शीत घर्म, ताहि धोय माने धर्म ऐसे भ्रम माच है॥नेक हू न होय नर्म वात वातमाहि गर्म, रहो चाहे हेम हर्म वसनाहीं पाच हे।एते पे न गहै नर्म कैसें ह्वै प्रकाश पर्म, ऐसे मूढ भर्ममाहिं नाचै कर्म नाच है॥३

अमल सुपी रहैरी अमल सुपीरहैरी, अमल वही रहेरी अमल सु पीर है । वानी जो गहीरहैरी वानी जो वही रहैरी, वानी न कही लहैरी वानी न कही रहै ॥ परको शरीरहैरी परको नही रहैरी, परको नही रहैरी वहै दुख भीर है । भौदधि गहीरहैरी आयो तिह तीरहैरी, चेतै निज घा कहीरी पर ह्वै सही रहै ॥४॥

अरिनके ठट्ट दह वट्ट कर डारे जिन, करम सुभट्टनके पट्टन उजारे ह । नर्क तिरजच चट पट्ट देक वठ रहे, र्निप चौर झट झट्ट पकर पछारे हैं ॥ भौ वन कटाय डारे अठ मद दुठ मारे, मदनके देश जारे क्रोध ह सहारे ह । चढत सम्यक्त सूर नटत प्रताप पूर, सुखके समूह भूर सिद्धके निहारे हे ॥ ५ ॥

१ महल

वारवार फिर आई वारवार फिर आइ, वारवार फेर आई आतमसों हरी है। वारवार जुर आई वारवार जर आई, वारवार जार आई ऐसी नीच खरी है ॥ वारवार वार चाहै वारवार वार चाहै,वारवार चार चाहै मानो चार दरी है। वारवार धोखो खाहि वारवार कहै काहि, वारवार पोपै ताहि वारवुधि करी है ॥ ६ ॥

अपनी कमाई भैया पाई तुम यहां आय, अव कछु सोच किये हाथ कहा परि है । तव तो विचार कछु कीन्हों नाहिं वंधसमै, याके फल उदै आय हमै ऐसे करि है ॥ अव पछताये कहा होत है अज्ञानी जीव, भुगते ही वनै कृति कर्म कहूं हरि है । आगेको संभारिकें विचार काम वही करि, जातें चिदानंद फंद फेरकै न धरि है ॥ ७ ॥

नाम मात्र जैनी पै न सरधान शुद्ध कहूं, मूँड़के मुँड़ाये कहा सिद्धि भई वावरे । काय कृश किये कछू कर्म तौ न कृश होहिं, मोह कृश करिवेको भयो तो न चावरे ॥ छाँड्यो घरवार पै न छांड्यो घरवार कोऊ, वार वार ढूंढै धन वनै कहूं दावरे। कलि-युगके साधुकी वडाई कहो केती कीजे, रात दिना जाके भाव रहैं हाव हावरे ॥ ८ ॥

सवैया.

हे मन नीच निपात निरर्थक, काहेको सोच करै नित कूरो ।
तू कितहू कितहू पर द्रव्य है, ताहिकी चाह निशा दिन झूरो॥
आवत हाथ कछू शठ तेरे जु, वांधत पाप प्रणाम न पूरो ।
आगेको वेल वढै दुखकी कछु, सूझत नाहिं किधों भयो सूरो॥९॥

छप्पय छन्द

शीश गर्व नहि नम्यो, कान नहिं सुने वैन सत ॥
नैन न निरखे साधु, वैनत कहे न शिवपति ॥
करतें दान न दीन, हृदय कछु दया न कीनी ॥
पेट भर्यो कर पाप, पीठ परतिय नहिं दीनी ॥
चरन चले नहि तीर्थ कहँ, तिहि शरीर कहा कीजिये ॥
इमि कहेँ श्याल रे श्वान यह! निंद निकृष्ट न लीजिये ॥ १० ॥

सवैया (मात्रिक)

मनवचकाय योग तीनहुसो, सब जीवनको रक्षक होय ॥
झूठे वचन न बोलै कबहू, विना दिये कछु लेय न जोय ॥
शीलव्रतहि पाले निरदूपन, दुविधि परिग्रह रच न कोय ॥
पंच महाव्रत ये जिन भापित, इहि मगचलै साधु है सोय ॥११॥

कवित्त

पेटहीके काज महाराजजूको छाड देत, पेटहीके काज झूठ जपत वनायकें। पेटहीकि काज राव रकको वखान करें, पेटहीके काज तिन्हें मेर कहे जायकें॥ पेटहीके काज पाप करत डरात नाहिं, पेटहीके काज नीच नवें शिर नायकें। पेटहीके काजको खुशामदी अनेक करें, ऐसे मूढ पेट भरें पंडित कहायकें ॥ १२ ॥

छप्पय

वीतरागके नित्र सेव, समदृष्टी करई ॥
अष्टक द्रव्य चढाय, थाल भरि आगे धरई ॥
पूजा पाठ प्रमान, जाप जप ध्यानहिं ध्यावे ॥
अचल अग थिरभाव, शुद्ध आतम रॅग लावे ॥

(१) बड़ा

मंजार निरखि नैवेद्यको, मर्कट फल इच्छा धरहि ।
तंदुलहिं चिरा पुष्पहिं भँवर, एक थाल भुंजन करहि ॥१३॥

मात्रिक कवित्त.

जे जिहँ काल जीव मत ग्राही, किरिया भावहोहिं रस रत्त ।
कर करनी निज मन आनंदै, वांछा फल चिंतहिं दिन रत्त ॥
रहित विवेक सु ग्रंथ पाठ कर, झार धूर पद तीन धरत्त ।
तिनको कहिये औगुन थानक, चक्रीधरमें नृपति भरत्त ॥ १४ ॥

कवित्त.

केई केई वेर भये भूपर प्रचंड भूप, वड़े वड़े भूपनके देश छीनलीने हैं । केई केई वेर भये सुर भौनवासी देव, केई केई वेर तो निवास नर्क कीने हैं ॥ केई केई वेर भये कीट मलमूत माहिं, ऐसी गति नीचवीच सुख मान भीने हैं । कौड़ीके अनंत भाग आपन विकाय चुके, गर्व कहा करे मूढ़ ! देख ! दृग दीने हैं ॥ १५ ॥

जब जोग मिल्यो जिनदेवजीके दरसको, तव तो संभार कछु करी नाहिं छतियाँ । सुनि जिनवानीपै न आनी कहूं मन माहिं, ऐसो यह प्रानी यों अज्ञानी भयो मतियाँ ॥ स्वपर विचारको प्रकार कछु कीन्हों नाहिं, अब भयो बोध तब झूरे दिन रतियाँ । इहाँ तो उपाय कछु बनै नाहिं संजमको, बीत गयो औसर बनाय कहै बतियाँ ॥ १६ ॥

छप्पय.

जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ अघ कैसे आवें ।
जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ व्यंतर भज जावें ॥

जहॉ जपहि नवकार, तहॉ सुख सपति होई ।
जहॉ जपहि नवकार, तहॉ दुख रहै न कोई ॥
नवकार जपत नव निधि मिलै, सुख समूह आवै सरब ।
सो महा मत्र शुभ ध्यानसो,'भैया' नित जपनो करब ॥ १७ ॥

दोहा

सीमधर स्वामी प्रमुख, वर्त्तमान जिनदेव ॥
मन वच शीस नवायके, कीजे तिनकी सेव ॥ १८ ॥
महिमा केवल ज्ञानकी, जानत है श्रुतज्ञान ॥
तातें दुहू बरावरी, भाषे श्री भगवान ॥ १९ ॥
जितनो केवल ज्ञान है, तितनो है श्रुतज्ञान ॥
नाव भिन्न यातें कह्यो, कर्म पटल दरम्यान ॥ २० ॥
विन कषायके त्यागतें, सुख नहि पावै जीव ॥
ऐसे श्री जिनवर कही, वानी माहिं सदीव ॥ २१ ॥
जो कुदेवमें देव बुधि, देव निंपै बुधि आन ॥
जो इन भावन परिणवै, सो मिथ्या सरधान ॥ २२ ॥
जैसे पटंको पेखनो, तैसो यह ससार ॥
आय दिखाई देत है, जात न लागै वार ॥ २३ ॥
त्याग विना तिरवो नहीं, देखहु हिये विचार ॥
तूंबी लेपहिं त्यागती, तव तर पहुँचे पार ॥ २४ ॥
त्याग वडो ससारमें, पहुँचावै शिवलोक ॥
त्यागहितें सन पाइये, सुख अनतके थोक ॥ २५ ॥
सुगुरु कहत है शिष्यको, आपहि आप निहार ॥
भले रहे तुम भूलिकें, आपहि आप विसार ॥ २६ ॥

(१) बीचमें २ पटबाजना (खद्योत)

जो घर तज्यो तो कहा भयो, राग तज्यो नहिं वीर ! ॥
साँप तजै ज्यों कंचुकी, विष नहिं तजै शरीर ॥ २७ ॥
भरतक्षेत्र पंचम समय, साधु परिग्रहवंत ॥
कोटि सात अरु अर्ध सब, नरकहिं जाय परंत ॥ २८ ॥
देत मरन भव सांप इक, कुगुरु अनंती वार ॥
वरु सांपहिं गहपकरिये, कुगुरु न पकर गँवार ॥ २९ ॥
बाघ सिंघको भय कहा ? एकवार तन लेय ॥
भय आंवत है कुगुरुको, भवभव अति दुख देय॥ ३० ॥
दृगके दोष न छूटहीं, मृग जिमि फिरत अजान ॥
धृग जीवन या पुरुषको, भृगुकेदास[१] समान ॥ ३१ ॥
केवलज्ञान स्वरूप मय, राजत श्री जिनराय ॥
वंदत हों तिनके चरन, मनवच शीस नवाय ॥ ३२ ॥
कर्मनके वश जीव सब, बसत जगतके माहिं ॥
जे कर्मनको वस किये, ते सब शिवपुर जाहिं ॥ ३३ ॥

इति फुटकर कविता.

अथ परमात्मशतक लिख्यते ।

दोहा.

पंच परम पद प्रणमिके, परम पुरुष आराधि ॥
कहों कछू संक्षेपसों, केवल ब्रह्म समाधि ॥ १ ॥
सकल देवमें देव यह, सकल सिद्धमें सिद्ध ॥
सकल साधुमें साधु यह, पेख निजातमरिद्ध ॥ २ ॥

(२) यह निजातम की समृद्धि सम्पूर्ण देवोंमे देव, सम्पूर्ण सिद्ध पर-

१. एकाक्षी (काना).

सारे विभ्रम मोहके, सारे जगत मँझार ॥
सारे तिनके तुम परे, सारे गुणहि विसार ॥ ३ ॥

सोरठा

पीरे होहु सुजान, पीरे का रे है रहे ॥
पीरे तुम विन ज्ञान, पीरे सुधा सुबुद्धि कहँ ॥ ४ ॥
विमल रूप निजमान, विमल आन तू ज्ञान में ॥
विमल जगतमें जान, विमल समलतातें भयो ॥ ५ ॥
उजरे भाव अज्ञान, उजरे जिहँतैं वधथे ॥
उजरे निरखे भान, उजरे चारहु गतिनतें ॥ ६ ॥

मात्माओंमें सिद्ध और सम्पूर्ण साधुओंमें साधु है इससे हे भव्य उस निजातम रिद्धिको पेख अर्थात् देख ॥

(३) (सारे) सम्पूर्ण जगतमें जो मोहके (सारे) सब विभ्रम हैं, तुम (सारे) उत्तम २ गुणोंको विसारके उन्हींके (सारे) सहारे अर्थात् आश्रय पटे हो।

(४) हे सुजान! (पीरे) पियरे अर्थात् प्यारे होओ (पीरे) दुखित (का रे) क्यों हो रहे हो, और तुम विना ज्ञानके ही (पीरे) पीड़े अर्थात् दुखित हुए हो, इसलिये अब वुद्धि रूपी अमृत को (पीरे) पान करो।

(५) हे विमल आत्मन्! अपना (विमल) कर्मों से रहित स्वरूप मान करके (तू ज्ञानमें आन) ज्ञानको प्राप्त हो, (विमल) विशेष मलरहित सिद्ध ससारमेंसे ही जानों, क्योंकि विमल मलसहितसे होता हे, भावार्थ मोक्ष ससारपूर्वकही होताहै।

(६) हे आत्मन! वह अज्ञानभाव (उजरे) उजडे अर्थात् विनाश

सुमरहु आतम ध्यान, जिहि सुमरे सिधि होत है ॥
सुमरहिं भाव अज्ञान, सुमरन से तुम होतहो ॥ ७ ॥

दोहा.

मैनकाम जीत्यो वली, मैनकाम रस लीन ॥
मैनकाम अपनो कियो, मैनकाम आधीन ॥ ८ ॥
मैनासे तुम क्यों भये, मैनासे सिध होय ॥
मैनाहीं वा ज्ञानमें, मैनरूप निज जोय ॥ ९ ॥
जोगी सो ही जानिये, वसै संजोगीगेह ॥
सोई जोगी जोगहै, सव जोगी सिरतेह ॥ १० ॥

को प्राप्त हुए जिनसे आत्मा (उजरे) उजले अर्थात् प्रगटरूपसे वंद हो रहा था, और जव ज्ञान सूर्य (उजरे) उज्ज्वल देखे गये, तव चारों गतों से (उजरे) छूटे भावार्थ सिद्ध पदको प्राप्त हुए ।

(७) हे भाई! ध्यानमे आत्माका स्मरण करो जिसके स्मरणसे कार्य सिद्ध होता है, अथवा जिससे सिद्ध होते हो, अज्ञान भावों के (सुमरेहिं) बिलकुल नष्ट होजाने से तुम (सुमरनसे) स्मरण करनें योग्य (परमात्मा) हो सक्ते हो ।

(८) मै वलवान कामको न जीत सका और (मैंनकाम) मैं 'नकाम' व्यर्थ रसलीन अर्थात् विपयाशक्त हुआ. मैनकाम कहिये कामदेवके आधीन होकर मैंने अपना काम न किया अर्थात् आत्मकल्यान नहिं किया ।

(१०) (पी) हे प्रिय ! तुम (तारी) ध्यानको भूल करके अथवा तारी कहियें मोहरूपी नसा पी कहिये पिया और (तारीतन) संसार की अथवा मोहकी रीतियों में लवलीन हो रहेहो, इसलिये हे प्रवीण तुम ज्ञान की (तारी) ताली अर्थात् कुंजी (चावी) 'खोजो' तलाश करो, जो (तारी)

१ तेरहवें गुणस्थानमें २ योग्य है.

तारी पी तुम भूलके, तारीतन रसलीन ॥
तारी खोजहु ज्ञानकी, तारी पति परवीन ॥ ११ ॥
जिनें भूलहु तुम भर्ममें, जिन भूलहु जिनधर्म ॥
जिनें भूलहि तुम भूलहो, जिन शासनको मर्म ॥ १२ ॥
फिरें वहुत ससारमें, फिर २ थाके नाहि ॥
फिरे जवहि निर्जरूपको, फिरे न चहु गति माहि ॥१३॥
हरी खात हो वावरे, हरी तोरि मति कौन ॥
हरी भजो आपौ तजो, हरी रीति सुख हौन ॥ १४ ॥

द्वयक्षरी दोहा

जैनी जाने जैन नें, जिन जिन जानीं जैन ॥
जेजे जैनी जैन जन, जानें निज निज नैन ॥ १५ ॥

तुम्हारी (पत) लज्जा है अथवा तुम प्रवीन ओर तारीपति कहिये ज्ञान रूपी तारीके पतिहो

(१४) हे (वावरे) भोले जीव ! तेरी मति किसने हरली है, जो तू (हरी) (सचित्त वस्तुऐं) खाता है, अव आपौ (ममत्व) छोड़ करके (हरी) सिद्ध भगवान को भजो अर्थात् ध्यावो यही सुखहोनेंवाली (हरी) ताजी अथवा उत्तम रीति है

(१५) जैनी जैनशास्त्रोक्त नयोंको जानता है, और (जिन) जिन्हों ने उन नयोंको (जिन) नहीं जानीं, उनकी (जै न) जय नहीं होती है इसलिये (जेजे) जो जो (जैनजन) जिनधर्मके दास जैनी हैं वे अपनी २ (नैन) नयोंको अवश्य ही जानें अर्थात् समझें

---

(१) एक प्रकारका नशा (२) मत (निषेधार्थ) (३) जिनश्वर भगवानको (४) भ्रमण करै (५) पल्टै सन्मुख होवै (६) आत्मरूप

परमारथ परमें नहीं, परमारथ निज पास ॥
परमारथ परिचय विना, प्राणी रहै उदास ॥ १६ ॥
परमारथ जानें परम, पर नहिं जाने भेद ॥
परमारथ निज परखिवो, दर्शन ज्ञान अभेद ॥ १७ ॥
परमारथ निज जानिवो, यहै परमको राज ॥
परमारथ जाने नहीं, कहौ परम किहि काज ॥ १८ ॥
आप पराये वश परे, आपा डार्यो खोय ॥
आपै आप जाने नहीं, आप प्रगट क्यों होय ॥ १९ ॥
सव सुख सांचेमें वसै, सांचो है सव झूठ ॥
सांचो झूठ वहायके, चलो जगतसों रूठ ॥ २० ॥
जिनकी महिमा जे लखें, ते जिनें होहिं निदान ॥
जिनवानी यों कहत है, जिन जानहु कछु आन ॥ २१ ॥
ध्यान धरो निजरूपको, ज्ञान माहिं उर आन ॥
तुम तो राजा जगतके, चेतहु विनती मान ॥ २२ ॥
चेतन रूप अनूप है, जो पहिचानें कोय ॥
तीन लोकके नाथकी, महिमा पावे सोय ॥ २३ ॥
जिन पूजहिं जिनवर नमहिं, धरहिं सुथिरता ध्यान ॥
केवलपदमहिमा लखहिं, ते जिय सम्यकवान ॥२४॥

(२०) सम्पूर्ण सुख सांचेमें अर्थात् सच्चे स्वरूपमे है, और सांचा अर्थात् पौद्गलिकदेह रूपी सांचा विलकुल झूठा अर्थात् अस्थिर है इसलिये, (सांचो झूठ) इस देहरूपी झूठे, सांचेको त्याग करके, संसारसों (रूठ) रुष्ट होकर चल अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर.

१ दुखित. २ परन्तु. ३ आतमा. ४ आप अपनेंको नहीं जानता. ५ तीर्थंकर. ६ हृदयमें ज्ञान लाकरके.

मुद्दत लों परवश रहे, मुद्दत कर निज नैन ॥
मुद्दत आई ज्ञानकी, मुद्दतकी, गुरु वैन ॥ २५ ॥
ज्ञान दृष्टि धर देखिये, शिष्ट न यामहि कोय ॥
इष्ट करै पर वस्तुसों, भिष्ट रीति है सोय ॥ २६ ॥
तुम तौ पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव ॥
लिप्त भये गोरस विषै, ताको कौन उपाव ॥ २७ ॥
वेदभाव सब त्याग कर, वेदै ब्रह्मको रूप ॥
वेद माहिं सब खोज है, जो वेदे चिद्रूप ॥ २८ ॥
अनुभवमें जोलो नहीं, तोलौं अनुभव नाहि ॥
जे अनुभव जानें नहीं, ते जी अनुभव माहि ॥ २९ ॥
अपने रूप स्वरूपसों, जो जिय राखै प्रेम ॥
सो निहचै शिवपद लहै, मनसावाचानेम ॥ ३० ॥

---

(२५) हे आत्मन्! तुम अपने नेत्रोंको (मुदित) मुद्रित अर्थात् बद करके (मुद्दतलों) बहुत समय तक परवश अर्थात् पुद्गलके वशमें रहे, परतु जब ज्ञानकी (मुद्दत) अवधि आई, तब गुरुके वचनोंने (मुद्दत) मदत अर्थात् सहायता कीन्हीं

(२९) जबतक अनुभव=' अनु पश्चात् ' भव=ससारमें नहीं अर्थात् जबतक थोडे भव बाकी न रहें, तबतक 'अनुभव', अर्थात् सम्यक् ज्ञान नहीं है, क्योंकि जो अनुभव (सम्यक् ज्ञान) नहीं जानते है, वे 'अनुभव', अर्थात् पीछे ससारमें ही पडे रहते हैं,

---

(१) उत्तम (२) प्यार (३) भ्रष्ट खराब (४) गो' इन्द्रियोंके 'रस' विषयमें (५) स्त्रीपुनपुसकभाव (६) आत्माका स्वरूप जान (७) शास्त्रोंमें (८) पता (९) यदि चिद्रूपको जानता हो तो नहीं तो कुछ नहीं १० मनसे और वचनसे

प्रश्नोत्तर.

षट दर्शनमें को शिरैं? कहा धर्मको मूल? ॥
मिथ्यातीके ह्वै कहा? 'जैन' कह्यो सु कबूल ॥ ३१ ॥
वीतराग कीन्हों कहा ? को चन्दा की सैन ? ॥
धाँमद्वार को रहत है ? 'तारे' सुन शिख वैन ॥ ३२ ॥
धर्म पन्थ कोनें कह्यो ? कौन तरै संसार ? ॥
कहो रंकवल्लभ कहा? 'गुरु' वोलैं वच सार ॥ ३३ ॥
कहो स्वामि को देव है? को कोकिल सम काग? ॥
को न नेह सज्जन करै? सुनहु शिष्य विनराग ॥ ३४ ॥
गुरु सङ्गति कहा पाइये? किहि विन भूलै भर्म? ॥
कहो जीव काहे मयी? 'ज्ञान' कह्यो गुरु मर्म ॥ ३५ ॥
जिनँ पूजैं ते हैं किसे? किहतें जगमें मान? ॥
पंचमहाव्रत जे धरैं, 'धन' वोले गुरु ज्ञान ॥ ३६ ॥
छिन छिन छीजे देह नर, कित ह्वै रहो अचेत ॥
तेरे शिर पर अरि चढ्यो, काल दमामों देत ॥ ३७ ॥
जो जन परसों हित करै, निज सुधि सवै विसार ॥
सो चिन्तामणि रत्न सम, गयो जन्म नर हार ॥ ३८ ॥
जैसे प्रगट पतङ्गके, दीप माहिं परकाश ॥

(३१) छहों दर्शनमें जैनदर्शन श्रेष्ठ है, धर्मोंका मूल जैन है, मिथ्यातीके जैन अर्थात् जै (विजय) नहीं होती.

(१) घर. (२) गरीवका वल्लभ अर्थात् प्यारा गुरु (भारी) पदार्थ होता है (३) जो कोयल विना राग (मोटी आवाज) कीहो वह काग समान ही है. (४) जो जिन भगवानकी पूजा करते हैं वे धन अर्थात् धन्य हैं. (५) सूर्य.

तैसे ज्ञान उदोतसों, होय तिमिरको नाश ॥ ३९ ॥
चार माहि जोलो फिरै, धरै चारसों प्रीति ॥
तौलों चार लखै नहीं, चार खूट यह रीति ॥ ४० ॥
जे लागे दशवीससों, ते तेरह पचास ॥
सोरह वासठ कीजिये, छाड चारको वास ॥ ४१ ॥
विधि कीजे विधि भाव तज, सिद्ध प्रसिद्ध न होय ॥
यहै ज्ञानको अग है, जो घट बूझै कोय ॥ ४२ ॥
वारे व्यसन को नृपति जो, प्रभु जुआ तो ज्ञान ॥
तुम राजा शिवलोकके, वह दुरमतिकी खान ॥ ४३ ॥
आप अकेलो ब्रह्म मय, परयो भरमके फद ॥
ज्ञानशक्ति जानैं नहीं, कैसें होय स्वछद ॥ ४४ ॥
शिवस्वरूपके लखतहीं, शिवसुख होय अनन्त ॥
शिव समाधिमें रम रहे, शिव मूरति भगवत ॥ ४५ ॥

---

(४०) जीव जब तक चार माहिं अर्थात् चार गतीन (देव, मनुष्य नरक, तिर्यञ्च)में फिरता है और चार (क्रोध, मान, माया, लोभ) में प्रीति रखता है, तब तक चार अनन्त चतुष्टय (अनन्तसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तबल, अनतवीर्य) को प्राप्त भी नहीं कर सक्ता है, अर्थात् कर्मोंसे रहित नहीं हो सक्ता है, यह चार खूटकी रीति है

(४१) जो दश+वीस=तीस कहिये तृष्णासे अथवा स्त्रीसे अनुरक्त हुए वह तेरह+पचास+कहिये तेसठ है अर्थात् मूर्ख है इसलिये सोलह+वासठ+अठहत्तर कहिये आठ कर्मोंको हतकर तर कहिये तिरो और चार गतिनका वास छोड दो (इसमें सख्या शब्दोंसे श्लेष रूप द्वितीय अर्थ ग्रहण कर कविने चतुराई दिखाई है)

(१) गात

वालापन गोकुलवसे, यौवन मनमथ राज ॥
वृन्दावन पर रस रचे, द्वारे कुवजा काज ॥ ४६ ॥
दिना दशकके कारणे, सब सुख डारयो खोय ॥
विकल भयो संसारमें, ताहि मुक्ति क्यों कोय ॥ ४७ ॥
या माया सों राचिके, तुम जिन भूलहु हंस ॥
संगति याकी त्यागके, चीन्हों अपनो अंस ॥ ४८ ॥
जोगी[1] न्यारो जोगतें, करै जोग[2] सव काज ॥
जोगं[3] जुगत जानें सवै, सो जोगी[4] शिवराज[5] ॥ ४९ ॥
जाकी महिमा जगतमें, लोकालोक प्रकाश ॥
सो अविनाशी घट विषें, कीन्हों आय निवास ॥ ५० ॥
केवल रूप स्वरूपमें, कर्म कलङ्क न होय ॥
सो अविनाशी आतमा, निजघट परगट होय ॥ ५१ ॥
धर्म्माधर्म्म स्वभाव निज, धरहु ध्यान उरआन ॥
दर्शन ज्ञान चरित्रमें, केवल ब्रह्म प्रमान ॥ ५२ ॥
निज चन्दाकी चाँदनी, जिहि घटमें परकाश ॥
तिहिँ घटमें उद्योत है, होय तिमरको नाश ॥ ५३ ॥

(४६) कृष्णजी वालापनमें गोकुलमें रहे. यौवनमें मथुरामें, और फिर कुब्जा परस्त्रीके रसमें मग्न हो उसके द्वारे वन्दावनमे रहे. इसी प्रकार हे जीव ! तू वालापनमें तो ' गोकुल, अर्थात् इन्द्रियोके कुल समूहमे अथवा उनकी केलिमें रहा, और जवानीमें मनमथ अर्थात् कामदेवके राज्यमें रहा अर्थात् वशमें रहा, और पीछे वृन्दावन जो कुटुम्ब समूह उसमें रचा. काहेके लिये, 'द्वारे कुवजाकाज, कहिये द्वार जो आस्रव उसके कवजेमें आनेको अथवा द्वार जो मोक्षका उसको कुब्ज अर्थात् वन्द करनेकेलिये,

१ आत्मा २ मन वचन कायके योग. ३ योग्य (उचित) ४ योग (ध्यान) ५ मोक्ष

जित देखत तित चादनी, जब निज नैनन जोत ॥
नैन मिचेत पेखै नहीं, कौन चादनी होत ॥ ५४ ॥

ज्ञान भानु[3] परगट भयो, तम अरि नासे दूर ॥
धर्म कर्म मारग लख्यो, यह महिमा रहिपूर ॥ ५५ ॥

जेतन की सगति किये, चेतन होत अजान ॥
ते तनसों ममता धरै, आपुनो कौन सयान ॥ ५६ ॥

जे तन सों दुख होत है, यहै अचभो मोहि ॥
चेतन सौं ममता धरै, चेतन[1] चेत न तोहि ॥ ५७ ॥

जा तनसों तू निज कहै, सो तन तौं तुझ नाहि ॥
ज्ञान प्राण सयुक्त जो, सो तन तौं तुझ माहिं ॥ ५८ ॥

जाके लखत यहै लख्यो, यह मै यह पर होय ॥
महिमा सम्यक् ज्ञानकी, विरला बूझै कोय ॥ ५९ ॥

छहों द्रव्य अपने सहज, राजत है जग माहिं ॥
निहचै दृष्टि विलोकिये, परमें कनहू नाहिं ॥ ६० ॥

जड चेतन की भिन्नता, परम देवको राज ॥
सम्यक होत यहै लख्यो, एक पथ द्वै काज ॥ ६१ ॥

समुझै पूरण ब्रह्मको, रहै लोभ लौं लाय ॥
जान बूझ कूए परै, तासों कहा बसाय ॥ ६२ ॥

जाकी प्रीतिप्रभावसों, जीत न कनहू होय ॥
ताकी महिमा जे धरैं, दुरबुद्धी जिय सोय ॥ ६३ ॥

जाकी परम दशाविषै, कर्म कलङ्क न कोय ॥
ताकी प्रीतिप्रभावसों, जीत जगतमें होय ॥ ६४ ॥

---

१ ज्योतिप्रकाश २ बन्द होत ३ सूर्य ४ चातुर्य ५ ममता

अपनी नवनिधि छांड़ि कै, मांगत घर २ भीख ॥
जान वूझ कूए परै, ताहि कहौ कहा सीख ॥ ६५ ॥
मूढ़ मगन मिथ्यातमें, समुझै नाहिं निठोल[1] ॥
कानी[2] कौड़ी कारणे, खोवै रतन अमोल ॥ ६६ ॥
कानी कौड़ी विषय सुख, नरभव रतन अमोल ॥
पूरव पुन्यहिं कर चढ्यो, भेद न लहैं निठोल ॥ ६७ ॥
चौरासी लखमें फिरै, रागद्वेष परसङ्ग ॥
तिनसों प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञानको अङ्ग ॥ ६८ ॥
चल चेतन तहां जाइये, जहां न राग विरोध ॥
निजस्वभाव परकाशिये, कीजे आतम वोध ॥ ६९ ॥
तेरें वाग[3] सुज्ञान है, निज गुण फूल विशाल ॥
ताहि विलोकहु परमतुम[4], छांडि आल जंजाल ॥ ७० ॥
छहों द्रव्य अपने सहज, फूले फूल सुरंग ॥
तिनसों नेह न कीजिये, यहै ज्ञानको अंग ॥ ७१ ॥
सांच विसार्यो भूलके, करी झूठसों प्रीति ॥
ताहीतें दुख होत हैं, जो यह गही अनीति ॥ ७२ ॥
हित शिक्षा इतनी यहै, हंस सुनहु आदेश ॥
गहिये शुद्ध स्वभावको, तजिये कर्म कलेश ॥ ७३ ॥

सोरठा.

ज्यों नर सोवत कोय, स्वप्न माहिं राजा भयो ॥
त्यों मन मूरख होय, देखहि सम्पति भरमकी ॥ ७४ ॥
कहहु कौन यह रीति, मोहि बतावहु परमतुम ॥
तिन ही सों पुनि प्रीति, जो नरकहिं ले जात हैं ॥ ७५ ॥

---

१ निठल्ला वेकाम मूर्ख. २ फूटी. ३ वगीचा ४ शुद्धात्मा ।

अहो[1] जगतके राय, मानहु एती वीनती ॥
त्यागहु पर परजाय, काहे भूले भरममें ॥ ७६ ॥
एहो ! चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी ॥
जो नरकहि ले जाय, तिनही सों राचे सदा ॥ ७७ ॥
तुम तौ परम सयान, परसों प्रीति कहा करी ॥
किहिंगुण भये अयान, मोहि वतावहु साच तुम ॥ ७८ ॥
कर्म्म शुभाशुभ दोय, तिनसों आपौ[2] मानिये ॥
कहहु मुक्ति क्यो होय, जो इन मारग अनुसरै ॥ ७९ ॥
मायाहीके फन्द, अरझे चेतनराय तुम ॥
कैसे होहु स्वच्छन्द, देखहु ज्ञान विचारके ॥ ८० ॥
एहो ! परम सयान, कौन सयानप तुम करी ॥
काहे भये अयान, अपनी जो रिधि छाडिके ॥ ८१ ॥
तीन लोकके नाथ, जगवासी तुम क्यों भये ॥
गहहु ज्ञानको साथ, आवहु अपने थैल[3] विषै ॥ ८२ ॥
तुम पूँनों[4] सम चन्द, पूरण ज्योति सदा भरे ॥
परे पराये फन्द, चेतहु चेतनरायजू ॥ ८३ ॥
जानहि गुण पर्य्याय, ऐसे चेतनराय है ॥
नैनन लेहु लखाय, एहो ! सन्त सुजान नर ॥ ८४ ॥
सव कोउ करत किलोल, अपने अपने सहजमें ॥
भेद न लहत निठोलै[5], भूलत मिथ्या भरममें ॥ ८५ ॥

दोहा

आन न मानहि औरकी, आनें उर जिनवैन ॥

(८६) जो और (अन्यधर्मवालों) की (आन) आज्ञा अथवा

१ किसकारण २ चतुरता ३ मोक्षस्थल ४ पूर्णिमा ५ मूर्ख

आनन देखै परमको, सो आनैं शिव ऐन ॥ ८६ ॥

'लो' गनको लागो रहे, 'भ' वजल वोरै आन ॥
ये द्वयअक्षर आदिके, तजहु ताह पहिचान ॥ ८७ ॥

जित देखहु तित देखिये, पुद्गलहीसों प्रीत ॥
पुद्गल हारे हार अरु, पुद्गल जीते जीत ॥ ८८ ॥

पुद्गलको कहा देखिये, धरै विनाशी रूप ॥
देखहु आतम सम्पदा, चिद्विलासचिद्रूप ॥ ८९ ॥

भोजन जल थोरो निपट, थोरी नींद कषाय ॥
सो मुनि थोरे कालमें, वसहिं मुकतिमें जाय ॥ ९० ॥

जगत फिरत कै जुग³ भये, सो कछु कियो विचार ॥
चेतन अव किन चेतहू, नरभव लह अतिसार⁴ ॥ ९१ ॥

दुर्लभ दश दृष्टान्तसों, सो नर भव तुम पाय ॥
विषय सुखनके कारणे, सर्वस⁵ चले गँवाय ॥ ९२ ॥

ऐसी मति विभ्रम भई, विषयन लागत धाँय⁶ ॥
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ९३ ॥

देखहु तो निज दृष्टिसों, जगमें थिर कछु आह ॥
सबै विनाशी देखिये, को तज गहिये काह ॥ ९४ ॥

लज्जा नहीं मानता है, अपने हृदय में भगवानके वचनो को धारण करता है, और परम अर्थात् शुद्धात्माका 'आनन' मुख अर्थात् रूप अवलोकन करता है, वह यथार्थ मोक्षको प्राप्त करता है.

---

१ लोभ. २ अत्यन्त. ३ युग ४ श्रेष्ठ ५ सर्वस्व. ६ दौड्के

नोट—इस शतकके ९१ ९२ ९३. न. के दोहे वैराग्यपचीसीमें भी आये है

केवल शुद्ध स्वभावमें, परम अतीन्द्रिय रूप ॥
सो अविनाशी आतमा, चिद्विलास चिद्रूप ॥ ९५ ॥
जैसो शिवखेतहिं वसै, तैसो या तनमाहिं ॥
निश्चय दृष्टि निहारिये, फेर रच कहु नाहिं ॥ ९६ ॥
चेतन कर्म उपाधि तज, रागद्वेषको संग ॥
जे प्रगटै निज सम्पदा, शिव सुख होय अभंग ॥ ९७ ॥
तू अनन्त सुखको धनी, सुखमय तोहि स्वभाव ॥
करते छिनमें प्रगट निज, होय बैठ शिवराव ॥ ९८ ॥
ज्ञान दिवाकर प्रगटते, दश दिशि होय प्रकाश ॥
ऐसी महिमा ब्रह्मकी, कहत भगवतीदास ॥ ९९ ॥
जुगल चन्दकी जे कला, अरु संयमके भेद ॥
सो संवत्सर जानिये, फाल्गुण तीज सुपेद ॥ १०० ॥

इति परमात्मशतकम्

---

१०० (जुगलचन्दकी जे कला) चन्द्रकी सोलह कलायें जो जुगल (दूने) बत्तीस और संयम (नियम) के भेद सत्रह अर्थात् १७३२ सम्वत्की फाल्गुण सुपेद (सुदी) तीज- "फाल्गुणशुक्ल तृतीया सम्वत् १७३२ विक्रमाब्दको यह परमात्मशतक बनाया"

१ चिद्विलासात्मा २ मोक्षक्षेत्रमें ३ रूप

अथ चित्रबद्धकविता.

अनुष्टुपछन्द,

आपा थान न था पाआ ।
चार मार रमा रचा ॥
राधा सील लसी धारा ।
साद साम मसा दसा ॥ १ ॥

पादानुपादगतागत चित्रम्.

आ	पा	था	न
चा	र	मा	र
रा	धा	सी	ल
सा	द	सा	म

दोहा.

पर्म सेव पर सेव तज, निज उधरन मनधारि ॥
धर्म सेव वर सेव सज, निज सुधरन धनधारि ॥ २ ॥

त्रिपदीबद्धचित्रम्.

प	से	प	से	त	नि	उ	र	म	धा
र्म	व	र	व	ज	ज	ध	न	न	रि
ध	से	व	से	स	नि	सु	र	ध	धा

त्रिपदीपञ्चकोष्टक

पर्म	पर	तज	उध	मन
सेव	सेव	निज	रन	धारि
धर्म	वर	सज	सुध	धन

अथ सप्तकोष्टकत्रिपदी

पर्म	वप	सेव	जनि	उध	नम	धा
से	र	त	ज	र	न	रि
धर्म	वर	सेंव	जिन	सुध	नध	धा

दोहा

जैन धर्म में जीव की, कही जात तहकीक ॥
अैन धर्म में जीत की, रही बात यह ठीक ॥ ३ ॥

एकाक्षर त्रिपदीबद्ध चत्रम्

जै	ध	में	व	क	जा	त	की
न	र्म	जी	की	ही	त	ह	ध
अै	ध	में	त	र	बा	य	ठी

कपाटबद्ध चक्रम्.

जै	न	{ }	न	अै
ध	र्म		र्म	ध
में	जी		जी	में
व	की	{ }	की	त
क	ही		ही	ल
जा	त		त	वा
त	ह		ह	य
की	क	{ }	क	ठी

अश्वगतिबद्ध चित्रम्.

जै	न	ध	र्म	में	जी	व	की
क	ही	जा	त	त	ह	की	क
अै	न	ध	र्म	में	जी	त	की
ल	ही	वा	त	य	ह	ठी	क

छन्द (मात्रा १०) अनुप्रासरहित

न तनमें मेन तन, तहेम सु सुमहेत ॥
न मनमें मैन मन, मे सु मैं हों हों मै सु मै ॥ ४ ॥

सर्वतोभद्रगति चित्रम्

न	त	न	मै	में	न	त	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	म	न	में	मैं	न	म	न
में	सु	मै	हो	हों	मै	सु	में
मैं	सु	म	हों	हों	में	सु	मैं
न	म	न	मैं	में	न	म	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	त	न	मैं	मैं	न	त	न

मात्रिक सवैया (३२मात्रा)

या मनके मान हरनको भैया, तू निहचै निज जानि दया ।
को हित तोहि विचारत क्यों नहिं, रागरुद्वेष निवारि नया ॥
भर्मादिक भाव विछेद करो, ज्यों तोहि लोपन प्रकाश भया ।
यामन मानह कोन भलो, नन लोभ न कोह न मान मया ॥ ५ ॥

पर्वतवद्ध चित्रम्.

या

म

न

के मा न

ह र न को भै

या तू नि ह चै नि ज

जा नि द या को हि त तो हि

वि चा र त क्यों न हिं रा ग रु द्वे

ष नि वा रि न या भ र्मा दि क भा व वि

छे द क रो ज्यों तो हि लो प न प्र का श भ या

न

दोहा

जैन धर्ममें जीवकी, कही जात तहकीक ॥
औन धर्ममें जीत की, लही बात यह ठीक ॥ ५ ॥

चटाई बद्ध चित्रम्

दोहा- करमनसों करयुद्ध तू, करले ज्ञान कमान ॥
तान खबलसों परम तू, मारो मनमथ जान ॥ ६ ॥

चक्र बद्ध चित्रम्

दोहा

परम धरम अवधारि तू, परसंगति कर दूर ॥
ज्यों प्रगटै परमातमा, सुख संपति रहै पूर ॥ ७ ॥

धनुषबद्धचित्रम्.
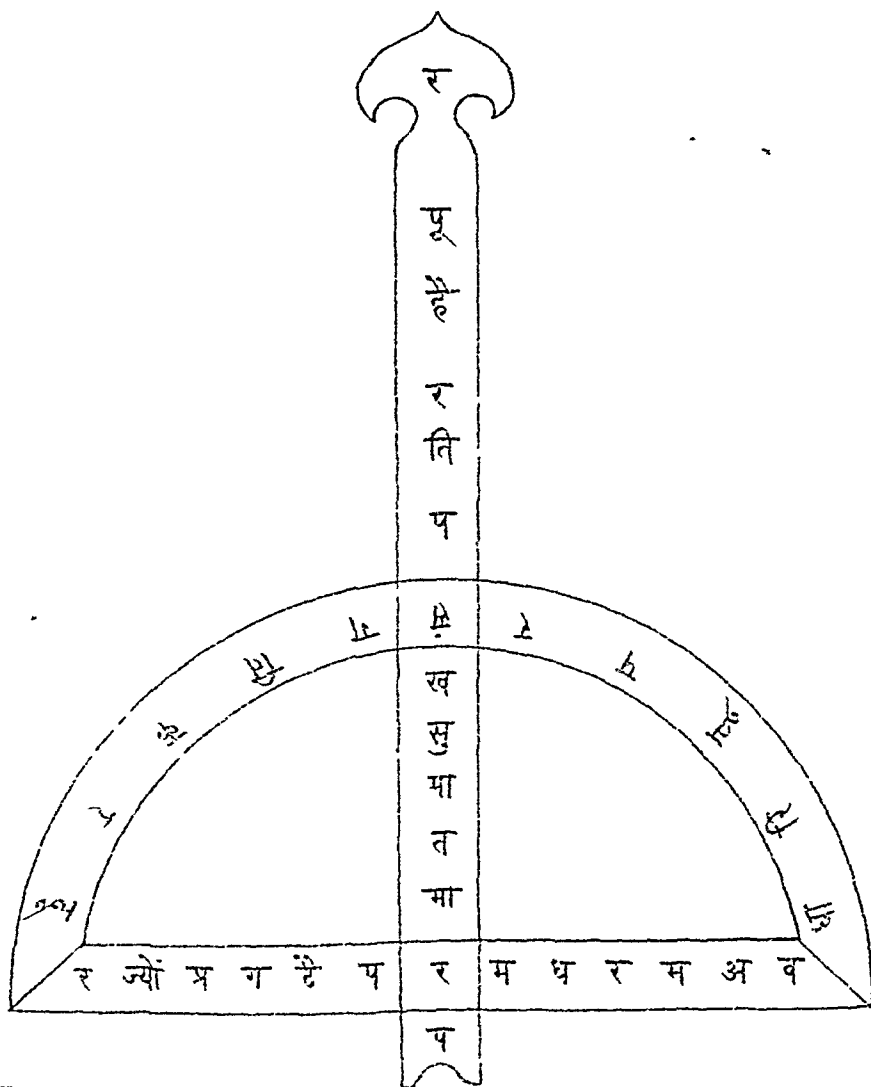
आभीर छंद

रामदेव चित चाहि । सामदव नित गाहि ॥
जामदेव मित पाहि । तामदेव हित ठाहि ॥ ८ ॥

सर्वतो भद्रगति चित्रम्

दोहा– आप आप थप जाप जप, तप तप खप वप पाप ॥
काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप नप टप टाप ॥ ९ ॥

विंशतिपत्र कमलाकार बद्ध चित्रम्

दोहा.
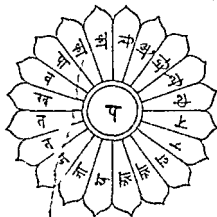
आप आप थप जाप जप, तप तप खप दप चाप ॥
काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप त्रप टप दाप ॥१॥
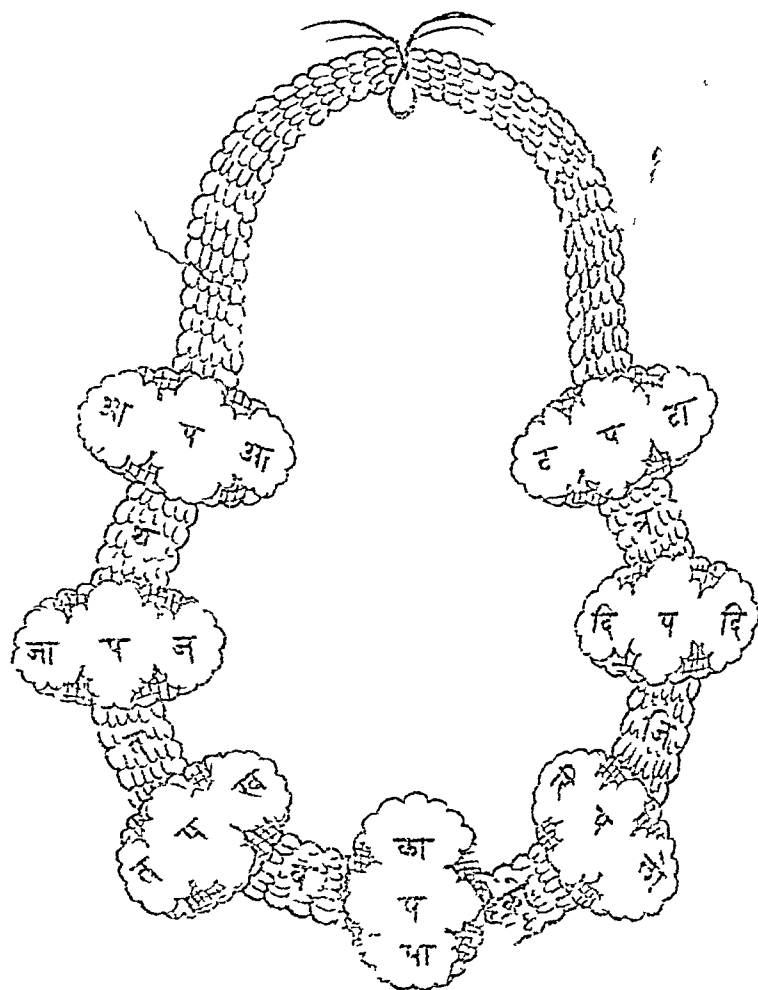
हारबद्धचित्रम्.

दोहा

अरि परि हरि अरि हेरि हरि, घेरि घेरि अरि टारि ॥
करि करि थिरि थिरि धारि धरि, फिरि फिरि तरि तरि तारि ॥११॥

चामराकार बद्ध चित्रम्.
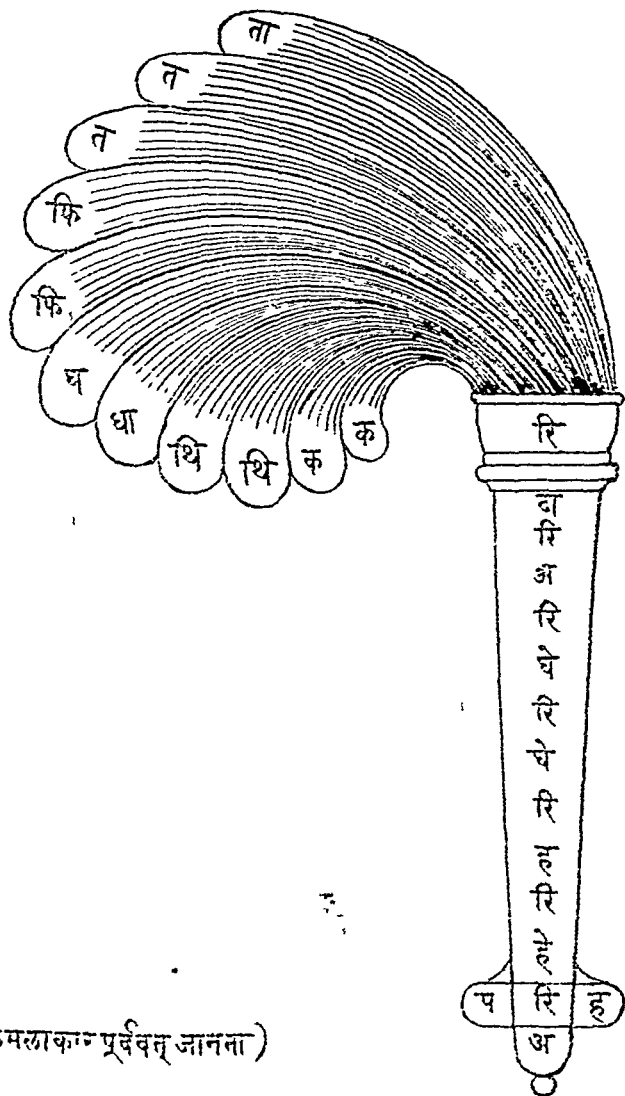
(कमलाकार पूर्ववत् जानना)

द्वितीय नाग बद्ध

षट्पद
तजहु पचरिपु चलन,
रचहु निजपरजी। पापरीनपर
हरहु रटनविभवरजी ॥ मनधर
पर्म स्वरूप, देख अदभुत रदन । पूरन
निज गुन भरयो, सुमति जीते मदन॥
यहु एक बहुत कर्म नमिले, छिन २
नृत्य करत। लहि जान पच पद सुम
गिरै, सुभवसागरहि नरत॥
१२